महाकविबाणभट्टविरचितं

हर्षचरितम्

(...मोच्छ्वासः)

व्याख्याकारः

डॉ. निरञ्जन मिश्र

महाकविबाणभट्टविरचितम्

हर्षचरितम्

पञ्चम उच्छ्वास

('निर्मला' संस्कृतहिन्दीव्याख्यासहितः)

Kala Mandir Distributors
1680/4, 1st Floor, Mehta Market,
Nai Sarak, Delhi-110006 (9999369804, 805)
No Return / No Exchange

महाकविबाणभट्टविरचितम्

हर्षचरितम्

पञ्चम उच्छ्वास

('निर्मला' संस्कृतहिन्दीव्याख्यासहितः)

व्याख्याकारः

डॉ. निरञ्जनमिश्रः

एसोसियेट प्रोफेसर

श्री भगवानदास आदर्श संस्कृतमहाविद्यालयः

हरिद्वारम्

महाकविबाणभट्ट और उनका हर्षचरित

संस्कृत सहित्य जगत् में महाकविबाणभट्ट 'गद्यकाननपञ्चानन' के नाम से विख्यात हैं। इनकी लेखनी ने संस्कृत साहित्य में वह कमाल कर दिखाया है, जिसकी कल्पना भी अन्यकवियों के लिय दिवास्वप्न वत् है। जिस मार्ग को अपनाकर चलने से पहले ही कवियों की शक्ति समाप्त हो जाती हो, उस मार्ग पर चलकर नया कीर्तिमान स्थापित करना किसी किसी विशिष्ट वैशिष्ट्य सम्पन्न व्यक्तित्व के लिये ही सम्भव हो सकता है।

प्रायः संस्कृतसाहित्य के कवियों के विषय में वास्तविक जानकारी का अभाव पाया जाता है। एकमात्र बाणभट्ट ऐसे कवि हैं जिनके जीवन के विषय में निस्सन्देह कुछ कहा जा सकता है। हर्षचरितम् एवं कादम्बरी में स्वयं बाणभट्ट ने अपना परिचय विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। इनका जन्म वात्स्यायन वंश में हुआ था। स्वयं इन्होंने अपने वंश का परिचय देते हुए कादम्बरी में लिखा कि –

बभूव वास्त्यायनवंशसम्भवो
द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणी सताम्।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः
कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः।।

इसी वंश में अर्थपति एवं चित्रभानु का उल्लेख किया है। इसी चित्रभानु के पुत्र बाणभट्ट हुए। हर्षचरितम् में अपने वंश का विस्तार से वर्णन करते हुए इन्होंने वत्स की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वकवर्णन किया है। अपने जीवन का भी विस्तृत वर्णन किया है। इनका समय सातवीं शदी का पूर्वार्द्ध है। कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के समकालीन होने के कारण इनका समय निर्धारण निस्सन्देह है। हर्षवर्धन की जीवनगाथा हर्षचरितम् में वर्णित है। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय कवि स्वयं उपस्थित थे। इनके विषय में

कुछ प्रसिद्ध सूक्तियाँ संस्कृतसाहित्य जगत् में प्रचलित हैं जिससे इनकी विद्वत्ता और विद्वानों के मध्य इनकी प्रतिष्ठा अभिव्यक्त होती है। जैसे – 'वाणी बाणो बभूवेति' 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' 'गद्यकानन पञ्चानन'। कवियों ने इनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है। यथा –

जाता शिखिण्डिनि प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी वाणो बभूवेति।। (गोवर्धनस्य)
हृदि लग्नेन वाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।
युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिता:।
बाणध्वानावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः।।
सहर्षचरिता शश्वत्कृतकादम्बरी कथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ।।
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वै बुधे हृदि।
हर्षाख्यायिकया ख्याति बाणोऽब्धिरवि लब्धवान्।।
केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधानं पुलिन्दकृतसन्निधिः।।
अर्थेश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दं वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेष्वरमानतोऽस्मि।।
सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा।।
रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुर शीलस्य।।

वस्तुतः वाणभट्ट का जीवन विविधमार्गों से होकर गुजरा है। जिसका विस्तृत वर्णन हर्षचरितम् में उपलब्ध है। इनकी विनम्रता इनके काव्य से स्पष्ट होती है। अपने से

पूर्व कवियों के प्रति इनका कथन इनकी स्वच्छ भावना एवं विनम्रता को स्पष्ट करता है। यथा –

वेदव्यास के लिये

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्।।

सुबन्धु के लिये –

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वावदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।।

भट्टारहरिश्चन्द्र के लिये–

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते।।

महाकविकालिदास के लिये

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।

महाकवि भास के लिये –

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।

कविवर प्रवरसेन के लिये

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना।।

कविराज सातवाहन के लिये

अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरवि सुभाषितैः।।

कवि की लेखनी ही उनके स्वभाव को उपस्थापित कर देती है। इस प्रकार यदि देखें तो महाकवि बाणभट्ट सच्चे आस्तिक, सुस्पष्टवक्ता, एवं नवमार्गसर्जक, हैं। इनकी

भाषा कहीं अति सरल है तो कहीं अतिकठिन है। कुकवियों की निन्दा करते समय इनका स्पष्टवक्तृत्व सामने आता है। यथा -

प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः।
कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः।।
अन्यवर्णपरावृत्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।
अनाख्याताः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते।

इनका मानना है कि नये मार्ग का सृजन करनेवाले बहुत कम हुआ करते हैं। इस विषय में स्पष्ट लिखते हैं कि -

उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव।

इसीलिये इन्होंने गद्यक्षेत्र को चुना और अद्वितीय स्थान प्राप्त किया। गद्य की सभी विधायें इनके काव्यों में देखने को मिलती है। सरल श्लेष, नवीन उत्प्रेक्षा, नवीनार्थसंयोजन, और विकटाक्षरबन्धन, ये सभी कवियों के लिये दुर्लभ होते हैं। पर इनकी रचना में ये सभी एक स्थान पर उपलब्ध हो जाते है। इन्होंने स्वयं लिखा है कि -

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्।।
नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।।

इस दुर्लभता का ज्ञान होते हुए भी उस मार्ग पर अग्रसर होना इनकी स्वाभिमानिता का परिचायक है। अपनी कथा कादम्बरी के विषय में '**धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा**' यह कहकर महाकवि ने अपनी रचना का वैशिष्ट्य स्वयं उपस्थापित कर दिया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाकवि बाणभट्ट संस्कृतसाहित्यरूप आसमान के नित्य देदीप्यमान सितारे हैं। जिनकी आभा अक्षुण्ण है।

इनकी रचनाओं में चार कृतियों का नाम लिया जाता है, 1 हर्षचरितम् 2कादम्बरी 3 चण्डीशतकम् 4 पार्वतीपरिणय। इन चार कृतियों में इनकी दो रचनायें 'हर्षचरितम्' एवं कादम्बरी' सुप्रसिद्ध हैं। अन्य कृतियाँ सन्दिग्ध है। इन्हीं दोनो कृतियों की आधारशिला पर महाकविबाणभट्ट की कीर्ति का भव्यमहल प्रतिष्ठित है। गद्य क्षेत्र में इनको 'गद्यकाननपञ्चानन' की उपाधि प्राप्त है। अर्थात् गद्य कानन में इनके जैसा दूसरा कोई है ही नहीं। गद्य लिखने की सभी विधाओं में इनकी लेखनी कुशल है।

यद्यपि श्रव्य काव्य के तीन भेदों (पद्य गद्य एवं चम्पू) में गद्यसाहित्य के लेखकों की स्वल्पता इसकी कठिनाईयों की ओर संकेत करती है। जहाँ पद्यलेखन में छन्दोबद्धता कवियों को बाँधकर रखती है वहीं गद्यक्षेत्र में कवि स्वच्छन्द होते हैं। गद्य रचना छन्द के बन्धन से मुक्त होती है। फिर भी पद्यकवियों की संख्या अनगिनत है जबकि गद्य में केवल तीन नाम ही विद्वानों की जिह्वा पर आती है। 1 दण्डी 2 सुबन्धु और 3 बाणभट्ट। महाकवि दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरी कथा' और 'दशकुमारचरितम्' प्रसिद्ध रचना है। महाकवि सुबन्धु की एक ही रचना है 'वासवदत्ता'। बाणभट्ट की दो रचनायें 'हर्षचरितम्' और कादम्बरी' है। इसके अतिरिक्त चौथे गद्यकार के स्थान पर पं0 अम्बिका दत्त व्यास का नाम आता है, जिनकी रचना 'शिवराजविजयम्' सुप्रसिद्ध है।

हर्षचरितम् – महाकविबाणभट्ट विरचित रचनाओं में हर्षचरितम् इनकी पहली रचना है। प्रायः यह कहा जा सकता है कि गद्यक्षेत्र में महाकवि का प्रयास हर्षचरितम् के रूप में उपस्थित है, जिस प्रयास का फल 'कादम्बरी' के रूप में विद्वज्जनों के समक्ष उपस्थित है। गद्यकाव्य के दो भेद माने जाते हैं कथा और आख्यायिका। गद्यकाव्य के दोनो भेदों के विषय में महाकवि बाण का कथन अद्वितीय है। इन्होंने आख्यायिका करनेवालों के विषय में कहा है कि –

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्या कवीश्वराः।।
सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः।।

कथा के विषय में इन्होंने कादम्बरी में लिखा है कि –

स्फुरत्कलालापविलासकोमला
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव।।

हर्षचरितम् एक आख्यायिका है। ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित काव्य आख्यायिका कहलाती है। और कविकल्पना पर आधारित गद्यकाव्य कथा कहलाती है। अमरकोषकार के अनुसार –

आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धकल्पना कथा।

आलोचकों का मानना है कि ऐतिहासिक कथा का आधार लेकर काव्य की रचना करना उस समय के कवियों को मान्य नहीं था पर महाकविबाणभट्ट ने चक्रवर्तिसम्राट् हर्षवर्धन के जीवन चरित को काव्यात्मक शैली में निबद्ध कर एक नयी आधारशिला का निर्माण कर दिया। जिस पर चलते हुए बाद में बहुत सारे लेखकों ने अपनी कीर्ति का स्तम्भ स्थापित किया। महाकवि स्वयं कहते हैं कि यद्यपि आद्यराज की कथा का स्मरण होते ही जिह्वा अन्दर की ओर खिंच जाती है, अर्थात् जिह्वा काव्य करने में प्रवृत्त होना नहीं चाहती है पर महाराज श्रीहर्ष की प्रीति के कारण मैं आख्यायिका लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। यथा –

आद्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि।
जिह्वान्तःकृष्यमानेव न कवित्वे प्रवर्तते।।
तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्।।

यह आख्यायिका आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। आरम्भ में कवि ने अपने वंश का विशद रूप में वर्णन किया है। ब्रह्मसभा में दुर्वासा के द्वारा भगवती सरस्वती के लिये शाप से यह कथा आरम्भ होती है। इसी शाप के कारण सरस्वती सावित्री के साथ धरती पर आती है और राजकुमार दधीच के साथ उनकी शादी होती है। जिससे वत्स का जन्म होता है। इसी वत्स के वंश में महाकवि बाणभट्ट का जन्म हुआ है। इनकी माता का नाम राजदेवी और पिता का नाम चित्रभानु था। बचपन में ही माता का देहान्त हो गया, पिता ने सभी संस्कारों का सम्पादन करवाया। बचपन में बाणभट्ट मातृस्नेह के अभाव में कुसंगति में पड़ गये। चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का निधन हो गया। एकाकीपन ने कुसंगति की आग में घृतधार का काम कर दिया। विविध स्थानों के परिभ्रमण के समय संसार का बारीकी से इन्होंने अवलोकन किया। घर लौटने के बाद स्थाणीश्वर के दरबार में उपस्थित हुए। इन्हें राज्याश्रय मिला और फिर इन्होने अपने ग्रन्थों की रचना की। इन्होंने अपनी सन्तति के विषय में नहीं लिखा है, पर यह सत्य है कि भूषण भट्ट और

पुलिन्द भट्ट नामक दो पुत्र थे। जिनमें से भूषणभट्ट ने कादम्बरी को पूरा किया था। स्वयं महाकविबाणभट्ट कादम्बरी कथा का लेखन पूरा नहीं कर सके थे। इसका प्रमाण कादम्बरी के ये दोनो श्लोक हैं -

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्द्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्।।
कादम्बरी रसभरेण समस्त एव
मत्तो न कश्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन
तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसन्दधानः।।

आगे महाराज हर्षवर्धन का जीवन इस आख्यायिका में वर्णित है। महाराज हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन और भाई राज्यवर्धन थे। एक बहन थी जिसका नाम राज्यश्री था। इनके जीवन के विविध आयामों का वर्णन कवित्व पूर्ण शैली में गद्यरूप में वर्णित करना कवि की कवित्व पराकाष्ठा को दिखाता है। यहाँ दीर्घ समासावली, मध्यमसमासावली, एवं समासविहीन रचनायें भी देखने को मिलनी है। उत्प्रेक्षा, रूपक अनुप्रास की छटा के साथ साथ पदलालित्य भी सहृदयों का मनोरञ्जन करने में पूर्ण सफल है।

हर्षचरितम् का पाँचवाँ उच्छ्वास

इस उच्छ्वास की कथा इस प्रकार है। राजा प्रभाकरवर्धन ने युवराज राज्यवर्धन को हूणों के बढ़ते आतंक को रोकने के लिये उत्तरपथ की ओर भेजा। देव हर्षवर्धन भी अपने भाई के साथ घोड़े पर सवार होकर कुछ पड़ावों तक गये। राज्यवर्धन के आगे बढ़ जाने के बाद हर्षवर्धन वहीं पर शिकार करने के लिये रुक गये। एक रात्रि में हर्षवर्धन ने स्वप्न में देखा कि एक शेर जंगल की आग में जल रहा है और सिंहनी भी अपने पति के वियोग को सहने में असमर्थ होकर अपने पुत्रादिको के स्नेह का परित्याग कर उसी आग में कूद रही है। इस स्वप्न को देखकर हर्ष के मन यह आया के वस्तुतः प्रणय का बन्धन लोहे के बन्धन से भी अधिक कठोर होता है। उसी समय उसकी वार्यी आँख फड़कने लगी।

अनायास ही उसे अपने पिता की याद सताने लगी। इसी चिन्ता में शिकार में भी उनका मन नहीं लग रह रहा था। एक बार वे मध्याह्न में चटाई पर बेठे हुए थे कि तभी कुरंगक नाम का लेखवाहक उसके पास आया और एक पत्र समर्पित किया। पत्रवाहक के मुख की मलिन कान्ति को देखकर कुछ संशय सा होने लगा था। उस पत्र को स्वयं हर्ष ने पढ़ा और उस पत्रवाहक से पूछा कि पिताजी को कौन सी बीमारी हो गयी है? तो पत्रवाहक ने बताया कि उन्हें हृदय दाह उत्पन्न हो गया है। इस दारुण समाचार को सुनकर हर्षका मन विषण्ण हो गया। तत्क्षण उसने पिता की लम्बी आयु की कामना से ब्राह्मणों को ढेर सारी सम्पत्ति दान की और भोजन किये विना ही प्रयाण यात्रा आरम्भ कर दी। उन्हें नगर की ओर लौटता देखकर साथ में रहनेवाले बहुत सारे राजा एवं अनुचर भी उनके साथ लौट पड़े। संयोवशात् मार्ग में दीखनेवाले अपशकुनों से मन का दु:ख और बढ़ने लगा पर उन अपशकुनों की चिन्ता किये विना हर्ष लगातार चलते रहे और दूसरे दिन नगर में प्रवेश किया। नगर में आकर उसने यमपंट्टिक द्वारा गाये जाते हुए श्लोकों को सुना। जब राजजद्वार पर आये तो सुषेण नामक वैद्यकुमार से मुलाकात हुई जो वैद्यक शास्त्र का विशारद था। उससे अपने पिता का समाचार पूछा तो उसने बताया कि कुमार! अभी तक तो रोग के उपचार में कोई सुधार नहीं है पर हो सकता है कि आपको देखने के बाद कोई सुधार हो जाय। अन्दर पहुँचकर हर्ष ने देखा कि पिताजी बेहोश पड़े हैं और माता यशोमती बहुत कारुणिक शब्दों में उससे हालचाल पूछ रही है कि आप सो गये हैं? या अपको दाह अधिक हो रहा है? इत्यादि।

अपने पुत्र कौ आया हुआ जानकर महाराज प्रभाकरवर्धन उसी अवस्था में अपने विछावन से उठ गये और पुत्र के शरीर का स्पर्श करते हुए बोले पुत्र! तुम तो बहुत दुबले हो गये हो! अधिक परिश्रम करना पड़ा है क्या? भोजन ग्रहण किया है या नहीं? तभी भण्डी ने बताया कि इन्हें भोजन किये हुए तीन दिन बीत गये हैं। इतना सुनकर महाराज अश्रुपूरित नेत्रों से करुणशब्दों में बोले पुत्र! तुम पितृवत्सल हो, यह मुझे अच्छी तरह ज्ञात है। यह सत्य है कि इस संसार में बन्धुजनों का स्नेह अति तीव्र होता है पर अपने शरीर की रक्षा करना परम धर्म है। हृदय दाह ज्वर से सन्तप्त होता हुआ मैं तुम्हारी दशा को सुनकर और अधिक ताप का अनुभव कर रहा हूँ। मेरे बाद यह सम्पूर्ण राज्य समग्र सम्पत्तियाँ तुम्हारी ही है। मेरा अन्त समय आ चुका है। अब तो केवल वैद्यों के अनुरोध पर मैं औषधि का पान कर रहा हूँ। पिता के इन वचनों को सुनकर हर्ष का शोक और बढ़ता चला गया। भोजन के लिये पिता का आदेश मानकर कुछ देर वहाँ ठहर कर उस भवन से बाहर आये। किसी तरह दो चार ग्रास भोजन ग्रहण किया। पुन: जब पिता के समीप

पहुँचे तो पिता की स्थिति दारुण हो रही थी, वे विलाप कर रहे थे। उनकी दशा विकृत हो चुकी थी।

दूसरे दिन हर्ष की माता यशोमती की दासी हड़वड़ाती हुई आई और चिल्लाने लगी कि कुमार! बचाओ बचाओ! पति के जीवित रहते ही तुम्हारी माता कुछ करना चाहती है। उसके वचनों का अनुसरण जब हर्ष अपनी माता के कक्ष में पहुँचे तो देखा कि माता स्वयं को अग्नि में समर्पि त करने को तैयार हो रही हैं। हर्ष ने अपनी माता को बहुत समझाया पर माता ने नहीं माना और पति के जीवित रहते हुए सधवा अवस्था में अपने प्राणत्याग के प्रण पर अड़ी रही। हर्ष को भी उनकी बातें माननी पड़ी।

देवी यशोमती अपने सखियों, सहेलियों, दासियों, बहनों ,आदि से विदा लेकर अपना अभीप्सित पाने को चल पड़ी। इस वर्णन में महाकविबाणभट्ट ने बहुत करुणदृश्य उपस्थापित किया है। वह देवी पैदल ही भवन से निकलकर सरस्वती नदी के किनारे आ गई और वहाँ तैयार चिता पर अग्निदेव का पूजन कर चिता में प्रविष्ट हो गई।

माता की मृत्यु से विह्वल हर्ष पुनः अपने पिता के समीप लौट आये। अब उनके पिता के शरीर में भी थोड़ी देर के लिये ही प्राण अवशिष्ट था। ऐसी अवस्था में सहजतया हर्ष की आँख से अश्रुधारा निकल पड़ी। इस अवस्था में भी पिता उन्हें समझाते हुए बोले के पुत्र! शोक क्यों करते हो। तुम्हारे जैसा सुयोग्य, बीर, बुद्धिमान, महासत्त्व, रोये, यह उचित नहीं हैं। आगे बढ़ो, और राज्यक्ष्मी का ग्रहण करो। इसी तरह बातें करते हुए सूर्य के अस्ताचल गमन के साथ ही राजा प्रभाकर वर्धन ने भी पुनः कभी न खोलने के लिये अपनी आँखें बन्द कर ली। पूर्व दिशा में चन्द्र के उदय होने पर सभी राजाओं मन्त्रियों कुल कुमारों सेवकों नगरवासियों आदि के साथ मिलकर हर्ष ने अपना कन्धा देकर पिता के शव को सरस्वती पर पहुँचाया जहाँ उन्हें चिता पर डाला गया और उनके पार्थिव शरीर को पंचतत्त्व में विलीन कर दिया गया। अब राजा प्रभाकरवर्धन केवल कीर्ति में अवशेष रह गये। सूर्योदय होने पर हर्ष ने पुनः सरस्वती नदी के तट पर जाकर पिता को जलाञ्जलि दी और पैदल ही अपने भवन की ओर प्रस्थान किया।

अब माता पिता से विहीन होकर हर्ष ने अपने भाई को वापस बुलाने के लिये दूत भेजा और शोकविह्वलावस्था में सोचने लगे कि इस दारुण दुःख को सुनकर मेरे बड़े भाई का क्या हाल होगा। कहीं वो धैर्य का परित्याग कर राज्य से विमुख न हो जायें। कहीं वो संन्यासी न बन जायें या कहीं वो मुनिवृत्ति धारण कर वन में किसी आश्रम में न चले जायें। अपने भाई द्वारा कहे गये बचपन की बातों को याद करते हुए हर्ष ने किसी तरह अपनी स्थिति बनाये रखी।

इस प्रकार पाँचवाँ उच्छ्वास यहीं समाप्त होता है।

बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

संस्कृतसाहित्य जगत् में यह प्रसिद्ध सूक्ति है कि 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'। तात्पर्य यही है कि महाकविबाणभट्ट ने सम्पूर्ण काव्यजगत् को उच्छिष्ट(जूठा) कर दिया है। अर्थात् बाणभट्ट ने सभी प्रकार का वर्णन अपने काव्य में कर दिया है। अब इसके बाद जो कोई भी कवि जो कुछ भी वर्णन करता है वह बाणभट्ट द्वारा पहले ही किया जा चुका है।

इस कथन के पीछे महाकवि बाणभट्ट की रचनाशैली की महत्ता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। बाणभट्ट की दो गद्यरचनाओं ने ही सम्पूर्ण साहित्य जगत् को अपना ऋणी बना दिया है, इसमें कोई असमंजस नहीं है। इसे केवल ध्यानपूर्वक देखने की आवश्यकता है। वस्तुत: काव्य के दो पक्ष होते हैं भावपक्ष और कला पक्ष। या हृदय पक्ष और बाह्यपक्ष। भावपक्ष में कवि द्वारा वर्णित घटनाओं के अनुकूल पात्रों के हृदय की गति का अवलोकन होता है कि कोई व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में क्या विचार कर सकता है। इस समय किसी के चित्त की क्या दशा होती है। कलापक्ष में बाह्यचित्रण के रूप में भवन उद्यान जलक्रीडा वनविहार आदि का वर्णन होता है। प्राय: सभी कवि इन दोनो प्रकार की रचना करते हैं। भाषा की प्राञ्जलता, प्रवाहात्मकता, भावाभिव्यञ्जकता, तथा वर्ण्यविषय की सजीवता कवि के कवित्व को प्रदर्शित करता है। जो चित्रण चिरकाल तक सहृदयों को अपनी कमनीयता से आकृष्ट किये रहता है वह वर्णन श्रेष्ठ हो जाता है। महाकविबाणभट्ट की रचना के आगे अन्य सभी कवियों की लेखनी फीकी पड़ जाती है। इसीलिये मुक्तकण्ठ से विद्वज्जनों ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'।

छन्द विहीन रचना को गद्य कहते हैं। 'वृत्तबन्धोज्झितं गद्यमिति साहित्यदर्पणकार:'। छन्द का बन्धन न होते हुए भी गद्य की रचना कठिन होती है। यही कारण है कि गद्य रचनाकारों में अंगुलिगणनीय नाम ही आते हैं। महाकवि दण्डी, सुबन्धु, महाकविबाणभट्ट, एवं पं0 अम्बिकादत्तव्यास। जबकि पद्यकाव्य के रचनाकारों की पंक्तियाँ बहुत लम्बी है। इसीलिये कहा जाता है कि गद्यलेखन कवित्व का निकष है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'।

गद्यलेखन के चार प्रकार आचार्यों ने बताये हैं - मुक्तक, वृत्तगन्धि , उत्कलिकाप्राय, और चूर्णक। मुक्तक समास रहित होता है। वृत्तगन्धि में छन्द के लक्षण

कुछ कुछ दिखाई दे जाते हैं। उत्कलिकाप्राय में दीर्घ समास का बाहुल्य होता है और चूर्णक में अल्पसमास होता है। यथा –

वृत्तबन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्।।
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्।
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तूर्यं चाल्पसमासकम्।। **साहित्यदर्पणः**

महाकविबाणभट्ट की लेखनी इन चारों प्रकार की रचनाओं में एक समान कुशलता प्रदर्शित करती है। अर्थात् चारों प्रकारों पर इनका एक समान अधिकार है। इससे यह ज्ञात होता है कि गद्य रचना में ये अद्वितीय है। इसीलिये इन्होंने कादम्बरी में स्वयं कहा है कि यह कथा 'अतिद्वयी' कथा है।

'अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा'। कादम्बरी।

कादम्बरी या हर्षचरितम् का भावपक्ष भी उतना ही मजबूत है जितना कि कला पक्ष। इनके भावात्मक चित्रण में सहृदयों के हृदय पर अमिट छाप डालने की वह क्षमता है जो अन्य कवियों में देखने को नहीं मिलती है। सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, रातनैतिक, मनोवैज्ञानिक,आध्यात्मिक, या भौतिक, कोई भी पक्ष इनकी रचना से बाहर नहीं है। इसीलिये इनके बाद के कवियों ने जब इन तथ्यों का वर्णन किया तो सहृदयों को बाणभट्ट की ही छाया नजर अती है। यद्यपि सभी कवियों के वर्णन की कुशलता पृथक् पृथक् होती है। पर सहृदयों के हृदय पर अपना चिह्न स्थापित करने में सभी सफल नहीं हो पाते हैं। यह कहा जा सकता है कि महाकवि बाणभट्ट के अद्भुत रचनाकौशल से प्रभावित होकर सहृदय विद्वानों ने उनकी विद्वत्ता के सम्मान में यह कथन प्रस्तुत किया है कि आपने समग्र साहित्य जगत् को जूठा कर दिया है। अर्थात् कोई भी वर्ण्यविषय आपने नहीं छोड़ा है।

❑❑❑

पञ्चम उच्छ्वासः

नियतिर्विधाय पुंसां प्रथमं सुखमुपरि दारुणं दःखम्।

कृत्वा लोकं तरला तडिदिव वज्रं निपातयति।।1।।

अन्वयः - *नियतिः प्रथमं पुंसां सुखं विधाय उपरि दारुणं दुःखं कृत्वा लोकं तरला तडिदिव वज्रं निपातयति।*

व्याख्या - *नियतिः भाग्यं 'भाग्यं तु नियतिर्विधिरित्यमरः' पुंसां पुरुषाणां प्रथमं पूर्व आदाविति, सुखं हर्ष ततश्च दुःखं कष्टं कृत्वा सम्पाद्य लोकं जनं समस्तसंसारं वा तरला चंचला तडित् विद्युत् 'तडित्सौदामिनी विद्युत् चंचला चपला अपीत्यमरः' वज्रं कुलिशं कठोराघातकशस्त्रं, निपातयति। यथा तरला विद्युत् क्षणं यावत् प्रकाशरूपसुखं कृत्वा बारम्बारं वज्रं पातयति तथैव भाग्यमपि लोकेषु प्रथमं सुखं विधाय पश्चात् बारम्बारं दुःखं दर्शयतीति। तडिदिवेत्यत्रोपमालङ्कारः। आर्या नाम वृत्तम्।*

हिन्दी - *जैसे विद्युत् क्षण भर के लिये प्रकाश रूप चमक दिखाकर बाद में बार बार वज्रपात करने लगती है उसी प्रकार भाग्य भी पुरुषों के लिये पहले सुख दिखाकर वाद में बार बार दुःख देने लगती है।*

पातयति महापुरुषान्सममेव बहूननादरेणैव।

परिवर्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः।।2।।

अन्वयः - *परिवर्तमान एकः कालः सममेव बहून् महापुरुषान् अनादरेणैव अनन्तः शैलान् इव पातयति।*

व्याख्या - *परिवर्तमानः परिवर्तनशीलः, पार्श्वपरिवर्तनं कुर्वन्, एकः केवलं 'एको न्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा' कालः समयः, सममेव सहैव बहून् विविधान्, महापुरुषान् महान् चासौ पुरुषः महापुरुषः तान्, अनादरेणैव न आदरः अनादरः अवहेलनमित्यर्थः, तेन अनादरेणैव, अनन्तः शेषः, पृथ्वीधारणकर्ता शेषनाग इति, शैलान् पर्वतान् 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावा चलशैलशिलोच्चया इत्यमरः' इव पातयति*

वंसयति। यथा अनन्तः एकाकी एव पार्श्वपरिवर्तनमात्रेण बहून् पर्वतान् सहैव ध्वंसयति तथैव कालः समयः बहून् महापुरुषान् सहैव पातयतीत्यर्थः। अनन्त इवेत्यत्रोपमालंकारः। आर्यानाम वृत्तम्।

हिन्दी – जैसे अकेला शेषनाग पार्श्वपरिवर्तन करते हुए बहुत सारे पर्वतों को एक साथ ही ध्वस्त कर देता है, उसी तरह परिवर्तित होता हुआ समय अकेला एक साथ ही बहुत सारे महापुरुषों का पतन कर देता है।

अथ कदाचिद्राजा राज्यवर्धनं कवचहरमाहूय हूणान्हन्तुं हरिणानिव हरिर्हरिणेशकिशोरमपरिमितबलानुयातं चिरन्तनैरमात्यै रनुरक्तैश्च महासामन्तैः कृत्वा साभिसरमुत्तरापथं प्राहिणोत्।

व्याख्या – अथ अनन्तरं पूर्वकथाया अनन्तरमिति भावः, कदाचिद्राजा कस्मिँश्चित् समये राजा प्रभाकरवर्धनः, हर्षवर्धनस्य पिता, राज्यवर्धनं राज्यवर्धननामधेयं पुत्रं, कवचहरम् कवचं वर्म शरीरत्राणं, तत् हर्तु शरीरे धर्तुं योग्यं वयः यस्य तम्, आहूय आकार्य, हूणान् हूणजातिविशेषान् दुष्टान् ,हन्तुं मारयितुमपसारयितुं वा, हरिणान् हरिणो मृगः 'मृगे कुरङ्गवातायुर्हरिणाजिनयोनयः इत्यमरः'तान्, इव हरिः सिहः 'सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरीहरिरित्यमरः' , हरिणेशकिशोरम् हरिणस्य ईशः स्वामी हरिणेशः सिंहः तस्य किशोरः बालः जातकः सिंहशिशुरिति, अपरिमितबलानुयातं न परिमितं निश्चितं न परिमितं अपरिमितं अनिश्चितं अगणनीयं, बहुसंख्याकमिति भावः, तादृशैः अनुयातं अनुगमितं, चिरन्तनैः चिरकालिकैः ये चिरकालात् राजसेवायामासन् तैः, अमात्यैः मन्त्रिभिः, सचिवैः 'मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः इत्यमरः' अनुरक्तैश्च ये राजनि अनुरक्ताः आसन् तैः, राज्ञां गुणानवलोक्य ये हृदयेन राजपरिवारे अनुरक्ता आसन् तैरिति भावो ग्राह्यः, महासामन्तैः विशिष्टैः सामन्तैः लघुराजभिः, कृत्वा, अर्थात् पुत्रेण सार्ध विशिष्टसामन्तान् अपरिमितबलान् सैनिकान् च कृत्वा साभिसरम् अभिसरम् सहायम्, सहायतार्थ सैनिकानां नियोजनपूर्वकं, उत्तरापथं उत्तरदिशि स्थितप्रदेशविशेषं, प्राहिणोत् प्रेषयामास। हरिणानिव हरिरित्यत्रोपमालंकारः।हरिणानिव हरिर्हरिणेश, चिरन्तनैरमात्यैरनुरक्तैश्चेत्यादौ चानुप्रासा –लङ्कारः।

हिन्दी – किसी समय राजा प्रभाकरवर्धन ने कवच पहनने के योग्य अपने पुत्र को हूणों को मारने के लिये उत्तर दिशा में प्रषित किया,जैसे सिंह अपने पुत्र को हरिणों को मारने के लिये प्रेषित करता है। अपने पुत्र के साथ अपरिमित सैनिक बल भेजा और चिरकाल से अनुरक्त अमात्यों एवं सामन्तों को उसका सहायक बनाकर भेजा।

प्रयान्तं च तं देवो हर्षः कतिचित्प्रयाणकानि तुरङ्गमैरनुवव्राज। प्रविष्टे च कैलासप्रभाभासिनी ककुभं भ्रातरि वर्तमानो नवे वयसि विक्रमरसानुरोधिनि केसरिशरभशार्दूलबहुलेषु तुषारशैलेषूत्कण्ठमान वनदेवताकटाक्षांशुशारितशरीरकान्तिः क्रीडन्मृगयां मृगलोचनः कतिपयान्यहनि बहिरेव व्यलम्बत। चकार चाकर्णान्ताकृष्ट कार्मुकनिर्गतभासुरभल्लवर्षीस्वल्पीयोभिरेव दिवसैर्निःश्वापदा -न्यरण्यानि।

व्याख्या – *प्रयान्तं सैनिकैस्सह स्वलक्ष्यसाधनाय गच्छन्तं, च तं स्वज्येष्ठभ्रातरं राज्यवर्धनं, देवो श्रेष्ठो सर्वगुणसम्पन्न इति भावः, हर्षः हर्षवर्धनः, कतिचित्प्रयाणकानि मार्गे कतिचित् निवासस्थानानि तुरङ्गमैः अश्वैः अनुवव्राज पृष्ठे पृष्ठे जगाम। प्रविष्टे प्रवेशं कृतवति राज्यवर्धने च कैलासप्रभाभासिनी कैलाशाख्यश्वेतपर्वतस्य या प्रभा श्वेतकान्तिः तया कान्त्या वा तद्वत् कान्त्या भासिनि प्रकाशिनि, ककुभं दिशं 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ता इत्यमरः' भ्रातरि स्वाग्रजे , वर्तमानो स्थितः नवे वयसि नवीने आयौ अर्थात् नवयौवने, विक्रमरसानुरोधिनि विक्रमं बलं तदेव रस आनन्दः तस्यानुरोधपरिपूर्णे(वयसीति) केसरिशरभशार्दूलबहुलेषु केसरी सिंहः 'सिंहो मृगेन्द्रः पंचास्यः हर्यक्षः केसरीहरिरित्यमरः' शरभः मृगविशेषः 'गन्धर्वः शरभो रामः इत्यमरः' अष्टपदयुक्तो मृगविशेषः, शार्दूलो व्याघ्रः 'शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे इत्यमरः' इत्यादिभिः परिपूर्णेषु, यस्मिन् वने एते भयंकरजीवाः पर्याप्तमात्रायामासन् तस्मिन्वने, तुषारशैलेषूत्कण्ठमानवनदेवताकटाक्षांशुशारितशरीरकान्तिः तुषारो हिमः, तुषारस्तुहिनं हिममित्यमरः' तस्य शैलः पर्वतः हिमालयः, तत्र उत्कण्ठया युक्ता ये वनस्य देवताः तासां कटाक्षैः तिर्यक् दृष्टिपातैः निस्सृतो यदंशुः किरणं मयूखः, तैः किरणैः शारितः चित्रीकृतः शरीरस्य कान्तिर्यस्यासौ हर्षः, क्रीडन्मृगयां मृगया आखेटः(शिकार)'स्यादाखेटो मृगया स्त्रियामित्यमरः' तया मृगयया क्रीडन्, मृगलोचनः मृगवल्लोचनं यस्य स मृगलोचनो हर्षः, कतिपयान्यहनि अहन् दिनम् कतिचनदिनानि, बहिरेव बाह्यभूमावेव (यस्यां दिशि यस्मिन् वने प्राविशत् राज्यवर्धनः, तस्य वनस्य बाह्यभूवावेव) व्यलम्बत अतिष्ठत् । । चकार कृतवान्, च आकर्णान्ताकृष्ट-कार्मुकनिर्गतभासुरभल्लवर्षी कर्णसमीपं यावत् आकृष्टं यत्कार्मुकं धनुः ' धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकमित्यमरः' तस्मात् धनुषो निर्गतं यत् भासुरस्य दीप्तस्य भल्लस्य*

तीक्ष्णवाणस्य वर्षणं तत्सम्पादयितुं शीलं यस्य स हर्षः अर्थात् कर्णपर्यन्तं धनुराकृष्य वाणवर्षणे कुशलः स्वल्पीयोभिः स्वल्पः न्यूनः तथाविधैः , एव दिवसैः दिनैः, निःश्वापदान्यरण्यानि निर्गतानि श्वापदानि हिंसकजीवाः यस्माद् वनात् तादृशानि अरण्यानि वनानि 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनमित्यमरः' (कृतवानिति योजनीयः)।

हिन्दी – उत्तर दिशा की ओर जाते हुए राज्यवर्धन के साथ हर्ष भी अपने घोड़े के साथ रास्ते के कुछ पड़ावों तक साथ साथ चले। जब राज्यवर्धन कैलाश पर्वत की उजली कान्ति से प्रभासित उत्तरदिशा में प्रविष्ट हो गये तब अपने विक्रम के आनन्द का अनुरोध करनेवाली अर्थात् बलप्रदर्शन करने की इच्छा रखनेवाली नई उम्र में (नई जवानी में) स्थित, हिमालय की तराई में उत्कण्ठित देवताओं के कटाक्षकिरणों से रंगविरंगे शरीरवाले, हरिण के समान आँखों वाले(हर्ष) सिंह व्याघ्र शरभ आदि से परिपूर्ण वनों में शिकार खेलते हुए कुछ दिनों तक बाहर ही टिके रहे। थोड़े दिनों में ही कानों तक धनुष को खींच अत्यन्त तीक्ष्ण भाले की तरह वाणों की वर्षा करने में कुशल हर्ष ने उस वन को हिंसक जीवों से रहित कर दिया।

एकदा तु वासतेय्यास्तुरीये यामे प्रत्युषस्येव स्वप्ने चटुलज्वालापुञ्जपिञ्जरीकृतसकलककुभा दुर्निवारेण दवहुतभुजा दह्यमानं केसरिणमद्राक्षीत्। तस्मिन्नेव दावदहने समुत्सृज्य शावका-नुत्प्लुत्य चात्मानं पातयन्तीं सिंहीमपश्यत्। आसीच्चास्य चेतसि - लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति' इति।

व्याख्या -एकदा एकस्मिन्समये, तु वासतेय्यास्तुरीये वासतेयी रात्रिः तस्य ाः तुरीये अन्ति चतुर्थे, यामे प्रहरे, प्रत्युषसि - प्रातःकाले, एव, स्वप्ने चटुलज्वालापुञ्जपिञ्जरीकृतसकलककुभा - चटुलाया चञ्चलाया ज्वालाया पुञ्जेन समूहेन पुञ्जरीकृतः पीतवर्णीकृतः सकलः सम्पूर्णः ककुभः येन तादृशा, दुर्निवारेण न निवारयितुं योग्यः यः स तादृशेन, दवहुतभुजा हुभुक् वह्निः दवहुतभुक् वनाग्निरिति तेन, 'हिरण्यरेता हुतभुक्दहनो हव्यवाहनः इत्यमरः' दह्यमानं सज्वल्यमानं केसरिणम् सिंहम् अद्राक्षीत्– अपश्यत्। तस्मिन्नेव यद्दावदहनं प्रवर्तितमासीत् तस्मिन् दावदहने काष्ठाग्नौ वनाग्नौ वा, समुत्सृज्य त्यक्त्वा, शावकान् शिशून, 'पृथुकः शावकः शिशुरित्यमरः' उत्प्लुत्य उच्छलितो भूत्वा कूर्दनं कृत्वेति, चात्मानं स्वशरीरं, पातयन्तीं

प्रक्षेपयन्तीं, सिंहीमपश्यत् सिंहपत्नीमवलोकयत्। आसीत् चास्य अस्य श्रीहर्षस्य स्वप्नदर्शनावसरे, चेतसि चित्ते, लोके संसारे हि लोहेभ्य: आयसेभ्य:, 'सर्वं च तैजसं लौहं विकारस्त्वयस: कुशीत्यमर:' कठिनतरा: कठोरादपि कठिना:, खलु स्नेहमया स्नेहस्वरूपा:, बन्धनपाशा: बन्धनस्य पाशा: रज्जव:, यथा कठोरा भवन्ति लौहपाशा तेभ्योपि दृढ़तरा स्नेहपाशा इत्यर्थ:, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽपि येन स्नेहपाशेन आकर्षिता: तिर्यञ्च: पक्षिणो लघुजीवा अपि, एवमाचरन्ति एवं विधाचरणमाचरन्ति कुर्वन्तीति। मृत्युमुखे गच्छन्तं पतिं वीक्ष्य पत्नी चापि जीवनं नेच्छतीति भाव:।

हिन्दी - एक समय राजा हर्ष ने रात्रि के अन्तिम प्रहर प्राय: प्रात:काल में ही स्वप्न में कि चञ्चलज्वाला पुञ्ज से सम्पूर्ण दिशाओं को पीला बनाने वाले दुर्निवार वनाग्नि में जलते हुए एक सिंह को देखा। उसी दावाग्नि में अपने बच्चों का परित्याग कर अपने शरीर को गिराती हुई सिंहनी को भी देखा। उस समय हर्ष के चित्त में आया कि - संसार में लोहे के पाश से भी कठन पाश स्नेह का होता है। जिस स्नेह पाश से आकृष्ट होकर तिर्यक्' क्षुद्रजीव भी ऐसा आचरण करते है।

प्रबुद्धस्य चास्य मुहुर्मुहुर्दक्षिणेतरमक्षि पस्पन्दे। गात्रेषु चाकस्मादेव वेपथुर्विपप्रथे। निर्निमित्तमेवान्तर्बन्धनस्थानाच्चचालेव हृदयम्। अकारणादेव चाजायत गरीयसी दु:खासिका। किमिदमिति च समुत्पन्नविविधविकल्पविमथितमतिरपगतधृतिश्चिन्तावनमितवदन: स्तिमिततारकेण चक्षुषा समुद्भिद्यमानस्थलकमलिनीवनामिव चकार चकोरेक्षण: क्षणं क्षोणीम्। अह्नि च तस्मिन् शून्येनैव च चेतसा चिक्रीड मृगयाम्। आरोहति च हरितहये मध्यमह्नोभवनमागत्योभयतो मन्दमन्दं संवाह्यमानतनुतालवृन्त: क्षितितलवितताम‍तिशिशिर-मलयजरसल-वलुलितवपुषमिन्दुधवलोपधानधारिणी वेत्रपट्टिका-मधिशयान: साशङ्क एव तस्थौ।

व्याख्या - प्रबुद्धस्य प्रबुद्धो पूर्णरूपेण जागरित: त्यक्तनिद्र इति , तस्य, यस्य निद्रा समाप्तिं गता, तस्य, चास्य हर्षस्य, मुहुर्मुहु: बारम्बारं, दक्षिणेतरमक्षि वामं नयनं पस्पन्दे स्पन्दनं कम्पनं चकार। दक्षिणेतरनयने स्पन्दनमभवदिति। दक्षिणेतरनयनस्पन्दनं दु:खदर्शकमित्यामनन्ति ज्यौतिषज्ञा:, गात्रेषु गात्रं शरीरं तेषु सम्पूर्ण शरीरे, च

अकस्मादेव अनायासमेव, वेपथुः कम्पनं विपप्रथे विस्तारं जगाम। अर्थात् क्रमशः शरीरे कम्पनवृद्धिरभवत्। निर्निमित्तम् निमित्तं कारणं निर्निमित्तं कारणं विनैवेति भावः, एवान्तर्बन्धनस्थानात् अन्तः यद्बन्धनं तस्मात् बन्धनसथानात् चचालेव स्खलितम् इव हृदयम् चित्तम्। अकारणादेव कारणं विनैव च अजायत उत्पन्नाभवत्, गरीयसी अतिकठिना, दुःखासिका दुःखपंक्तयः। किमिदमिति एतत् कम्पनादिकं कथमिति, च समुत्पन्नविविधविकल्पविमथितमतिः समुत्पन्नेन विविधप्रकारकेन विकल्पेन मथिता मतिर्यस्यासौ , अपगतधृतिः – अपगता नष्टा धृतिः धैर्य यस्यासौ हर्षः, चिन्तावनमितवदनः चिन्तया अवनमितं नम्रमभूत् वदनं मुखं यस्यासौ, स्तिमिततारकेण स्तिमितं स्थिरं तारकं अक्ष्णः कोणभागः 'तारकाक्ष्णा कनीनिकेत्यमरः' यस्य तादृशेन चक्षुषा नयनेन समुद्भिद्यमानस्थल कमलिनीवनामिव विकचमानमस्ति स्थलकमलिनीवनं काननं यस्यां तादृशीं (उपमालंकारः) चकार कृतवान्, चकोरेक्षणः चकोरपक्षीवन्नयनं यस्यासौ हर्षः क्षणं क्षणं यावत् क्षोणीम् धरणीम्' धरा धरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिरित्यमरः' अर्थात् क्षणं यावत् सम्पूर्णधरणीं चिन्तायाः वनमिव ज्ञातवान्। अह्नि दिवसे च तस्मिन्, शून्येनैव विषयरहितेन एव, च चेतसा हृदयेन, 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः इत्यमरः' चिक्रीड क्रीडितवान्, मृगयाम् आखेटम्। अर्थात् स्वप्नदर्शनानन्तरं कथमिदमवलोकितमिति संकल्पविकल्पबाहुल्यात् संशयग्रस्तः सः अन्यविषयरहितेन चेतसा मृगयाकार्य कृतवान्। सम्पूर्णदिवसं स्वप्नविषयमेवाचिन्तयदिति भावः। आरोहति उपरि गच्छति, च हरितहये हरितवर्णायो हयः अश्वो यस्यासौ सूर्यः तस्मिन्, मध्यमह्नो अह्नः दिवसस्य मध्यम् मध्यभागम्, भवनमागत्य भवनं निवासस्थानम् आगत्य सम्प्राप्य, उभयतो द्वाभ्यापक्षाभ्यां , मन्दमन्दं शनैः शनैः संवाह्यमानतनुतालवृन्तः वीज्यमानलघुव्यजनः यस्य कृते असौ हर्ष, क्षितितलवितताम् क्षितिः पृथ्वी तस्यास्तले पृथिव्यामिति भावः, अतिशिशिरमलयजरसलवलुलितवपुषम् अत्यन्तशिशिरेण शीतलेन मलयपर्वतादुत्पन्नो मलयजः चन्दनः तस्य रसलवेण रसविन्दुना लुलितं सिक्तं वपुषम् गात्रं शरीरं यस्य तादृशीम्, इन्दुधवलोपधानधारिणीं इन्दुः चन्द्रः तद्वत् धवलं श्वेतं उपधानं शिरसः अधस्तात् रक्षणयोग्यं सुकोमलं वस्तु, तत धारणकर्त्रीम्, वेत्रपट्टिकाम् वेतस् निर्मितां पट्टिकां प्रस्तरं, अधिशयानः तस्यां पट्टिकायां शयनं कुर्वानः साशङ्क विविधविधशंकाग्रस्तः सन् शंकया युक्त एव तस्थौ स्थितवान्।

हिन्दी – जब ये हर्ष नींद से जागे तो बार बार उनकी बायीं आँख फड़कने लगी। शरीर में एकाएक कम्पन होने लगा। अकारण ही मानो अपने अन्तर्बन्धन स्थान

से हृदय हिल गया। अकारण ही प्रबल दुःख उत्पन्न हो गया। यह क्या और कैसे हो रहा है' इस प्रकार के विकल्प बाहुल्य के कारण जिसकी बुद्धि मथित हो रही थी, जिसका धैर्य मानो लुप्त हो गया था, चिन्ता के कारण झुके हुए मुखवाले, स्थिर पुतलीवाले आँखों से उस चकोर के समान आँखों वाले हर्ष ने खिलती हुई स्थलकमलिनी के वन की तरह क्षण भर के लिये धरती को बना दिया। अर्थात् उसकी आँखें धरती पर झुकी हुई थी, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो धरती स्थलकमलिनी का वन हो गयी हो। अर्थात् आँखों की कान्ति कमल के समान प्रभासित हो रही थी। उस दिन शून्य हृदय से ही उसने शिकार खेला। जब हरे रंग के घोड़े वाले भगवान् सूर्य मध्य आकाश में चढ़ आये तब अपने निवासस्थान पर आकर, जिसके दोनो ओर छोटे छोटे पंखे हिलाये जा रहे थे, वे हर्ष धरती पर मलयज रस से सिक्त वेंत की चटाई पर चन्द्रमा के समान धवल तकिये के सहारे शङ्काग्रस्त हृदय से अवस्थित हुए।

अथ दूरादेव लेखगर्भया नीलीरागमेचकरुचा चीरचीरिकया रचितमुण्डमालकम्, श्रमातपाभ्यामारोप्यमाणकायकालिमानम्, अन्तर्गतेन शोकशिखाऽङ्गारतामिव नीयमानम्, अनित्वरागमनद्रुतत-रपदोद्धूयमान धूलिराजिव्याजेन राजवार्ताश्रवणकुतूहलिन्या मेदिन्येवानु गम्यमानम्, अभिमुखपवनप्रेंखत्प्रविततोत्तरीयपटप्रान्तवीज्य-मानोभयपार्श्वमतित्वरया कृतपक्षमिवाशु परापतन्तम्, प्रेर्यमाणमिव पृष्ठतः स्वाम्यादेशेनाकृष्यमाणमिव पुरस्तादायतैः श्रमश्वासमोक्षैः, स्विद्यल्ललाटतटघटमानप्रतिबिम्बकेन कार्यकौतुकादपह्रियमाण लेखमिव भास्वता संभ्रमभ्रष्टैरिवेन्द्रियैः शून्यीकृतशरीरम्, लेखार्पितप्रयोजनगौरवादिव समेऽपि वर्त्मनि शून्यहृदयतया स्खलन्तम्, कालमेघशकलमिव पतिष्यतो दुर्वार्तावज्रस्य , धूमपल्लवमिव ज्वलिष्यतः शोकज्वलनस्य, बीजमिव फलिष्यतो दुष्कृतशालेरनिमित्तभूतदीर्घाध्वगं कुरङ्गकनामानमायान्तमद्राक्षीत्।

व्याख्या – *अथ अनन्तरं, दूरादेव दूरदेशादेव, लेखगर्भया लेखः लिखितपत्रमस्ति गर्भे अन्तः यस्याः सा लेखगर्भा तया (शिरोवेष्टनस्य विशेषणमिदम्) नीलीरागमेचकरुचा*

नीलिनामधेयो रागः वर्णः वा नीलवर्णः तेन रञ्जनत्वात् मेचकरुचा श्यामवर्णीयया कान्त्या 'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचका इत्यमरः' चीरचीरिकया चीरं वस्त्रं चीरिका खण्डं तया वस्त्रखण्डेनेत्यर्थः, रचितमुण्डमालकम् रचितं निर्मितं मुण्डस्य शिरसः मालकम् वेष्टनोपयुक्तरूपमिति (पगड़ी इति भाषायाम्), श्रमातपाभ्यामारोप्यमाणकायकालिमानम् दूरादागमनेन जातः श्रमः परिश्रमः, आतपः तीक्ष्णकिरणप्रभावादुत्पन्नग्रीष्मः ताभ्यां आरोप्यमानम् सम्पाद्यमानम् कायस्य शरीरस्य कालिमानम् कृष्णिमानम्, कृष्णवर्णतां, अन्तर्गतेन शोकशिखाऽङ्गारतामिव अन्तर्गतः अन्तः हृदये स्थितेन शोकः दुःखं तस्य शिखया कलिकया अङ्गारतां अग्न्युच्छिष्टतां(राख इति भाषायाम्) वा धूवर्णत्वं, नीयमानम् बलात्क्रियमानम्, अतित्वरागमनद्रुततरपदोद्धूयमान धूलिराजिव्याजेन अतित्वरया अतितीव्रगत्या आगमनेन आगमनक्रियया द्रुततरं तीव्रतरं चलद्भ्यां पद्भ्यां चरणाभ्यां उद्धूयमाना उत्पतस्यमाना या धूलिराजिः रजोपंक्तयः रजःसमूहो वा, तस्य ब्याजेन मिषात्, राजवार्ताश्रवणकुतूहलिन्या राजकीया या वार्ता सन्देशः सा राजवार्ता तां श्रोतुं कौतूहलमस्ति यस्याः सा तया मेदिन्येव मेदिन्या धरण्या 'क्ष्मावनिर्मेदिनी महीत्यमरः'इव एव अनुगम्यमानम्, अभिमुखपवनप्रेंखत्प्रविततोत्तरीयपटप्रान्तवीज्यमानोभयपार्श्वम् – अभिमुखं सम्मुखं आपतत् पवनेन वायुना प्रेंखता प्रकम्पवता प्रविततेन अतिविस्तृतेन दीर्घेण उत्तरीयपटप्रान्तेन उत्तरीयं द्वितीयवस्त्रं तस्य द्वितीयवस्त्रस्य प्रान्तेन कोणभागेन वीज्यमान् वायुनासंवाह्यमानम् उभयपार्श्वम् शरीरस्य भागद्वयम्, अतित्वरया अतिशीघ्रतया 'जवोऽथ शीघ्रत्वरितमित्यमरः' कृतपक्षमिवाशु कृतं धृतं पक्षं गरुत् पंख इति वत् 'गरुत्पक्षच्छदाः पत्रमित्यमरः' आशु शीघ्रं, 'अविलम्बितमाशु चेत्यमरः' परापतन्तम् आगच्छन्तम्, प्रेर्यमाणमिव बलात् सम्प्रेष्यमानमिव, पृष्ठतः पृष्ठदेशात्, स्वाम्यादेशेनाकृष्यमाणमिव स्वामिनः आदेशेन निदेशवाक्येन आकृष्यमान् सम्मुखमानीयमानम् इव, पुरस्तादायतैः अग्रतः आयतैः विस्तृतैः दीर्घैः, श्रमश्वासमोक्षैः श्रमवशादुत्पन्नश्वासमोचनैः, , स्विद्यल्ललाटतटघटमानप्रतिबिम्बकेन स्विद्यतः घर्मयुक्तात् ललाटतटात् भालतलात् घटमानेन निपतिष्यमानेन प्रतिविम्बकेन प्रतिच्छायया, कार्यकौतुकादपह्रियमाणलेखमिव कार्यस्य कौतुकात् शीघ्रत्वात् अपह्रियमानम् चौर्यमानम् लेखं पत्रम् इव, भास्वता भास्वान् सूर्यः तेन सूर्येण , संभ्रमभ्रष्टैरिवेन्द्रियैः संभ्रमात् कार्यव्यग्रत्वात् भ्रष्टैः च्युतैः इन्द्रियैः विकलेन्द्रियैरित्यर्थः, शून्यीकृतशरीरम् विरहितशरीरमिव, लेखार्पितप्रयोजनगौरवादिव लेखे समर्पितं यत्प्रयोजनं उद्देश्यं तस्य गौरवात् गुरुत्वात् , समेऽपि समतलेऽपि, वर्त्मनि मार्गे, शून्यहृदयतया हृदयस्य शून्यत्वात्

नास्ति किमप्यन्यत् चिन्तनीयं यस्य हृदये स शून्यहृदय: तस्य भाव: शून्यहृदयता तया, स्खलन्तम् पतन्तमिव, कालमेघशकलमिव कालो यमराज: तदेव मेघ: कालस्वरूपो मेघो वा तस्य शकलं खण्ड:, तद्वत् पतिष्यतो निपतिष्यमानस्य, दुर्वार्तावज्रस्य दुष्टा वार्ता सन्देश: दुर्वार्ता कठोरवार्ता कटुवार्तेति भाव:, तदेव वज्रं कुलिशम् अशनि:, तस्य, , धूमपल्लवमिव धूमस्य अग्न्युच्छिष्टस्य पल्लवं विस्तृतरूपमिव, ज्वलिष्यत: प्रज्वलत:, शोकज्वलनस्य शोकरूपिण: ज्वलनस्य वह्ने:, बीजमिव मूलतत्वं कारणमिव, फलिष्यतो परिणाममागम्यमानस्य, दुष्कृतशाले: दुर्दैवधान्यस्य 'शालय: कलमाद्याश्चेत्यमर:' दुष्कृतमेव शालिरित्यत्र रूपकम्, दु:खरूपधान्यस्येति वा, निमित्तभूतदीर्घाध्वगं निमित्तं कारणं 'निमित्तं हेतुलक्ष्मणोरित्यमर:' तद्वत् कारणभूतमिति दीर्घो अध्वगो पथिक: 'अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्य: पान्थ: पथिक इत्यपीत्यमर:' तं दीर्घमार्गादागतं कुरङ्गकनामानम् एतन्नामकदूतं सन्देशहरं 'स्यात्सन्देशहरो दूतो इत्यमर:' आयान्तम् आगच्छन्तम् अद्राक्षीत् अपश्यत्। विशेषरूपेणोत्प्रेक्षालंकार:।

हिन्दी – इसके बाद हर्ष ने दूर से आते हुए कुरङ्गक नामक दूत को देखा जिसने नीले रंग के वस्त्रखण्ड से शिर पर पगड़ी बाँध रखी थी जिस पगड़ी में कोई लिखित पत्र छिपा हुआ था। परिश्रम एवं गर्मी के कारण जिसका शरीर काला हो रहा था। अन्तर्हृदय में अवस्थित शोक के कारण मानो वह अङ्गारता को प्राप्त हो रहा था। अति शीघ्र आने के कारण द्रुततर चरणो के आघात से उड़ती हुई धूलि के बहाने से मानो राजसन्देश सुनने को उद्यत धरती उसके पीछे लगी हुई थी। सामने से बहती हवा के कारण उड़ते हुए अपने दुपट्टे के दोनो किनारे शरीर के दोनो ओर हवा कर रहे थे, ऐसा लग रहा था मानो जल्दी से पहुँचने के लिये उसने शीघ्र ही नया पंख धारण कर लिया हो। राजा का सन्देश मानो उसे पीछे से धक्का दे रहा था। आगे से परिश्रम के कारण दीर्घ एवं गर्म श्वासों के कारण पसीने की बून्दों से लथपथ ललाटभाग से गिरते हुए पसीने के बून्दों में प्रतिविम्बित छाया से मानो सूर्य उसके लेख को चुरा रहा था। कार्यव्यग्रता के कारण स्खलि होते हुए इन्द्रियों के कारण वह शून्यशरीर वाला हो रहा था। लेख में लिखे हुए प्रयोजन के भार से मानो वह समतल रास्ते पर भी शून्यहृदय होने के कारण स्खलित सा हो रहा था। गिरते हुए दुर्वार्ता (शेकप्रदसन्देश) रूप वज्र के लिये वह मानो कालमेघ के खण्ड के समान था।जलती हुई शोकाग्नि के धूमपल्लव के समान था। फलित होते हुए दुष्कृतरूप धान का बीज था। अनिमित्त की सूचना देने वाला वह लम्बी रास्ते से आनेवाला पथिक था।

दृष्ट्वा च पूर्वानिमित्तपरम्पराविर्भावितभीतिरभिद्यत हृदयेन। कुरङ्गकस्तु कृतप्रणामः समुपसृत्य प्रथममाननलग्नं विषादमुपनिन्ये, पश्चाल्लेखम्। तं च देवो हर्षःस्वयमेवादायावाचयत्। लेखार्थेनैव च समं गृहीत्वा हृदयेन संतापमवग्रहरूपोऽभ्यधात्। कुरङ्गक! किं मान्द्यं तातस्य? इति। स चक्षुषा वाष्पजलविन्दुभिर्मुखेन च खञ्जाक्षरैः क्षरद्भिर्युगपदाचचक्षे- देव! दाहज्वरो महान्' इति। तच्चाकर्ण्य सहसा सहस्रधेवास्य हृदयं पफाल। कृताचमनञ्च जनयितुरायुष्कामोऽपरिमितमणिकनकरजतजातमात्मपरिबर्हमशेषं ब्राह्मणसादकरोत्। अभुक्त एवोच्चचाल। 'दापय वाजिनः पर्याणम्' इति च पुरःस्थितं शिरः कृपाणं विभ्राणं बभाण युवानम्। वेपमानहृदयञ्च ससंभ्रमप्रधावितपरिवर्धकोपनीतमारुह्य तुरङ्गमेकाक्येव प्रावर्तत।

व्याख्या - दृष्ट्वा च अवलोक्य च , पूर्वानिमित्तपरम्पराविर्भावितभीतिरभिद्यत पूर्व स्वप्ने दृष्टा या अनिमित्तस्य अपशुकनस्य परम्परा राशिः, तेन आविर्भाविता समुत्पन्ना या भीतिः भयं तया भीत्या अभिद्यत् भिन्नो बभूव ,हृदयेन चित्तेन। अर्थात् सा अनिमित्तपरम्परोदितभीतिः तस्य हृदयं विभेदितवती । कुरङ्गकस्तु एतदाख्यदूतस्तु, कृतप्रणामः कृतवान् प्रणामं यः स कृतप्रणामः दूतः, समुपसृत्य हर्षस्य सम्मुखमागत्य, प्रथममाननलग्नं विषादमुपनिन्ये प्रथमं पूर्व आनने मुखे 'आननं लपनं मुखमित्यमरः' लग्नं स्थितं विषादं दुःखं , उपनिन्ये - पुरतः अकरोत्, पश्चाल्लेखम् तदनन्तरं लेखम् लिखितसन्देशयुक्तपत्रं, तं लेखं पत्रं, च देवो हर्षः स्वयमेवादायावाचयत् स्वयं हस्ते नीत्वा अवाचयत् अपठत्। लेखार्थेनैव लेखस्य यो निहितोऽर्थः भावः स लेखार्थः तेन सहैव च समं सार्ध, गृहीत्वा हृदयेन चित्तेन संतापम् हार्दिकतापं दुःखं, अवग्रहरूपोऽभ्यधात् स्तम्भनरूपम् धृतवान्। अर्थात् हार्दिकतापं तथैव दुःखकारकमभवत् यथा अवग्रहः वृष्टिरोधः प्रजानां कृते दुःखदायको भवति। अवग्रहो भवति वृष्टिरोधः। तेन अन्नानामुत्पादनाभावात् प्रजानां राज्ञांच दुःखमेव भवति। 'वृष्टिर्वर्ष तद्विघातेऽवग्रहावग्रहौ समावित्यमरः' कुरङ्गक! किं मान्द्यं का नाम मन्दता (को नाम शारीररिकविकारः येन शरीरे मन्दता समायाता वर्तते।) तातस्य पितुः, इति। स कुरङ्गकः प्रश्नं श्रुत्वा, चक्षुषा नयनेन, वाष्पजलविन्दुभिः वाष्पजलं नेत्रजलमश्रुबिन्दुरिति तैः विन्दुभिः सार्ध,

मुखेन आननेन, च खञ्जाक्षरै: खञ्ज: त्रुटिपूर्ण: अक्षम: इति, तादृशै: अक्षरै: अस्फुटवचनैरिति, क्षरद्भि: मुखात् पतद्भि:, युगपदाचचक्षे युगपत् सहैव, नेत्रविन्दुपतनं अस्फुटाक्षरेण कथनं च सहैवाभवदित्यर्थ:, देव! स्वामिन्, दाहज्वरो दाहाभिधो ज्वरो, महान् विशिष्टो प्रकृष्टो वर्तते येन मान्द्यमभवत्। दाहज्वरस्य लक्षणमित्थमस्ति-

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वर:।

तयो: प्रशान्तयो: पित्तमन्ते दाहं करोति च।।

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च।। माधवनिदानम्।

दाहोऽयमतिकष्टकर इति वदन्ति वैद्या:, इति।

तच्चाकर्ण्य तत् दाहज्वरस्य विषयं श्रुत्वा, सहसा अकस्मादेव, सहस्रधा सहस्रश: भागेषु स्फुटितो भूत्वा इव, अस्य हर्षस्य हृदयं चित्तं पफाल कूर्दनं चकार। कृताचमनञ्च कृतं सम्पादितं आचमनं शुभकार्यारम्भे स्पर्शनीयं जलं आचमनं तत् कृत्वा, जनयितु: येन जन्म प्रदत्तवान् स जनयिता पिता तस्य, आयुष्काम: आयुवृद्धिकामना अस्ति यस्य स, इदानीं दाहज्वरश्रवणेन आयुक्षयस्य या कल्पना हृदयेऽभवत् तत्परिमार्जनायायुवृद्धये, अपरिमितं परिमितं सीमितं गणनीयं, न परिमितमपरितमिति, अगणनीयमितिभाव:, मणिकनकरजतजातम् मणि: कनक: स्वर्ण:, रजतम् चान्दी इति, तादृशै: रत्नै: निर्मितम् समस्तं, आत्मपरिबर्हम् आत्मरक्षार्थमिव रक्षितम् परिच्छदमेव परिबर्ह:, 'परिच्छदे नृपार्हेऽर्थे परिबर्हो इत्यमर:' अशेषं सम्पूर्ण वस्तुजातं, ब्राह्मणसात् ब्राह्मणानां कृते अकरोत् कृतवान्। अर्थात् समस्तवस्तुदानमकरोत् विप्रेभ्य:। अभुक्त भोजनं विनैव, न भुक्त: अभुक्त इति, एव, उच्चचाल तत: प्रस्थितवान्। 'दापय अर्पय , वाजिन: अश्वस्य पर्याणम् उपवेशनार्थ वाजिपृष्ठस्थिताभरणम्, येन अश्ववाहकानामुपवेशने सौविध्यं भवति, इति च पुर:स्थितं अग्रे स्थितं, शिर:कृपाणं शिरसि स्थितं कृपाणं खड्गं 'करवाल: कृपाणवदित्यमर:' विभ्राणं धारयन्तं , बभाण उवाच, आदिष्टवान्, युवानम् युवकमिति। वेपमानहृदयञ्च कम्पमानहृदयं यस्यासौ हर्ष:, ससंभ्रमम् संभ्रमेण सहित: यो, प्रधावित: त्वरितगत्या धावन्नेव गतवान् ,तेव परिवर्धकोपनीतम् परिवर्धक: अश्वपाल: तेन उपनीतं, आरुह्य, तुरङ्गम् अश्वम् 'घोटके वीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमा इत्यमर:' एकाक्येव एक एव (अकेला ही) प्रावर्तत प्रस्थानं कृतवान्।

हिन्दी - पूर्व में (स्वप्न में) देखी गई अनिमित्त परम्परा के कारण उत्पन्न हुए डर (न जाने क्या होनेवाला है, यही डर हुआ) से हर्ष मानो हृदय से विदीर्ण हो गये। कुरङ्गक ने आकर प्रणाम किया और आगे बढ़कर उसने पहले तो मुख पर

विषाद का भाव, और बाद में लेख अर्पित किया। उस लेख को हर्ष ने स्वयं ग्रहण किया और पढ़ा। लेख के अर्थ(वास्तविक तत्त्व को) को पढ़ने के साथ ही जानकर अपने हृदय के सन्ताप को अवग्रह (सुखावरोधक, दुःख का कारण)रूप में धारण किया और बोला - कुरङ्गक! पिता जी को क्या मन्दता है? कुरङ्गक अपनी आँखों से अश्रुविन्दु के साथ ही टूटे फूटे बहते हुए अस्फुट अक्षरों से बोला - देव! महान् दाहज्वर है। इन वचनों को सुनकर एकाएक हर्ष का हृदय हजारों टुकड़े होकर उछलने लगा। और उसने आचमन कर अपने पिता की आयुवृद्धि की कामना से असीमित मणि, स्वर्ण,चान्दी, इत्यादि से बनी हुई आत्मोपभोग की समस्त सामग्री ब्राह्मण को दान कर दिया। विना भोजन किये ही वहाँ से चलने को तैयार हो गये। सामने में उपस्थित शिर पर कृपाण धारण करने वाले युवक को आदेश दिया कि घोड़े पर जिन चढ़ाओ। कम्पित हृदय से सम्भ्रमपूर्वक अश्वपाल द्वारा लाये गये घोड़े पर चढ़कर अकेले ही वहाँ से चल पड़े।

अकाण्डप्रयाणसंज्ञाशंखक्षुभितं तु संभ्रमात्सज्जीभूतमुद्भूत मुखरखुररवभरितसकलभुवनविवरमागत्यागत्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यो धावमानमश्वोऽयमढौकत। प्रस्थितस्य चास्य प्रदक्षिणेतरं प्रयान्तः विनाशमुपस्थितं राजसिंहस्य हरिणाःप्रकटयाम्बभूवुः। अशिशिररश्मि मण्डलाभिमुखश्च हृदयमवदारयन्निव दावशुष्के दारुणि दारुणं रराण वायसः। कज्जलमय इव बहुदिवसमुपचितबहलमलपटलमलिनित तनुरभिमुखमाजगाम शिखिपिच्छलाञ्छनो नग्नाटकः। दुर्निमित्तै रभिनन्द्यमानगमनश्च नितरामशङ्कत। हृदयेन पितृस्नेहाहितप्रदिम्ना च तत्तदुपैक्षमाणस्तुरङ्गमस्कन्धबद्धलक्ष्यं चक्षुरविचलं दधानो दुःखमवसितहसित संकथस्तूष्णींभूतेन भूपाललोकेनानुगम्यमानो बहुयोजनसम्पिण्डितमध्वानमेकेनैवाह्ना समलंघयत्।

व्याख्या - *अकाण्डप्रयाणसंज्ञाशंखक्षुभितं अकाण्डे असमये एव प्रयाणस्य गमनस्य या संज्ञा सूचना 'संज्ञा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैवार्थसूचनेत्यमरः' रूपो यो शंखः शंखध्वनिरिति तेन संक्षुभितं संनादितं, तु संभ्रमात्सज्जीभूतम् संभ्रमात् कार्यावेगात् शीघ्रतया गमनाय सज्जीभूतम् प्रस्थानयोग्यतां गतम्,*

उद्भूतमुखरखुररवभरितसकलभुवनविवरम् तस्मादुत्पन्नो यत् मुखरो बाचाल: खुरस्य शफस्य अश्वचरणस्य 'शफं क्लीबं खुर: पुमानित्यमर:' रव: ध्वनि: शब्द: ' शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वना इत्यमर:' तेन रवेण भरितं परिपूरितं सकलभुवनानां विवरं छिद्रम्, 'अनुप्रासालंकार: खकारस्य रकारस्य च बाहुल्यात्' आगत्यागत्य एकत्र आगत्य आगत्य, सर्वाभ्यो दिग्भ्यो विविधदिग्भ्यो, धावमानम् धावन्त एवागम्यमानम् अश्वीयम् अश्वसमूह:, अढौकत अनुजग्मुरिति। प्रस्थितस्य प्रस्थानं कृतो येन हर्षेण तस्य, चास्य हर्षस्य, प्रदक्षिणेतरं दक्षिणेतरो वाम: तत्, प्रयान्त: गच्छत:, विनाशमुपस्थितं साक्षादुपस्थितं विनाशं अमङ्गलं, राजसिंहस्य राजषु सिंह: राजसिंह: तस्य प्रभाकरवर्धनस्य, हरिणा: मृगा: प्रकटयाम्बभूवु: सम्मुखे प्रकटिता बभूवुरिति। अर्थात् सिंहस्य(प्रभाकरवर्धनस्याभावे मृगा: उच्छृंखला बभुवुरिति भयाभावात्) अशिशिररश्मि मण्डलाभिमुखश्च -शिशिर: शीतल: 'शीतं गुणे तद्वदर्था: सुषीम: शिशिरो जड इत्यमर:' न शिशिर: अशिशिर: उष्ण: रश्मि: किरण: सूर्य इत्यर्थ:, तन्मण्डलाभिमुखं सूर्यमण्डलम्प्रत्युन्मुखं हृदयमवदारयन्निव हृदयं चित्तं अवदारयन् स्फोटयन् इव, दावशुष्के दावाग्निना शुष्कतां गते, दारुणि काष्ठे 'काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इत्यमर:' दावाग्निना शुष्कतां गते अर्धदग्धे वनकाष्ठे इत्यर्थ:, दारुणं कठोरं 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकमित्यमर:' श्रुतिकठिनं, रराण दध्वान शब्दं कृतवान् वायस: काक:। कज्जलमय कज्जलस्वरूप: कृष्णवर्णीय:, इव ,बहुदिवसमुपचितबहलमलपटलमलिनिततनुरभिमुखम्- बहुदिवसेभ्य: उपचितं एकत्रीकृतं बहलं बहुलमात्रायां मलं अवशिष्टमवस्कामिव(मैल इति)तस्य पटलेन समूहेन मलिनतां गतं यस्य तनु:शरीरं तै: तादृशैर्वा जनै: सार्ध, अभिमुखं सम्मुखम्, आजगाम आगतवान्, शिखिपिच्छलाञ्छनो शिखि: मयूर: 'शिखावल: शिखी केकीत्यमर:' तस्य पिच्छं पुच्छं बर्ह: तदेव लाञ्छनं चिह्नं अर्थात् मयूरपुच्छेनांकित:, नग्नाटक अटनं भ्रमणं करोतीति अटक:, नग्नश्चायमटक: नग्नाटक: नग्नो भिक्षुक: जैनधर्मावलम्बीभिक्षुक इत्यर्थ:, एतै: पूर्वोक्तै:, दुर्निमित्तैरनभिनन्द्यमानगमनश्च निमित्तं कारणं दुर्निमित्तं अपशकुनमिति, तै: मृगकाकादिभि: अपशकुनै: अभिनन्द्यमान: अभिनन्दनं क्रियमाण: अर्थात् अपशकुनान्येव तस्य गमनावसरे अभिन्नन्दनं कृतवन्त इति, अत:, नितराम् पूर्णरूपेण, शङ्कत शङ्काग्रस्तोऽभवत्। अपशकुनदर्शनेन अनिष्टसन्देशस्य शंका जागरिता बभूव। शकुनविषये ज्ञातव्यविषय: -

शुभशकुनानि - स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जरा: सिंहशार्दूलनगाद्या: पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा:।। इत्यमर:

अपशकुनानि – वामे शवशिवाकुम्भा दक्षिणे गोमृगद्विजाः इति।

छिन्नाग्रऽङ्गच्छेदः कलहः शुष्कद्रुमस्थिते ध्वांक्षे इति वाराहमिहिरः।

हृदयेन चित्तेन, पितृस्नेहाहितम्रदिम्ना पितुः स्नेहवशात् आहिता समाविष्टा या म्रदिमा कोमलता तया, च तत्तदुपैक्षमाणः तत्तत् अपशकुनानि उपेक्षयन् तेषामपशकुनानामुपेक्षां कुर्वन् तुरंगमस्य अश्वस्य, स्कन्धबद्धलक्ष्यं स्कन्धे ग्रीवायामेव बद्धं लक्ष्यं दृष्टिविषयः, चक्षुः नयनं अविचलं सुस्थिरं दधानो धारणं कुर्वत् अश्वग्रीवायामेव नयनं निश्चित्य, दुःखमवसितहसितसंकथः दुःखेन अवसितं समाप्तं संकथनं वार्तालापादयो यस्य स हर्षः , तूष्णींभूतेन मौनमालम्ब्यमानेन भूपाललोकेन भुवं पालयतीरति भूपालः तेन भूपालेन राज्ञा सामन्तेनेत्यर्थः, अनुगम्यमानो पृष्ठदेशादनुम्रियमानः, बहुयोजनसम्पिण्डितमध्वानम् बहुयोजनं यावत् सम्पीडितम् सम्बद्धं यदध्वानं मार्गः बहुयोजनात्मको मार्ग इत्यर्थः :चतुःक्रोशात्मकं भवति योजनमेकम् - स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन इति लीलावती। तत् एकेनैवाह्ना एकेनैव अह्ना दिवसेन, समलंघयत् उल्लंघितं कृतवान्। अर्थात् बहुयोजनात्मकमार्गस्यातिक्रमणं कृतवान् एकेनैव दिवसेन।

हिन्दी – असमय में ही प्रस्थान का सन्देश देनेवाली शंखध्वनि को सुनकर एकाएक हड़बड़ी के साथ घोड़ों को सुसज्जित कर खुर की आवाज से समस्त भुवनों के अन्तराल छिन्द्र को भरते हुए विविध दिशाओं से दौड़ते हुए आ आ कर घोड़े एकत्रित होने लगे। जब हर्ष ने प्रस्थान किया तो वायें भाग से प्रयाण करते हुए राजसिंह (प्रभाकरवर्धन, अथवा जगल का राजा सिंह) के विनाश को देखकर मत्त हरिण प्रकट होने लगे। तात्पर्य है कि सिंह की मौत को उपस्थित देखकर मृग उच्छृंखल होकर कूदफाँद करने लगे। तप्त किरणमण्डल(सूर्य) के अभिमुख होकर दावाग्नि में अर्धदग्ध शुष्कवृक्षों पर बैठकर कौवे श्रवण कटु आवाज करने लगे। काजल के समान काले, बहुत दिनों से नहीं धोये जाने के कारण इकट्ठे हुए मलों से मलिन शरीरवाले साथियों के साथ मयूर की पूँछ से शोभित अंगवाले नग्न भिक्षुक(जैनसंन्यासी) सामने आ गये। इन सभी अपशकुनों से अभिनन्दित होते हुए हर्ष हृदय से बहुत शङ्कित हो गये। (उन्हें अपशकुन डराने लगा कि कहीं अप्रिय समाचार सुनने को न मिल जाय।) पिता से स्नेह के कारण अतिमृदु हृदय वाले हर्ष इन सभी अपशकुनों की उपेक्षा करते हुए अपने घोड़े के कन्धे पर अपनी आँखें टिकाये हुए लक्ष्य पर अविचल नेत्र गड़ाये दुःख के कारण जिसका वार्तालाप बन्द

हो चुका था ऐसे भूपालों से अनुगत होते हुए बहुत योजनों वाले मार्ग को एक ही दिन में पूरा कर गये। अर्थात् जो रास्ता बहुत दिनों में पार करनेवाला था, उसे एक दी दिन में पार कर गये। इससे अश्व की तीव्रता और कार्यव्यग्रता सूचित होती है।

उपलब्धनरेन्द्रमान्द्यवार्ताविषण्ण इव नष्टतेजस्यधोमुखीभवति भगवति भानुमति भण्डिप्रमुखेन प्रणयिना राजपुत्रलोकेन बहुशो विज्ञाप्यमानोऽपि नाहारमकरोत्। पुरःप्रवृत्तप्रतीहारगृह्यमाणग्रामीण परम्परा प्रकटितप्रगुणवर्त्मा च वहन्नेव निन्ये निशाम्।

व्याख्या – उपलब्धनरेन्द्रमान्द्यवार्ताविषण्ण उपलब्धा जनैः श्रुता प्राप्ता वा या नरेन्द्रस्य नराणां इन्द्रः नरेन्द्रो राजा प्रभाकरवर्धनः, तस्य मान्द्यस्य दाहाभिज्वरस्य वार्ता सन्देशः तेन विषण्णः दुःखमग्न, इव नष्टतेजसि ' नष्टे तेजसि तेजसो नाशात्, सायंकाले सूर्यस्य तेजसः समाप्तिर्भवति स्वयमेव परञ्चात्रोत्प्रेक्षा वर्तते यत् प्रभाकरवर्धनस्य मान्द्यवार्ता निशम्यैव सूर्यस्य तेजः समाप्तिं गतम्, अधोमुखीभवति अधोमुखं गच्छति, भगवति भानुमति भानुमान् सूर्यः तस्मिन् भानुमति सूर्ये, यदा सूर्य अधोमुखोऽभवत् तदेति भावः, भण्डिप्रमुखेन भण्डिनामधेयो जनो प्रमुखो वर्तते यस्य समूहस्य तादृशेन, प्रणयिना स्नेहिलजनेन प्रणयं प्रेम कुर्वता जनेन, राजपुत्रलोकेन राज्ञां पुत्रः राजपुत्रः, राजपुत्र एव लोकः तेन, बहुशो बारम्बारं भृशं विज्ञाप्यमानोऽपि विज्ञापितोऽपि बोधितोऽपि अनुरुध्यमानोऽपीति भावः, नाहारमकरोत् आहरः भोजनं न अकरोत् भोजनं न गृहीतवान्।। पुरःप्रवृत्तप्रतीहारगृह्यमाणग्रामीणपरम्पराप्रकटितप्रगुणवर्त्मा अग्रे प्रवृत्तेन गमनप्रवृत्तेन प्रतीहारेण दौवारिकेन 'प्रतीहारो द्वारपालः इत्यमरः' गृह्यमानाः आहूताः ये ग्रामीणाः ग्रामवास्तव्याः, तेषां ग्रामीणानां या परम्परा समूहः, तेन प्रकटितं प्रदर्शितं यत् प्रगुणं ऋजु 'ऋजावजिह्मप्रगुणावित्यमरः' सुगममित्यर्थः मार्गः पन्था, तेन, च वहन्नेव गच्छन्नेव निन्ये निशाम् रात्रिं समापितवान्। अर्थात् आरात्रिं गमनमेव कृतवान्। कदापि कुत्रापि विश्रामं न कृतवान्।

हिन्दी – राजा प्रभाकरवर्धन के मान्द्य की वार्ता सुनकर मानो विषण्ण हो गये भगवान भास्कर के नष्टतेज हो जाने पर, तथा सायंकाल में अधोमुख हो जाने पर हर्ष से प्रेम करनेवाले भण्डिप्रमुख प्रणयी (मित्र) लोगों के द्वारा बार बार अनुरोध किये जाने पर भी हर्ष ने आहार ग्रहण नहीं किया। आगे आगे चलनेवाले प्रतीहारों के द्वारा रास्ता पूछने के लिये पकड़कर लाये गये ग्रामीणों द्वारा दिखाये गये सुगम एवं लघु मार्गों पर चलते हुए रात्रि व्यतीत कर दी।

अन्यस्मिन्नहनि मध्यन्दिने विगतजयशब्दम्, अस्तमिततूर्यनादमुपसंहृतगीतम्, उत्सारितोत्सवम्, अप्रगीतचारणम्, अप्रसारितापणपण्यम्, स्थानस्थानेषु पवनबलकुटिलाभिः कोटिहोमधूलेखाभिरुल्लसन्तीभिर्यममहिषविषाण- कोटिभिरिवोल्लिख्यमानम्, कृतान्तपाशवागुराभिरिव वेष्ट्यमानम्, उपरि कालमहिषालंकार-कालायसकिंकिणीभिरिव कटुक्वणन्तीभिर्दिवसं वायसमण्डलीभिर्भ्रमन्तीभिरावेद्य मानप्रत्यासन्नाशुभम्, क्वचित्प्रतिशायितस्निग्ध बान्धवाराध्यमानाहिर्बुध्नम्, क्वचिद्दीपिकादह्यमानकुलपुत्रकप्रसाद्यमानमातृमण्डलम्, क्वचिन्मुण्डोपहारहरणोद्यतद्रविडप्रार्थ्यमानामर्दकम्, क्वचिदान्ध्रोद्ध्रियमाणबाहुवप्रोपयाक्ष्यमानचण्डिकम्, अन्यत्र शिरोविधृतविलीयमान गलद्गुग्गुलविकलनवसेवकानुनीयमानमहाकालम्, अपरत्र निशित शस्त्रीनिकृत्तात्ममांसहोमप्रसक्ताप्तवर्गम्, अपरत्र प्रकाशनरपतिकुमारक क्रियमाणमहामांस विक्रयप्रक्रमम्, उपहतमिव श्मशानपांशुभिरमङ्गलैरिव परिगृहीतम्, यातुधानैरिव विध्वस्तम्, कलिकालेनेव कवलितम्, पापपटलैरिव संछादितम्, अधर्मविक्षेपैरिव लुण्ठितम्, अनित्यताधिक्कारैरिवाक्रान्तम्, नियतिविलासैरिवात्मीकृतम्, शून्यमिव सुप्तमिव, मुषितमिव विलक्षितमिव छलितमिव मूर्च्छितमिव स्कन्धावारं समाससाद।-

व्याख्या - *अन्यस्मिन्नहनि अपरे अहनि दिवसे, मध्यन्दिने यदा भगवान् सूर्यः मध्यमार्गे आसीत् तदा, दिनस्य मध्यभागे, विगतजयशब्दम्, जयशब्दः राज्ञो जयघोषणा, विगतो जयघोषो यस्मात् तं (सर्वत्र द्वितीयान्तपदस्य स्कन्धावारमाससादेत्यन्वयः) अस्तमिततूर्यनादम् तूर्यस्य एतन्नामधेयवाद्यविशेषस्य नादं स्वरः शब्दः अस्तमितं शान्तिं गतं यस्मात् स्थानात् तं, उपसंहृतगीतम् उपसंहृतानि समापितानि गीतानि यस्मात् स्थानात्, अर्थात् यत्रेदानीं गीतादिकं न भवति तं, उत्सारितोत्सवम् उत्सारितः दूरीकृतः उत्सवः हर्षबोधकाचरणादयः यस्मात् स्थानात् , तं, अप्रगीतचारणम् गीयन्ते गायनं कुर्वन्ति चारणाः यत्र स गीतचारणः न गायन्ति चारणादयो यत्र स अप्रगीतचारणः तं स्थानं, अप्रसारितापणपण्यम् - न प्रसारितानि विस्तारितानि आपणे हट्टे आपणस्तु*

निषद्यायामित्यमरः 'पण्यम् विक्रेयवस्तूनि यत्र, तं, स्थानस्थानेषु विविधस्थानेषु, पवनबल कुटिलाभिः पवनस्य वायोः वेगेन बलेन कुटिलतां वक्रतां गता या धूतरेखा ताभिः, कोटिहोमधूमलेखाभिरुल्लसन्तीभिः –कोटिशः स्थानेषु होमस्य हवनस्य कर्मणः उत्पन्ना या धूमलेखा धूमपंक्तिः ताभिः उल्लसन्तीभिः उपरि गच्छद्भिः, यममहिषविषाणकोटिभिः यमस्य यमजराजस्य शमनस्य 'शमनो यमराड्यमः इत्यमरः' यो वाहनः महिषः तस्य विषाणं (सींग) तस्य कोटिः उपरितनभागः ताभिः कोटिभिः, इव उल्लिख्यमानम् लिख्यमानम्, उपरि गच्छनती या धूमलेख सा प्रतीयते स्म मन्ये यमवाहनभूतमहिषस्य विषाणकोटिभिः आकाशे किमपि लिखयते, धूमस्य महिषविषाणस्य च कृष्णवर्णत्वादुत्प्रेक्षासाम्यम्, उत्प्रेक्षालंकारः, कृतान्तपाशवागुराभिरिव कृतान्तस्य यमराजस्य या पाशनिर्मिता रज्जुनिर्मिता वागुरा हरिणबन्धनाय निर्मितपाशः जालः, ताभिरिव,'वागुरा मृगबन्धिनीत्यमरः' वेष्ट्यमानम् आवेष्ट्यमानम् बध्यमानम्, मन्ये यमराजस्य पाशेन निर्मितो जो जालः तेन तत्स्थानं बध्यते स्म, उत्प्रेक्षालंकारः, उपरि उर्ध्वदेशे आकाशे, कालमहिषालंकारकालायसकिंकिणीभिरिव कालस्य यमराजस्य यो महिषः तस्य अलंकाररूपा आभूषणरूपा या कालयसकिंकिणी – कृष्णवर्णीयलौहनिर्मितकिंकिण्यः क्षुद्रघण्टिकाः ताभिः इव, कटुक्वणन्तीभिः कटु कठोरं क्वणन्तीभिः लपन्तीभिः, दिवसं दिने , वायसमण्डलीभिः वायसस्य काकस्य या मण्डली समूहः ताभिः, भ्रमन्तीभिः इतस्ततः भ्रमणं कुर्वतीभिः आवेद्यमानप्रत्यासन्नाशुभम् – निवेद्यमानम् आसन्नं सः समापतिष्यमानम् अशुभम् प्रभाकरवर्धनस्य मरणरूपवार्ताजनिताशुभसन्देशं, अर्थात् आकाशदेशे काकानां मण्डली तथा कटुरणनं कुर्वन्ती भ्रमति स्म मन्ये यमराजस्य महिषस्य या लौहनिर्मिता किंकिणी लघुघण्टिका सा रणनं करोतीत्युत्प्रेक्षालंकारः, , क्वचित्प्रतिशायितस्निग्धबान्धवाराध्यमानाहिर्बुध्नम् क्वचित् कस्मिंश्चिदपि स्थाने प्रतिशायितैः उपवासेन स्थितैः सिनग्धैः प्रियतरैः बान्धवैः बन्धुभावपरिपूर्णैः आराध्यमानः पूज्यमानः प्रतोष्यमानः अहिर्बुध्नः भगवान् शंकरः 'अहिर्बुध्नोऽष्टमूर्तिश्च गजारिश्च महानटः इत्यमरः' यस्मिन् स्कन्धावारे तं (समाससादेत्यन्वयः) , क्वचिद्दीपिकादह्यमानकुलपुत्रकप्रसाद्यमानमातृमण्डलम् , क्वचित् क्वचिदन्यस्मिन् स्थाने दीपिकाभिः ज्वलन्तीभिर्दीपिकाभिः दह्यमानेन तप्यमानेन कुलपुत्रकेन सत्कुलोत्पन्नेन पुत्रकेन प्रभाकरवर्धनस्य हितकामनया सत्कुलोत्पन्नकुमारकेन, प्रसाद्यमानम् प्रतोष्यमानम् मातृमण्डलम् षोडशमातृकाणां ब्राह्मीगौरीशचीमेधापद्मेत्यादीनां मण्डलम् (ब्राह्मी माहेश्वरी

चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही च तथेन्द्राणि चामुण्डा सप्तमातरः)यस्मिन् स्थाने तं, क्वचिन्मुण्डोपहारहरणोद्यतद्रविडप्रार्थ्यमानामर्दकम्, क्वचित् अन्यस्मिन् स्थाने मुण्डस्य शिरसः यदुपहारः बलिवस्तु तस्य हरणाय ग्रहणाय उद्यतो सज्जो यो द्रविडदेशीयो जनः तेन प्रार्थ्यमानः सम्पूज्यमानः आमर्दकः वेतालविशेषः यत्र तं, अर्थात् क्वचित् द्रविडदेशीयतान्त्रिकः मुण्डोपहारेण प्रेतपूजनायोद्यता आसन्, क्वचिदान्ध्रोद्धि्रय-माणबाहुवप्रोपयाच्यमानचण्डिकम्, क्वचिद् अन्यस्मिन्स्थाने आन्ध्रदेशीयैः उद्ध्रियमानबाहुवप्रैः उत्थाप्यमानबाहूनां विशालभित्तिभिः उपयाच्यमाना प्रभाकरवर्धनस्य जीवनरक्षणाय प्रार्थ्यमाना देवी चण्डिका यस्मिन् स्थाने तं, अन्यत्र क्वचिदन्यस्मिन् भागे, शिरोविधृतविलीयमानगलद्गुग्गुलविकलनवसेवकानुनीयमानमहाकालम्, शिरसा विधृतेन धारितेन उत्थापितेन अग्न्युत्तापेन विलीयमानेन गलता, क्षरता, गुग्गुलेन धूपविशेषेण विकलो यो नवीनः सेवकः दासः तेन अनुनीयमनः प्रार्थ्यमानः महाकालः भगवान् शिवः ज्योतिर्लिंगविशेषः यत्र तं स्कन्धावारं, 'गुग्गुलं घृतसंयुक्तं साक्षात् गृह्णाति शंकर इति। अपरत्र अन्यस्मिन् स्थाने, निशितशस्त्रीनिकृत्तात्ममांसहोमप्रसक्ताप्तवर्गम्, निशिता तीक्ष्णा या शस्त्री लघुक्षुरिका तया निकृत्तं छिन्नं यदात्ममांसः स्वशरीरस्य मांसं तेनैव होमे हवनकर्मणि प्रसक्तः लग्नः आप्तवर्गः आत्मीयो जनसमूहः यस्मिन् स्कन्धावारे तं, तन्त्रसारे विधेरस्य विषये लिखितं यत् -

यः स्वहृदयसंजातं मांसं माषप्रमाणतः।
तिलमुद्गप्रमाणं वा दद्यात् भक्तियुतो नरः।
स एव मासाभ्यन्तरे काममिष्टमवाप्नुयात्।।

अपरत्र अन्यत्र, प्रकाशनरपतिकुमारकक्रियमाणमहामांस विक्रयप्रक्रमम्, प्रकाशं सर्वसमक्षं स्पष्टरूपेण नरपतीनां सामन्तानां कुमारकैः पुत्रैः सामन्तपुत्रैरिति भावः, क्रियमाणं सम्पाद्यमानं महामांसस्य मानवमांसस्य विक्रयणं प्रेतादीनां कृते वितरणं तस्य कार्यस्य प्रक्रमम् यस्मिन् स्कन्धावारे तं, उपहतमिव श्मशानपांशुभिः श्मशानस्य चिताभूमेः पांशुः धूलिः ताभिः धूलिभिः शवभस्मना उपहतं परिपूर्ण सर्वत्रव्याप्तभस्ममिव, अमङ्गलैरिव अपशकुनैः इव परिगृहीतम् पूर्णतया गृहीतं स्थानम्, यातुधानैरिव यातुधानो राक्षसः 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुराक्षसःडत्यमरः' तैः, विध्वस्तम् विनाशितं स्थानं तत्, मन्ये राक्षसेन स्वजघन्यव्यापारेण स्कन्धावारमिदं विनाशितमस्ति, कलिकालेनेव कलियुगो नाम कालः समयः तेन कवलितम् भक्षितमिव, पापपटलैरिव पापस्य पुण्येतरस्य

अमंगलस्य यः पटलः समूहः तेन संछादितम् आच्छादितं आवरणीकृतम्, अधर्मविक्षेपैरिव अधर्मस्य धर्मेतरस्य यो विक्षेपः तैः लुण्ठितम् मथितं (लूट लिया गया इति हिन्दीभाषायाम्) अनित्यताधिकारैरिवाक्रान्तम् न नित्यः अनित्यः तस्य भावः अनित्यता तां अनित्यतां धिक् तादृशैः धिक्कारैः इव आक्रान्तम् त्रस्तम् आच्छादितम्, नियतिविलासैरिवात्मीकृतम्, नियतिः भाग्यं 'भाग्यं तु नियतिर्विधिरित्यमरः' तस्याः यो विलासः तैः आत्मीकृतमिति मन्ये, मन्ये एतदेव विलास आसीत् नियतेः, शून्यमिव विकाररहितमिव शून्यचेतनमिव, सुप्तमिव निद्रां गतमिव, मुषितमिव चौरितमिव, विलक्षितमिव लज्जितमिव, छलितमिव प्रताडितमिव मूर्च्छितमिव मुर्च्छां गतमिव स्कन्धावारं निवासस्थानं समाससाद प्राप्तवान्। इव पदप्रयोगात् सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः।

हिन्दी--दूसरे दिन हर्ष स्कन्धावार में पहुँचे, जहाँ जयकार का शब्द समाप्त हो चुका था, तुरही की आवाज बन्द हो चुकी थी, गीत समाप्त कर दिया गया था, सभी उत्सवों को बन्द कर दिया गया था, चारणों के गान भी बन्द हो गये थे, कहीं भी दुकानों में विकने योग्य वस्तुओं को फैलाया नहीं गया था(अर्थात् बाजार बन्द थे) जगह जगह पर राजा के कल्याण के लिये आरब्ध हवन की उपर उठती हुई धूमलेखा से मानो यमराज के वाहन भैंस के सींग की कोटि से आकाश में अशुभ लेख लिखा जा रहा हो, मानो यमराज के पाश से बने जाल से उस स्थान को फांस दिया गया हो, आकाश में दिन में काले कौवे की मण्डली ऐसे कटु रणन कर रही थी मानो अशुभ का सन्देश दे रही हो, यह ऐसा लग रहा था मानो यमराज के वाहन भैंस के गले में बन्धी लोहे से निर्मित छोटी छोटी घंटियाँ आवाज कर रही हो, कहीं उपवास किये हुए बान्धवों के द्वारा भगवान शंकर की अर्चना की जा रही थी, कहीं चारों ओर दीपक जलाकर उसके ताप में बैठे सामन्तपुत्रों के द्वारा षोडशमातृकामण्डल की पूजा हो रही थी, कहीं मुण्डमाल की बलि देने के लिये उद्यत द्रविडदेशीयों के द्वारा वेतालविशेष की अर्चना हो रही थी, कहीं आन्ध्रदेशीयलोगों के द्वारा हाथों की दीवार उठाकर चण्डिका की पूजा हो रही थी, कहीं दूसरी ओर अपने शिर पर पिघलते हुए गुग्गुल को रखकर विकल नये सेवकों के द्वारा महाकाल की प्रार्थना की जा रही थी, कहीं दूसरी ओर आप्तलोग तेज छूरी से अपने शरीर का मांस काटकर हवन करने में लीन थे, कहीं दूसरी ओर सामन्तकुमारों के द्वारा महामांस(मानवमांस) के विक्रय की प्रक्रिया का आरम्भ हो रहा था (अर्थात् प्रेतों को प्रसन्न करने का कार्य हो रहा था।) श्मशान की धूलि से वह स्थान भरा हुआ था मानो इस स्थान

को अमङ्गलों ने घेर लिया हो, मानो राक्षसों ने विध्वंस कर दिया हो, मानो कलिकाल ने उसका भक्षण कर लिया हो, मानो पापपटल से आच्छादित हो गया हो, अधर्म के विक्षेप से मानो लूट लिया गया हो, अनित्यता के धिक्कार से मानो आक्रान्त हो गया हो, नियति के विलास ने मानो आत्मसात् कर लिया हो, मानो वह स्थान शून्य हो गया था, मानो सो गया था, मानो मूर्च्छित हो गया था,किसी के द्वारा ठगा गया था, मानो लज्जित हो गया था। (ऐसे स्कन्धावार में हर्ष पहुँचे।)

प्रविशन्नेव च विपणिवर्त्मनिकुतूहलाकुलबहलबालक परिवृतमूर्ध्व-यष्टिविष्कम्भवितते वामहस्तवर्तिनि भीषणमहिषाधिरूढप्रेतनाथसनाथे चित्रवति पटे परलोकव्यतिकरमितरकरकलितेन शरकाण्डेन कथयन्तं यमपट्टिकं ददर्श। तेनैव च गीयमानं श्लोकम श्रृणोत्-

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
युगे युगे व्यतीतानि कस्य ते कस्य वा भवान्।।3।। इति

व्याख्या - *प्रविशन्नेव राजधान्यां प्रवेशं कुर्वन् एव च विपणिवर्त्मनि विपणेः हट्टस्य 'विपणिः पण्यवीथिकेत्यमरः' वर्त्मणि मार्गे, कुतूहलाकुलबहल बालकपरिवृतमूर्ध्वयष्टिविष्कम्भवितते-कौतूहलेन किमिदमिति ज्ञातुमुत्सुकैः आकुलतां व्याकुलतां गतैः बहलबालकैः बहुभिः बालकैः शिशुभिः परिवृतः आवेष्टितः यो जनस्तं, उर्ध्व्वयष्टौ उत्तानिता या यष्टिः तस्यां तत्र स्थितविष्कम्भेन आलम्बनेन स्खलनावरोधेन 'विष्कम्भो योगभेदे स्यात् विस्तारः प्रतिबन्धयोः इति मेदिनी', वितते विस्तारिते, वामहस्तवर्तिनि वामे हस्ते वर्तते या यष्टिः स वामहस्तवर्तिन् तस्मिन्, भीषणमहिषाधिरूढप्रेतनाथसनाथे भीषणो भयानकः 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकमित्यमरः' यो महिषः सैरिभः 'लुलायो महिषो वाद्दिषत्कासरसैरिभा इत्यमरः' तस्मिन् अधिरूढो स्थितो यः प्रेतनाथः यमराजः तस्य चित्रेण सनाथिते दण्डे, चित्रवति पटे चित्रमये वस्त्रे, अर्थात् दण्डे चित्रमयवस्त्रे यमराजस्य चित्रणमासीदिति भावः, परलोकव्यतिकरमितरकरकलितेन अथ च परलोकः इहलाकादपरो लोकः यमलोकः तत्र सम्बद्धं प्रदीयमानं दण्डं, इतरकरेण अपरहस्तेन दक्षिणहस्तेनेति भावः, कलितेन उत्थापितेन वा गृहीतेन शरकाण्डेन शराभिधकवन्यकाण्डेन (शरकण्डा इति हिन्द्यां) दण्डेनेति भावः, कथयन्तं प्रदर्शयन्तं वाचा निवेदयन्तं, यमपट्टिकं यमसम्बन्धिपट्टिकधारयन्तं कमपि ददर्श अवलोकितवान्। तेनैव यमपटधारिणा तेन जनेन, च गीयमानं श्लोकमश्रृणोत्- श्लोकममुं श्रुतवान्।*

मातापितृसहस्राणि मातृणां पितृणां च सहस्राणि सहस्रसंख्याकानि, पुत्रदारशतानि च पुत्राः दाराः पत्न्यः शतानि शताधिकसंख्याकानि युगे युगे प्रत्येकस्मिन् युगे, व्यतीतानि गतानि लोकममुं परित्यज्य गतानि, तानि सर्वाणि, कस्य कस्य जनस्य कृते अभवन्? अर्थात् कस्यापि न, ते, कस्य वा भवान् भवानपि कस्य कृते (किं करिष्यसीति भावः?) अर्थात् युगे युगे अनेकशः मातरः पितरः पुत्राः पत्न्यः कालवशात् धरामिमां परित्यज्य परलोकं यान्ति। ते कस्य कृते किं कुर्वन्ति ? त्वमपि कस्य किं करिष्यसि? किमपि नैवेति भावः। संसारस्य सिद्धान्तोऽयं वर्तते यत् जना आयान्ति यान्ति चास्माल्लोकात्। यावज्जीवनं तावदेव हि सम्बन्धः। कालवशात् गते परलोके कस्यापि कश्चिदपि सम्बन्धी न भवति न वा कस्यचिदपि कश्चिदपि उपकारी भवतीति।

हिन्दी - राजधानी में प्रवेश करते ही बाजार में कौतूहल से भरे हुए बच्चों से घिरे एक यमपट धारी को देखा जिसने अपने वायें हाथ से एक दण्ड को उठा रखा था जिस पर भैंसे पर स्थित भीषण प्रेताधिनाथ(यमराज) के चित्र से युक्त एक कपड़े की पट्टी थी। और जो दूसरे हाथ में रखे शरकण्डे की छड़ी से (चित्र को दिखाते हुए) यमलोक से सम्बन्धित दण्ड को बता रहा था। उसी के द्वारा गाये जाने वाले इस श्लोक को भी सुना -

हरेक युग में हजारों माता,पिता, पुत्र, पत्नियाँ इस संसार को छोड़कर चले जाते हैं। वे किसके होते हैं? अर्थात् किसी के नहीं। तुम भी किसके होगे? अर्थात् किसी के नहीं। एक दिन तुम्हें भी इस संसार को छोड़कर जाना होगा।

तेन चाधिकतरमवदीर्यमाणहृदयः क्रमेण राजद्वारं प्रतिषिद्ध -सकललोकप्रवेशं ययौ। तुरगादवतीर्णश्चाभ्यन्तरान्निष्क्रामन्त -मप्रसन्नमुखरागमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः सुषेणनामानं वैद्यकुमारकम-द्राक्षीत्। कृतनमस्कारं च तमप्राक्षीत्- सुषेण! अस्ति तातस्य विशेषो न वा? इति। सोऽब्रबीत्- नास्तीदानीं यदि भवेत्कुमारं दृष्ट्वा' इति।

व्याख्या - तेन पूर्ववर्णितयमपट्टिकदर्शनेन तदुक्तश्लोश्रवणेन, चाधि-कतरमवदीर्यमाणहृदयः च अधिकतरम् पूर्वादप्याधिक्येन अवदीर्यमानं स्फुट्यमानं विकलतां गम्यमानं हृदयं यस्य तादृशो हर्षः, क्रमेण क्रमशः द्वारमुल्लंघयन्, राजद्वारं राजभवनस्य मुख्यद्वारं प्रवेशद्वारमिति, प्रतिषिद्धसकललोकप्रवेशं प्रषिद्धः अवरुद्धः सकलानां समेषां

लोकानां राजपुरुषानपहायान्येषां कृते प्रवेशो यस्मिन् तं राजद्वारं, ययौ गतवान्, तुरगादवतीर्णश्चाभ्यन्तरान्निष्क्रामन्तमप्रसन्नमुखरागमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः तुरगात् अश्वात् घोटकात् 'घोटके वीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमा इत्यमरः' अवतीर्य अश्वपृष्ठदेशात् भूमावागत्य, अभ्यन्तरात् राजभवनस्यान्तर्भागात् निष्क्रामन्तं बहिरागच्छन्तं अप्रसन्नं प्रसन्नतारहितं राज्ञः विकटदशामवलोक्येति भावः, मुखरागम् अप्रसन्नतया मुखस्य कान्तिर्भिन्नतां गतासीत् वा मुखकान्त्यैव यस्याप्रसन्नता प्रकटिता आसीत् तादृशं तं वा इन्द्रियैः हस्तपादादिभिः इन्द्रियैः कर्मेन्द्रियैः ज्ञानेन्द्रियैश्चापि, मुक्तम् त्यक्तम्, मन्ये इन्द्रियैः परित्यक्तोऽयं जन इति तथैव, सुषेणनामानं, सुषेण इति नामासीत् यस्य तं, वैद्यकुमारकमद्राक्षीत् वैद्यस्य उपचारकर्मणिरतस्य वैद्यस्य भिषजः'भिषग्वैद्यौ चिकित्सके इत्यमरः' कुमारकं कुमार एव कुमारकः तं, कुमारो भर्तृदारकः इत्यमरः' राज्ञः पुत्रो भवति कुमारः, राजवैद्यत्वात् वैद्यस्यापि पुत्र कुमारक एव, पुत्रं सुतं अपश्यत्। कृतनमस्कारं कृतो नमस्कारः प्रणामस्य परिक्रिया येन तं वैद्यकुमारकं, च तमप्राक्षीत् अपृच्छत्, - सुषेण! अस्ति तातस्य मम पितुः, 'तातस्तु जनकः पितेत्यमरः' विशेषो विशेषरूपेण रोगशमने कश्चिल्लाभो न वा? इति। सोऽब्रबीत्- स वैद्यकुमारकः अवदत्, नास्तीदानीं इदानीं अस्मिन्समये विशेषलाभो नास्ति, यदि भवेत्कुमारं दृष्ट्वा' कुमारं भवन्तं वीक्ष्य यदि भेवत् रोगशमने लाभो भवेत् (तर्हि न जाने) इति।

हिन्दी - उस यमपट्टिक को देखकर और उसके श्लोक को सुनकर और अधिक विदीर्यमान हृदयवाले हर्ष उस राजद्वार पर पहुँचे जहाँ सामान्य लोगों के लिये प्रवेशनिषेध था। और घोड़े से उतरकर उसने राज भवन के अन्तःभाग से बाहर आते हुए मुख की कान्ति से ही अप्रसन्न से दीखते हुए वैद्यकुमार को पूछा, जो वैद्यकुमार मानो अपनी सभी इन्द्रियों से मुक्त हो चुका था। अर्थात् राजा की स्थिति को देखकर वह अन्यमनस्क सा हो रहा था। अयि सुषेण! मेरे पिता के रोग के शमन में कोई विशेष लाभ है या नहीं? वह (वैद्यपुत्र) बोला - अभी तो कोई लाभ नहीं है, कुमार(आपको) देखकर यदि हो जाय तो....(पता नहीं)।

मन्दं मन्दं द्वारपालैः प्रणम्यमानश्च दीयमानसर्वस्वम्, पूज्यमानकुलदेवतम्, प्रारब्धामृतचरुपचनक्रियम्, क्रियमाणषडाहुतिहोमम्, हूयमानपृषदाज्यलवलिप्तप्रचलदूर्वापल्लवम्, पठ्यमानमहामायूरी-प्रवर्त्यमानगृहशान्तिनिर्वर्त्यमानभूतरक्षाबलिविधानम्, प्रयतविप्रप्रस्तुत-संहिताजपं, जप्यमानरुद्रैकादशीशब्दायमानशिवगृहम्, अतिशुचिशैव-

सम्पाद्यमानविरूपाक्षक्षीरकलशसहस्रस्नपनम्, अजिरोपविष्टैश्चाना-स्वादित स्वामिदर्शनदूयमान सैरभ्यन्तर निष्पतितनिकटवर्तिपरिजन-निवेद्यमान वार्तैवार्तीभूतस्नानभोजनशयनैरुज्झितात्मसंस्कार मलिनवेशैर्लिखितैरिव निश्चलैर्नरपतिभिर्निपीयमान नक्तंदिवं दःखदीनवदनेन च प्रघणेषु बद्धमण्डलेनोपांशुव्याहृतैः केनचिच्चिकित्सकदोषानुद्भावयता, केनचिदसाध्यव्याधिलक्षणपदानि पठता, केनचिद् दुःस्वप्नानावेदयता, केनचित्पिशाचवार्तां विवृण्वता, केचित्कार्तान्तिकादेशान् प्रकाशयता, केनचिदुपलिङ्गानि गायता, अन्येनानित्यतां भावयता, संसारं चापवदता, कलिकालविलसितानि च निन्दता, दैवं चोपालभमानेनापरेण धर्माय कुप्यता, राजकुलदेवताश्चाधिक्षिपता, अपेरण क्लिष्टकुलपुत्रक भाग्यानि गर्हयता, बाह्यपरिजनेन कथ्यमानकष्टपार्थिवावस्थं राजकुलं विवेश।।

व्याख्या – *मन्दं मन्दं शनैः शनैः, द्वारपालैः द्वारे स्थितो यो सेवकः स द्वारपालः तैः, प्रणम्यमानः प्रणामं क्रियमाणः अर्थात् द्वारपालाः हर्ष प्रणामं कृतवन्त इति, च दीयमानसर्वस्वम् राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य स्वास्थ्यकामनया यत्र विप्रेभ्यः वस्तूनि दीयन्ते स्म तस्मिन् राजभवने विवेशेत्यन्वयः, पूज्यमानकुलदेवतम् यत्र कुलदेवतायाः कुलक्रमानुसारं पूज्यमाना देवता वर्तते यत्र तस्मिन् राजभवने इति, प्रारब्धामृतचरुपचनक्रियम्, यत्र अमृतमयं यच्चरु तण्डुलदुग्धनिर्मितहविषः क्षीरपक्वान्नविशेषस्य यत्र पाकं विध ीयते स्म, क्रियमाणषडाहुतिहोमम् यत्र षडाहुतिपूर्वकं हवनक्रियाया आरम्भ आसीत् अर्थात् यत्र स्वास्थ्यकामनया राज्ञः षडाहुतिनामकहवनक्रिया प्रवर्तिता आसीत, हूयमानपृषदाज्यलवलिप्तप्रचलदूर्वापल्लवम्, हूयमानस्य अग्नौ प्रक्षिप्यमानस्य पृषदाज्यस्य दधियुक्तघृतान्नस्य 'पृषदाज्यं सदध्याज्ये इत्यमरः' लवेन विन्दुना लिप्तं सिक्तं प्रचलत् चञ्चलम् दूर्वायाः एतन्नामकग्रासविशेशस्य पल्लवम् किसलयम्, 'आयुष्कामो घृततिलैः दूर्वाभिः आसर्पणकैः ज्वरं सद्यो शमयेदिति नियमात्' पठ्यमानमहामायूरीप्रवर्त्यमान-गृहशान्तिनिर्वर्त्यमानभूतरक्षाबलिविधानम्, पठ्यमाना उच्चार्यमाना या महामायूरी बौद्ध ानां विशेषविद्या तया प्रवर्त्यमाना आरम्भमाना या गृहशान्तिविधिः अर्थात् मायूरीविद्यायाः प्रयोगेन यत्र गृहदोषपरिशमनविधानमारब्धमस्तीति, अथ च निर्वर्त्यमानं सम्पाद्यमानं*

भूतानां जीवानां देवविशेषानां रक्षार्थ बलिविधानं पूजनविधानं माषभक्ताद्युपहारप्रदानं, यस्मिन् भवने तं, भूतानां बलिविधानप्रयोगे मन्त्रप्रयोगो भवति यथा -

ॐ भूताः प्रेताः पिशाश्च ये वसन्त्यत्र भूतले।
ते गृहणन्तु मया दत्तं बलिमेतं प्रसाधितम्।।
अपसर्पन्तु ते भूताः ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारः ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

एतेन गृहदोषशान्तिर्विधीयते।

प्रयतविप्रप्रस्तुतसंहिताजपं - प्रयतैः संयमशालिभिः विप्रैः ब्राह्मणैः प्रस्तुतः आरब्धः संहितायाः वेदमन्त्राणां जपः पाठः यस्मिन् भवनं तं, जप्यमानरुद्रैकादशीशब्दायमानशिवगृहम् - जप्यमाना पठ्यमाना या रुद्रैकादशी रुद्रसम्बन्धिनी शंकरसम्बन्धिनी रुद्रः शंकरः 'स्थाणू रुद्र उमापतिरित्यमरः' एकादशमन्त्रसमूहः 'नमस्ते रुद्रमन्यव इत्यादयः' तयैकादश्या शब्दायमानं विगुञ्जितं निनादितं शिवगृहम् शिवस्य भगवतः शंकरस्य गृहम् मन्दिरम्, अतिशुचिशैवसम्पाद्यमानविरूपाक्ष क्षीरकलशसहस्रस्नपनम् - अतिशुचिः अतिपवित्रैः शारीरिकमानसिकवाचिकरूपेण पवित्रतमैः शैवः शिवसम्बन्धिनः शैवाः शिवभक्ताः इति तैः सम्पाद्यमानम् अनुष्ठीयमानं विरूपाक्षस्य भगवतः शंकरस्य 'विरूपाक्षस्त्रिलोचन इत्यमरः' क्षीरकलशसहस्रैः सहस्रसंख्याकैः क्षीरं दुग्धं तस्य दुग्धस्य कलशैः दुग्धकलशैः स्नपनम् अभिषेककर्म यस्मिन्भवने, तं, अजिरोपविष्टैश्चानास्वादित-स्वामिदर्शनदूयमानसैरभ्यन्तर निष्पतितनिकटवर्तिपरिजननिवेद्यमानवार्तैर्वार्तीभूतस्नानभोजन शयनैरुज्झितात्मसंस्कारमलिनवेशैर्लिखितैरिव निश्चलैर्नरपतिभिर्नीयमानं, अजिरे प्राङ्गणे 'अङ्गनं चत्वाराजिरे इत्यमरः' उपविष्टैः मूकतया स्वासनस्थैः, न आस्वादितं नयनाभ्यां कृतं स्वामिनः राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य दर्शनं , तददर्शनेनैव दूयमानः कष्टं प्राप्यमानो मानसो येषां तादृशैः, अभ्यन्तरात् राजभवनस्यान्तःपुरात् निष्पतितैः निर्गच्छद्भिः निकटवर्तिपरिजनैः पूर्वपरिचितलोकैः निवेद्यमाना कथ्यमाना या वार्ता तां वार्ता श्रुत्वैव आर्तीभूतानि परमविकलतां गतानि स्नानभोजनशयनादीनि येषां तैः, उज्झितः त्यक्तः आत्मसंस्कारः स्वशरीरप्रसाधनादि यैः तद्वशात् मलिनतां गतो वेशो वस्त्रादीनि येषां तैः, लिखितैः चित्ररूपेण स्थिरैः निश्चलैरिति भावः, इव, निश्चलैः नरपतिभिः नराणां पतिः नरपतिः राजानः तैः सामन्तैरिति भावः,नीयमानं अतिक्रम्यमानम् भवनाङ्गनमिति,

नक्तंदिवं रात्रिन्दिवं, दु:खदीनवदनेन दु:खात् राज्ञ: स्वास्थ्याभावरूपदु:खवशात् दीनतां गतं वदनं शरीरं मुखं वा येषां तै:, अथ च प्रघणेषु बाह्यप्रकोष्ठेषु कक्ष्यासु 'प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके इत्यमर:' बद्धमण्डलेनोपांशुव्याहृतै: मण्डालाकाररूपेणोविष्टै: उपांशुव्याहृतै: अतिलघुतया भाषितै: अर्थात् ये तत्र मन्दं मन्दं वार्ता कुर्वन्ति स्म तै:, विशेषध्वनिना राज्ञोऽवरोधो मा भवेदिति विचिन्त्य मन्दं वदन्ति स्म ते इति भाव:, केनचिच्चि कित्सकदोषानुद्भावयता – चिकित्सकस्य वैद्यस्य दोषान् अक्षमतां दोषतां उद्भावयता केनचित् अर्थात् कश्चित् तत्र वैद्यानां दोषं व्याकरोति स्म, केनचिदसाध्यव्याधिलक्षणपदानि पठता केनचित् तत्रत्येन जनेन असाध्यं न साधनीय: शमनीयो यो रोग: व्याधि: 'रोगो व्याधिगदामया इत्यमर:' तस्य लक्षणं गुणं पठता निरूपयता, अर्थात् कश्चित् वदति स्म यत् राज्ञ: रोग एव असाध्यो वर्तते यस्योपाचार: सामान्येन न भवितुमर्हतीति, केनचिद् दु:स्वप्नानावेदयता, दु:स्वप्नं कुत्सितस्वप्नं आवेदयता निवेदयता विवेचयता वा केनचित् जनेन,अर्थात् कश्चित् वदति स्म यत् दुस्वप्नदोषबलादेवाधुना सर्वं भवतीति, केनचित्पिशाचवार्ता विवृण्वता पिशाचस्य भूतविशेषस्य वार्ता सन्देशं विषयं विवृण्वता विवेचयता केनचित् जनेन, अर्थात् कचित् वदति यत् पिशाचस्याक्रमणबलादधुना सर्व भवतीति, केनचित्कार्तान्तिकादेशान् प्रकाशयता, कार्तान्तिको दैवज्ञ: ज्योतिषी 'सांवत्सरो ज्यौतिषिको दैवज्ञगणकावपि, स्युर्मौहूर्तिकमौहूर्तज्ञानि कार्तान्तिका अपीत्यमर:' तस्य आदेशान् कथितसन्देशान् प्रकाशयता लोकसम्मुखं प्रकटीकुर्वता केनचित्, अर्थात् कश्चित् वदति स्म यत् ज्योतिषीभि: पूर्वमेव सर्वमावेदितमासीत् तत्फलमेवेदानी नयनगोचरी भवतीति, केनचिदुपलिङ्गानि गायता केनचित् जनेन उपलिंगं उत्पातविशेषं तदेव गायता व्याकुर्वता, अर्थात् कश्चित् वदति स्म यदुत्पातविशेषप्रकोपादेव सर्वं भवतीति, अन्येनानित्यतां भावयता, अन्येन अपरेण जनेन अनित्यतां संसारस्यानित्यतां क्षणभंगुरतां भावयता प्रकाशयता, अर्थात् संसारस्यास्य क्षणभंगुरत्वं वर्तते, सर्वेषां कृते मरणं आवश्यकमेवास्तीति निरूपयति स्म कश्चिदिति, संसारं चापवदता –संसारं जीवलोकं अपवदता निन्दता अर्थात् कश्चित् संसारस्यास्य निन्दनं करोति स्म, कलिकालविलसितानि च निन्दता, केनचित् कलिकालस्य कलियुगस्य य: काल: समय: तस्य विलसितानि विलासं कार्याणि वा तं निन्दता तस्य विलासस्य निन्दनं कुर्वता , अर्थात् कश्चित् कलियुगस्य प्रभावममेव निन्दति स्म। तदेव दु:खस्यास्य कारणं जानाति स्म, दैवं भाग्यं 'दैवं दिष्टं भागधेयमित्यमर:' चोपालभमानेनापरेण उपलाम्भणेन युक्तं करोति स्म कश्चित् अर्थात् दैवस्य निन्दनं करोति स्त कश्चित्

दुःखस्यास्य हेतुत्वात्, कश्चित् च धर्माय कुप्यता धर्मस्य कृते कोपं क्रोधं प्रदर्शयता, राजकुलदेवताश्चाधिक्षिपता, राज्ञां कुलं राजकुलं तस्य या देवता तां अधिक्षिपता तस्या देवतायाः निन्दनं कुर्वता, अपरेण क्लिष्टकुलपुत्रकभाग्यानि गर्हयता, क्लिष्टानां क्लेशयुक्तानां दुःखगर्तेपतितानां कुलपुत्रकानां राजकुले उत्पन्नाः ये पुत्राः तेषां भाग्यं दैवं, तं निन्दता, अर्थात् कश्चित् राजकुलस्य पुत्राणां दुर्भाग्यमेव निन्दति स्म यतोहि प्रभाकरवर्धनस्य दुःखं राजपुत्राणामेव दौर्भाग्यमस्तीति, बाह्यपरिजनेन कथ्यमानकष्टपार्थिवावस्थं राजकुलादतिरिक्तजनैः येषां सम्बन्धः राजकुलेन नासीत् परन्तु राज्ञः स्थितिं ज्ञात्वा शोकाविष्टाः समायाताः आसन् तादृशैः जनैः पार्थिवस्य राज्ञः कष्टपूर्णा या अवस्था आसीत् तस्या अवस्थायाः विवेचनं करेति स्म, यस्मिन् राजभवने ,तं राजकुलं राज्ञां कुलं राजभवनमिति विवेश प्रविष्टवान् हर्षः इति।

हिन्दी - धीरे धीरे द्वारपालों द्वारा प्रणमित होते हुए हर्ष ने राजभवन में प्रवेश किया जहाँ राजा प्रभाकर वर्धन की स्वास्थ्यलाभ कामना से सर्वस्व दान किया जा रहा था, कुलदेवताओं की पूजा की जा रही थी, अमृतमय चरुपाक पकाया जा रहा था, षडाहुति हवन किया जा रहा था, दधियुक्त घृत से सिक्त दूर्वाकिसलयों द्वारा हवन किया जा रहा था, बौद्धधर्मानुसार मायूरी मन्त्र का पाठ करते हुए गृहदोष की शान्ति की कामना से भूतबलि का विधान सम्पादित किया जा रहा था, संयमित ब्राह्मण लोग वेदमन्त्रों का पाठ कर रहे थे, रुद्र एकादशमन्त्र के जप से शिवमन्दिर गुञ्जायमान हो रहा था, अति पवित्र शैवों द्वारा भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिये दूध से भरे हजारों कलशों से भगवान शिव का स्नपन किया जा रहा था, प्राङ्गन का भाग उन लोगों द्वारा आक्रान्त हो रहा था जो राजा लोग रात दिन महाराजप्रभाकर वर्धन का दर्शन नहीं कर पाने के कारण अन्तःपुर से निकलते लोगों द्वारा अपने अपने परिचितों के मुख से ही राजा का समाचार सुनकर दुःखी होते हुए स्नान भोजन शयन आदि छोड़कर, अपने शरीर के संस्कार से भी रहित होते हुए मलिन वेश में स्थित मानो चित्रलिखित हो गये हों। बाहर वाले प्रकोष्ठ में राजभवन के अतिरिक्त आये हुए लोग मण्डलाकार होकर बैठकर धीरे धीरे बातचीत कर रहे थे, कोई वैद्य की अक्षमता को बता रहा था, कोई असाध्यरोग के लक्षणों को प्रकाशित कर रहा था, कोई दुःस्वप्न के दोषों की व्याख्या कर रहा था, कोई पिशाच की वार्ता कर रहा था(इनका कहना था कि राजा को पिशाच ने पकड़ लिया है) कोई ज्योतिषियों द्वारा कहे गये वचनों का आख्यान कर रहा था, कोई विविध उत्पातों की चर्चा कर रहा था, कोई संसार

की अनित्यता को बताते हुए संसार की निन्दा कर रहा था, कोई कलिकाल के विलास की निन्दा कर रहा था, भाग्य को उलाहना देते हुए कोई धर्म के लिये कोप कर रहा था, कोई राजकुल के देवता को उलाहना दे रहा था, कोई दूसरा राजकुल के पुत्रों के दुर्भाग्य की निन्दा कर रहा था, कोई बाहर से आये लोगों को राजा प्रभाकरवर्धन की दुरवस्था बता रहा था।(ऐसे राजभवन में हर्ष ने प्रवेश किया।)

अविरलवाष्पपय:परिप्लुतलोचनेन पितृपरिजनेन वीक्ष्यमाणो विविधौषधिद्रव्यद्रवगन्धगर्भभृत्क्वथतां क्वाथानां सर्पिषां तैलानां च प्रपच्यमानानां गन्धमाजिघ्रन्नवाप तृतीयं कक्ष्यान्तरम्।।

व्याख्या – *अविरलवाष्पपय:परिप्लुतलोचनेन अविरलं निरन्तरं निस्सरता वाष्पस्य अश्रुण: पयसा जलेन परिप्लुतं परिपूर्ण यल्लोचनं नेत्रं 'लोचनं नयनं नेत्रमित्यमर:' तेन युक्तो हर्ष:, पितृपरिजनेन पितु: तातस्य प्रभाकरवर्धनस्य ये परिजना: आत्मीया जना: सम्बन्धिन इति, तै: वीक्ष्यमाणो अपलकनेत्राभ्यां दृष्ट: सन्, विविधौषधिद्रव्यद्रवगन्धगर्भभृत्क्वथतां विविधप्रकारकं यदौषधं यौषधिर्वा 'ओषध्यो जातिमात्रे स्युरजातौ सर्वमौषधमित्यमर:' तदेव द्रव्यं द्रवस्य रसस्य च गन्ध: अस्ति गर्भे अन्तरे मध्ये यस्य तत् क्वथतां पच्यमानानां 'पिष्पक्वे क्वथितं पाके इत्यमर:' क्वाथानां कषायपेयविशेषाणां सर्पिषां घृतानां तैलानां च प्रपच्यमानानां पक्वायमानानां; गन्धमाजिघ्रन्नवाप गन्धं आजिघ्रन् नासिकया गृह्णन् तृतीयं कक्ष्यान्तरम् तृतीयप्रकोष्ठं विवेशेत्यन्वय:। राजभवने कक्ष्यात्रयं भवति यत्र तृतीये भवति राज्ञो रनिवास:। श्रूयते यत् प्रभाकरवर्धनस्य भवने चतस्र: कक्ष्या: आसन्। चतुर्थे आसीत् राज्ञो निवास:। इदानीं रुग्णावस्थायां तृतीयकक्ष्यायां नीत आसीत् यत्र देव्या: यशोवत्या: निवास आसीत्।*

हिन्दी – *लगातार बहते हुए अश्रुजल से परिपूर्ण नेत्रों वाले, पिता के परिजनों द्वारा देखे जाते हुए, विविध औषधि औषधद्रव्य का गन्ध जिससे निकल रहा था ऐसे अर्धपक्व कषायपेय (काढा) एवं पकाये जाते हुए घृत ,तेल के गन्ध को सूँघते हुए हर्ष ने भवन की तृतीय कक्ष्या (चत्वर, आँगन) में प्रवेश किया।*

तत्र चातिनि:शब्दे गृहावग्रहणीग्राहिबहुवेत्रिणि त्रिगुण-तिरस्करिणीतिरोहितसुवीथिपथे, पिहितपक्षद्वारके, परिहृतकवाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति, दूयमानपरिचारके, चरणताडनस्वनत्सो-पानप्रकुपितप्रतिहारे, निभृतसंज्ञानिर्दिश्यमान सकलकर्मणि, नाति-

निकटोपविष्टकङ्कटिनि, कोणस्थिताह्वानचकिताचमनकवाहिनि, चन्द्रशालिकालीनमूकमौललोके, महाधिविधुरबान्धवाङ्गनावर्गगृहीत-प्रच्छन्नप्रग्रीवके, संजवनपुञ्जितोद्विग्नपरिजने, प्रविष्टकतिपयप्रणयिनि, गम्भीरज्वरारम्भभीतभिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, मन्दायमानपुरोधसि, सीदत्सुहृदि, विद्राणविपश्चिति, सन्तप्तापतसामन्ते, विचितचामरग्राहिणि, दुःखक्षामशिरोरक्षिणि, क्षीयमानप्रसादवित्तकमनोरथसंपदि, स्वामिभक्ति-परित्यक्ताहारहीयमानबलविकलवल्लभभूभृति, क्षितितलपतित-सकलरजनी जागरूकराजपुत्र कुमारके, कुलक्रमागतकुलपुत्रनिवहोह्य-मानशुचि, शोकसंकुचितकञ्चुकिनि, निरानन्दवन्दिनि, निःश्वसन्निराशासन्न-सेवके, निःसृतताम्बूलधूसराधरवारयोषिति, विलक्षवैद्योपदिश्यमा-नपथ्याहरणावहितपौरोगवे, अनुजीविपीयमानोच्चचषकाधारावारि विनोद्यमानास्यशोषरुजि, राजाभिलाषभोज्यमान बहुभुजि, भेषजसामग्री सम्पादनव्यग्रसमग्रव्यवहारिणि, मुहुर्मुहुराहूयमान तोयकर्मान्तिकानुमि-तघोरातुरतृषि, तुषारपरिकरितकरकशिशिरीक्रियमाणोदश्विति, श्वेतार्द्रकर्पटार्पितकर्पूरपरागशीतली कृतशलाके, नाश्यान-पङ्कलिप्यमाननवभाण्डगतगण्डूषग्रहणवस्तुनि, तिम्यत्कोमल कमलिनी पलाशप्रावृतमृदुमृणालके, सनालनीलोत्पलपूलीसनाथ सलिलपान-भाजनभुवि, धारानिपातनिर्वाप्यमाणक्वथिताम्भसि, पटुपाटलशर्करा-मोदमुचि, मञ्चकाश्रितसिकतिलकर्करीविश्रान्ता तुरचक्षुषि, सजलशेवा-लवलयितगलद्गोलयन्त्रके, गल्वर्कशालाजिरो ल्लासितलाज-सक्तुनिपीतमसारपारीपरिगृहीतकर्कशर्करे, शिशिरौषधरसचूर्णावकी-र्णस्फटिकशुक्तिशंखनिचये, संचितप्रचुरप्राचीना मलकमातुलुङ्ग-द्राक्षादाडिमादिफले, प्रतिग्राहितविप्रविप्रकीर्यमाण शान्त्युदक विप्रुषि, प्रेष्यापेष्यमाणललाटलेपोपदिग्धदृषदि धवलगृहे स्थितम् (पितरमद्राक्षीत्)

व्याख्या – *तत्र तत्रैव राजभवने (सर्वत्र सप्तमी पदस्य भवने इति पदेनान्वयः)* चातिनिःशब्दे –*निर्गतः शब्दो यस्मात् स निःशब्दः अर्थात् यस्मिन् भवने शब्दो न भवति*

स्म, कश्चित् केनचित् वार्तालापं न करोति स्म, गृहावग्रहणीग्राहिबहुवेत्रिणि –गृहावगृहणी देहली गृहावग्रहणी देहलीत्यमरः' तां देहलीं ग्राहिण्यः धारिण्यः बहुवेत्रिण्यः वेत्रदण्डध ारिण्यो बह्वयः प्रतिहारिण्यः यत्र आसन् तस्मिन्, अर्थात् यस्मिन् भवनद्वारे वेत्रध ारिण्यः प्रतिहारिण्यः बहुलमात्रायां सुरक्षाव्यवस्थायामासन्, त्रिगुणतिरस्करिणीतिरोहितसुवीथिपथे, त्रिगुणाभिः तिरस्करिणीभिः जवनिकाभिः तिरोहिता अन्तर्हिता सुवीथ्याः अन्तःस्थितगृहस्य पन्था मार्गः यस्य भवनस्य तस्मिन्भवने, पिहितपक्षद्वारके, पिहितं आवृतं पक्षद्वारं अभ्यन्तरस्थं द्वारं प्रच्छन्नद्वारमिति भावः, यस्य भवनस्य तस्मिन्, परिहृतकवाटरटिते – परिहृतं परित्यक्तं कवाटस्य द्वारपिधानाय रक्षितं काष्ठफलकं तस्य रटनं शब्दः, काष्ठफलकद्वयेन भवति द्वारपिधानं तस्य स्थिरतायै भवति काष्ठदण्डसंयोजनं , उद्घाटनावसरे पिधानावसरे भवति शब्दः ध्वनिः, राज्ञः कर्णपीड़ारोधाय शब्दनिरोधनमावश्यकमासीदतः कवाटस्य दण्डसंयोजनं नैव भवति स्मेति भावः, कवाटशब्दः यस्मिन् भवने न भवति स्म तस्मिन्भवने, घटितगवाक्षरक्षितमरुति – घटितेन पिधत्तेन गवाक्षेन वातायनेन येन मार्गेण वायुः प्रविशति गृहे स गवाक्षः (खिडकी इति हिन्द्यां) रक्षितं मरुतामागमनं यस्मिन्भवने तस्मिन्, अर्थात् रोगग्रस्तस्य राज्ञःशान्तिलाभाय मरुतामागमनरोधाय पिधत्तमासीत् तत्र गवाक्षः, दूयमानपरिचारके दूयमानाः कष्टं भजमानाः परिचारकाः सेवकाः आसन् यस्मिन्भवने, अर्थात् राज्ञो दुरवस्थां वीक्ष्य तत्र परिचारकाः अपि स्वस्वामिस्नेहवशात् कष्टं भजमाना आसन्, चरणताडनस्वनत्सोपानप्रकुपितप्रतिहारे – चरणानां पादानां ताडनेन चलनक्रियया जायमानाघातेन सोपाने यत्स्वनं नादो भवति स्म तेन प्रकुपितो प्रतिहारः द्वारपालः यस्मिन्भवने, अर्थात् लोकानां गमनागमने सोपाने चरणाघातेन जायमानशब्दध्वनिना राज्ञः कष्टं भवति स्म अतएव प्रतिहाराः कुपिता भवन्ति स्म, निभृतसंज्ञानिर्दिश्यमानसकलकर्मणि, निभृतं निश्शब्दंमेव संज्ञया संकेतेन निर्दिश्यमानाः आदिश्यमानाःआसन् प्रतिहाराः सर्वकर्मणि यस्मिन्भवने वा सकलकर्मणि संकेतमात्रेणैव कार्यव्यापृता आसन् सेवका यस्मिन्भवने, नातिनिकटोपविष्टविटङ्किनि न अतिनिकटं अतिसमीपं अर्थात् दूरे उपविष्टा आसन् कङ्कटिनः वर्म्मधारिणः अंगरक्षकाः 'तनुत्रं वर्म दंशनम्। उदच्छदः कंकटकः इत्यमरः' यस्मिन्भवने, , कोणस्थिताह्वानचकिताचमनकवाहिनि कोणे तस्याः कक्ष्यायाः एकभागे स्थिताः स्थिराः आसन् आह्वानेन आकारमात्रेण स्वार्थमादेशश्रवणमात्रेण चकिताः व्यग्राः आचमनकं आचमनीयं जलं वहन्ति ये सेवकास्ते आचमनकवाहिनः, अर्थात् यस्यां कक्ष्यायां यस्मिन्भवने वा आचमनीयजलवाहिनः सेवकाः कोणे स्थिता आसन्। स्वनाम्ना शब्दाह्वानं

श्रुत्वैव चकिताः भवन्ति स्म ते, चन्द्रशालिकालीनमूकमौललोके चन्द्रशालिकायां उपरिस्थितगृहे 'चन्द्रशाला शिरोगृहमित्यमरः' भवनस्योच्चभागस्थकक्ष्या भवति चन्द्रशालिका, लीनाः स्थिताः मूकाः वचनहीनाः मूकतां गता वा, मौलाः कुलक्रमादागताः लोकाः परिचिताः जनाः यस्मिन्भवने, महाधिविधुरबान्धवाङ्गनावर्गगृहीतप्रच्छन्नप्रग्रीवके, महान् चासौ आधिः रोगः महाधिः विशिष्टो रोगः 'आधिव्याधिगदामयाः इत्यमरः' पुंस्याधिर्मानसी व्यथेत्यमरः' तेन विधुराः व्याकुलाः ये बान्धवाः बन्धुभावेन युक्ताः तेषां या अङ्गनाः महिलाः पत्न्यः तासां यो वर्गः समूहः तेन परिगृहितं धारितं प्रचछन्नं गुप्तं निर्जनं यत्रान्यजनानां प्रवेशः वर्जितः आसीत् तादृशं प्रग्रीवकं कक्ष्याविशेषः यस्मिन्भवने, अर्थादन्यजनप्रवेशरहितकक्ष्यायां बन्धुजनानां महिलाः निवासं करोति स्म, संजवनपुञ्जितोद्विग्नपरिजने संजवने चतुश्शालायां चत्वरे वा पुञ्जिताः एकत्रीभूताः उद्विग्नाः राज्ञः स्वास्थ्याभावात् विकलतां गताः परिजनाः पारिवारिकजनाः यस्मिन्भवने, प्रविष्टकतिपयप्रणयिनि - कतिपयाः कतिचन प्रणयिनः राज्ञः प्रणयेन स्नेहेन तद्दर्शनार्थमागता ये जनाः ते प्रविष्टा आसन् यस्मिभवने, , गम्भीरज्वरारम्भभीतभिषजि गभीरस्य अतिगहनस्य ज्वरस्य रोगस्य 'गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णयेत्यमरः' आरम्भात् भीतो भेषजः वैद्यः चिकित्सकः यस्मिन्भवने अर्थात् राज्ञः ज्वरस्य गभीरतामालोक्य यत्र वैद्याः अपि भीता आसन् शंकिता आसन् यत् न जाने अग्रे किं भविष्यतीति, दुर्मनायमानमन्त्रिणि - दुर्मनायमानाः विमनायमानाः यस्य मनः चञ्चलतां गतमासीत् तादृशाः मन्त्रिणः सचिवाः यस्मिन्भवने, मन्दायमानपुरोधसि मन्दायमानाः मन्दतां गम्यमाना आसीत् बुद्धिर्यस्य तादृशाः पुरोधसः पुरोहिता यस्मिन्भवने, अर्थात् राज्ञो दशां वीक्ष्य पुरोहिता अपि करणीयाकरणीयविषयकविचारे मन्दायमाना आसन्, सीदत्सुहृदि - सीदन्तः कष्टं भजन्तः सुहृदाः मित्राणि यस्मिन्भवने, विद्राणविपश्चिति- विद्राणाः इतस्ततो विचिकित्सया भ्रमन्तः , निद्राणाश्चेत् निद्रां गम्यमानाः कार्याधिक्यात् रात्रावनुष्ठानादिकसाधनेन जातश्रमवशादित्यर्थो ग्राह्यः, विपश्चित् विद्वान् 'विद्वान् विपश्चित् दोषज्ञ इत्यमरः'अर्थात् विद्वांसो यत् निद्रायमाना आसन् वा कार्याधिक्यादितस्ततः वैक्लव्यात् परिभ्रमन्त आसन् यस्मिन्भवने, सन्तप्ताप्तसामन्ते -सन्तप्ताः राज्ञो दुःखं श्रुत्वा मानसिकतापं भजन्तो ये आप्ताः परिचिताः विश्वस्ता सामन्ताः लघुराजानः यस्मिन्भवने, विचितचामरग्राहिणि - विचिता विगतचेतनाः चैतन्यरहिता चामरग्राहिणः चामरधारिणः आसन् यस्मिन्भवने, दुःखक्षामशिरोरक्षिणि दुःखेन स्वामिन अस्वास्थ्यमालोक्य- चिन्ताग्रस्ततया क्षामः दुर्बलः कृशतरः अभवत् शिरोरक्षी प्रधानरक्षकः यस्मिन्भवने

अर्थात् यत्र प्रधानरक्षकोऽपि स्वामिनः दुःखात् दुःखमनुभवन् कृशतरः संजाता आसीत् तस्मिन्, क्षीयमानप्रसादवित्तकमनोरथसंपदि, क्षीयमानाः क्षयं नाशं गम्यमानाः प्रसादवित्तकानां – प्रसादः कृपा, राज्ञः प्रदसादादेव येषां वित्तलाभो भवति स्म तादृशानां जनानां मनोरथसम्पद् मनःकामनारूपसम्पत्तिः यस्मिन्भवने, अर्थात् राज्ञः कृपया येषां धनापूर्तिर्भवति स्म तेषां मनोरथाः क्षीयमाना आसन् यस्मिन्भवने, स्वामिभक्ति–परित्यक्ताहारहीयमानबलविकलवल्लभभूभृति, स्वामिनो भक्तिः स्वामिभक्तिः तया भक्त्या परित्यक्तः आहारः भोजनं येन तादृशो यो राजभक्तः, तेन आहारपरित्यागेन हीयमानं क्षीयमानं बलं शारीरिकशक्तिर्यस्य, तस्मात् शक्तिहीनत्वात् विकलतां गतो बल्लभभूभृत् भूभृतां राज्ञां बल्लभः नायकः यस्मिन्भवने, अर्थात् स्वस्वामिनः प्रभाकरवर्धनस्य दुर्दशां वीक्ष्य यत्र सवामिभक्ताः सामन्ताः यत्र आहारपरित्यागेन दुर्बला इवाभवन् तस्मिन्भवने, क्षितितलपतितसकलरजनीजागरूकराजपुत्रकुमारके, क्षितिः पृथ्वी तस्याः पृथिव्यास्तले पतिताः उपविष्टाः सकलरजनीं सम्पूर्णरात्रिं यावत् जागरूकाः निद्राविहीनाः राजपुत्राः यस्मिन्भवने, अर्थात् यत्र राजपुत्राः भूमावुपविश्यैव सकलां रात्रिं जागरित एव व्यतीतवन्तः यस्मिन्भवने, कुलक्रमागतकुलपुत्रानिवहोह्यमानशुचि , कुलं वंशः कुलस्य क्रमेण आगताः अर्थात् कुलोत्पन्नाः वंशजाः ये पुत्राः तैः उह्यमानः धार्यमान आसीत् शोकः यस्मिन्भवने, शोकसंकुचितकञ्चुकिनि शोकेन दुःखेन संकुचिताः कुण्ठिताः म्लायमानाः कञ्चुकिनः राजभवनस्य बृद्धसेवकाः यस्मिन्भवने, कञ्चुकिनो लक्षणमिदमस्ति –

अन्तःपुरचरो बृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते।।

अर्थात् यत्र कुलक्रमागताः राजपुत्राः शोकं वहन्तः आसन्, कञ्चुकिनश्चापि राज्ञो विषादात् विषादं गम्यमानाः कुण्ठिता आसन्, निरानन्दवन्दिनि, निरानन्दाः आनन्देन रहिताः स्वामिनो दुःखवशात् वन्दिनः स्तुतिगायकाः चारणाः यस्मिन्भवने, निःश्वसन्निराशासन्नसेवके, निःश्वसन्तः दुःखाधिक्यात् दीर्घायमानश्वासततिं त्यजन्तः निराशया आशाविहीनस्थित्या ये आसन्नसेवकाः तत्रोपस्थितसेवकाः भृत्या इत्यर्थः – सेवकास्त्वनुजीविनः इत्यमरः' यस्मिन्भवने, अर्थात् सर्वदा पार्श्वस्थितसेवकाः राज्ञो दशां विलोक्य स्वास्थ्यलाभाभावशंकया निराशतां गता आसन्, निःसृतताम्बूलधूसराधरवारयोषिति, निस्सृतः निर्गतः ताम्बूलस्य पर्णपत्रस्य चर्वणं दुःखावेगवशात्, तस्मात् ताम्बूलचर्वणाभावात् धूसरतां अन्यवर्णतां गतः अधरः दन्तावरणः यत्र वारयोषितां गणिकानां तस्मिन्भवने, अर्थात् यत्र दुःखाधिक्यात् वारयोषितः अपि

ताम्बूलचर्वणं न करोति स्म, धूसरवर्णस्य विलक्षवैद्योपदिश्यमानपथ्याहरणावहितपौरोगवे-विलक्षाः लज्जिताः ये वैद्याः चिकित्सकाः तैः उपदिश्यमानं निर्दिश्यमानं तन्निर्देशानुसारमिति भावः, पथ्यस्य रोगिणो भोजनोपयुक्तं यद्वस्तु तत्पथ्यं तस्य पथ्यस्य आहरणे आनयने अवहिताः दत्तावधानाः पौरोगवाः राजपाकशालाध्यक्षाः 'रसवत्यान्तु पाकस्थानमहानसे, पौरोगवस्तदध्यक्षः इति चामरः' यस्मिन्भवने, अर्थात् चिकित्सकनिर्दिष्टपथ्यस्य व्यवस्थायां यत्र पाककर्मिणः दत्तावधाना आसन्, अनुजीविपीयमानोच्चचषकाधारावारिविनोद्यमानास्यशोषरुजि, अनुजीविभिः सेवकैः पीयमानं उच्चषकधारावारि उर्ध्वोद्धृतचषकधारा पेयधारा पानपात्रान्निर्गता या धारा चषकोऽस्त्री पानपात्रमित्यमरः' तद्वारिणा तेन जलेन विनोद्यमानं शाम्यमानं आस्यशोषरुक् आस्यस्य मुखस्य शोषणतया शुष्कतया जातो यो रोगः तस्मिन्भवने, अर्थात् अधिकजलपानावरोधात् जायमानायाः अधरशुष्कतायाः परिशमनाय तत्रत्यसेवकाः पानपात्रमुत्थाय जलं पिबन्ति स्म यस्य दर्शनेन रोगिणः अधरशुष्कतायाः परिशमनं भवेत् , वा दुःखावस्थायां अन्नजलादिग्रहणाभावात् अधरशुष्कतां परिमर्जयन्तो जनाः यत्र जलपानपात्रमुत्थाय धारारूपेण निष्पन्तं जलं पिबन्ति स्म, तेनैव बुभुक्षादिशान्तिमपि कुर्वन्ति स्म यस्मिन्भवने, राजाभिलाषभोज्यमानबहुभुजि, राज्ञः अभिलाषः मनोरथः कामना राजाभिलाषः तेन भोज्यमानाः भोजनार्थं नीयमानाः भोजने नियोज्यमानाः बहुभोजिनः बहुलमात्रायां भोजनेच्छुकाः जनाः यस्मिन्भवने, अर्थात् राज्ञः दुःखमालोक्य अन्येऽपि भोजनं त्यक्तवन्त आसन् परन्तु राज्ञः अभिलाषं वीक्ष्य अन्ये जनाः बुभुक्षितान् भोजयन्ति स्म यस्मिन्भवने, भेषजसामग्रीसम्पादनव्यग्रसमग्रव्यवहारिणि - भेषजं औषधं तदनुकूला या सामग्री यद्वस्तु तस्य सम्पादनाय आहरणाय व्यग्राः व्याकुलाः समग्रव्यवहारदक्षाः द्रव्यगुणकर्मपरीक्षणादिविषये कुशलाः जनाः यस्मिन्भवने, मुहुर्मुहुरा-हूयमानतोयकर्मान्तिकानुमितघोरातुरतृषि - मुहुर्मुहुः बारम्बारं आहूयमानेन आकार्यमानेन तोयकर्मान्तिकाः तोयकर्मणि जलदानकर्मणि नियुक्ताः ये सेवकाः तेनानुमिता घोरा कठोरा तृषा पिपासा यस्मिन्भवने, अर्थात् तोयदानकर्मणि ये जनाः नियुक्ताः तेषां यदा बारम्बारं आह्वानं भवति स्म तदा ते जानन्ति स्म यत् रोगिणः पिपासा बृद्धिं गता वर्तते, येन ते शीघ्रं शीघ्रं लोकान् जलं पाययन्ति स्मेति भावः, तुषारपरिकिरितकरक शिशिरीक्रियमाणोदश्विति, तुषारेण हिमेन नीहारेण 'अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिममित्यमरः' परिकिरितः आवेष्टितः यः करकः कमण्डलुः घटो वा कमण्डलौ च

करकः इत्यमरः' तेन शिशिरीक्रियमाणः शीतलतां नीयमानः उदश्वत् अर्धोदकं तक्रं 'तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पदाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलमित्यमरः' यस्मिन्भवने, अर्थात् तक्रपरिपूर्णघटं हिमस्यावरणेन शीतलतां नीयमान आसीत् तत्र, श्वेतार्द्रकर्पटार्पितकर्पूरपरागशीतलीकृतशलाके- श्वेतो धवलः उज्ज्वलः श्वेतवर्णीये आर्द्रे क्लिन्ने कर्पटे जीर्णवस्त्रखण्डे अर्पितं यत्कर्पूरं तस्य परागेन धूलिना शीतलीक्रियते शिशिरीक्रियते शलाकाः शिलाकणिकाः लौहकणिकाः वा यस्मिन्भवने, नाश्यानपङ्कलिप्यमान नवभाण्डगतगण्डूषग्रहणवस्तुनि – नाश्यानं तरलेन क्लिन्नेन पंकेन कर्दमेन लिप्यमानं आवेष्ट्यमानं यद् नवभाण्डं नवीनं मृत्पात्रं तस्मिन्पात्रे रक्ष्यमानं गण्डूषमुखशोधनार्थ ग्रहणीयं उपयोग्यं वस्तु 'गण्डूषो मुखपूर्तीभपुष्करप्रसृतोन्मिते इति मेदिनी' यस्मिन्भवने, अर्थात् यस्मिन्भवने घटस्य बाह्यभागे पंकेन लेपनं कृत्वा तस्मिन्घटे मुखशोधनयोग्यवस्तुपूर्णजलरक्षणं भवति स्म, क्वचित् मस्त्विवतिपाठे मस्तु दधिभवं वस्तु तद्रक्षितं भवति स्म घटे मुखशोधनाय तस्यार्थो ग्राह्यः, तिम्यत्कोमल-कमलिनीपलाशप्रावृतमृदुमृणालके तिम्यत् आर्द्रीभवत् यत्कोमलायाः कमलिन्याः मृणालिन्याः पलाशं पत्रं तेन प्रावृतानि आच्छादितानि मृदु कोमलं मृणालं कमलदण्डं 'मृणालं नलदे क्लीबं पुंनपुंसकायोर्विसे इति मेदिनी' यस्मिन्भवने, सनालनीलोत्पल पूलीसनाथसलिलपानभाजनभुवि –सनालेन नालसहितेन दण्डसहितेनेति भावः यत् नीलोत्पलस्य कमलस्य पूली समूहः तेन सनाथितानि युक्तानि सलिलपानभाजनानि जलपानपात्राणि यस्यां भुवि, तस्मिन्, धारानिपात निर्वाप्यमाणक्वथिताम्भसि धारायाः प्रपातस्य जलधारस्य निपातेन पातनेन निर्वाप्यमानं शीतलीक्रियमाणं क्वथितं अ॰ पिक्वावस्थायामुष्णीकृतं यदम्भः जलं यस्मिन्भवने, अर्थात् यत् क्वथितजलं जल॰ ारानिपातनेन शीतलीक्रियते स्म, पटुपाटलशर्करामोदमुचि – पटु तीक्ष्णं प्रवृद्धं यत्पाटलं इषद्रक्तवर्णीयः शर्करा सिता मधुरवस्तु 'शर्करा स्याद्गन्धमृदि पुष्परेणु पिशाचयो। इक्षुपाकविशेषे च पुमान् सैन्धवनागयोः' तस्यामोदस्य सुगन्धस्य मोचनं उन्मीलनं भवति यस्मिन्भवने, , मञ्चकाश्रितसिकतिलकर्करी विश्रान्तान्तरचक्षुषि – मञ्चकः उत्पीठिकातुल्याधारविशेषः तत्रैव आश्रितः स्थितः स्थापितो वा सिकतिला बालुकामयी कर्करी जलरक्षणपात्रविशेषः सुराहीति हिन्द्यां, येन पात्रेण विश्रान्तिं गतं शीतलतामवाप्य शान्तिमाप्तवत् आतुरस्य रोगिणः प्रभाकरवर्धनस्य चक्षुः नेत्रं यस्मिन्भवने, अर्थात् राज्ञः समक्षं सिकतामयी कर्करी लघूत्पीठिकायां रक्षिता आसीत् यत्पात्रमवलोक्य

दाहज्वरपीडितराज्ञो नेत्रशान्तिर्भवति स्म, सजलशेवालवलयित गलद्गोलयन्त्रके सजलेन जलसहितेन शेवालेन नीलीनामधेयजलपादप विशेषेण वलयितं आवृतं गलद् प्रवहत् क्षरत् गोलयन्त्रं विशिष्टयन्त्रं यस्मात् यन्त्रात् सहस्रधारस्वरूपं जलं निपतति तद्यन्त्रं स्थापितमासीत् यस्मिन्भवने, गल्वर्कशालाजिरोल्लासितलाजसक्तुनि – गल्वर्कः मणिविशेषः तन्निर्मिते शालाजिरे पात्रविशेषे 'स्याच्छरावस्तु मार्तिकः शालाजिरः इति त्रिकाण्डशेषः' उल्लासितं उद्भासितं लाजसक्तु लाजानिर्मितसक्तु अक्षतचूर्णविशेषं यस्मिन्भवने, अर्थात् गल्वर्कनिर्मितपात्रे अक्षतसक्तु रक्षितमासीत्, पीतमसारपारी परिगृहीतकर्कशकरी पीतवर्णीये मसारेण मसारनामधेयमणिविशेषेण निर्मिता या पारी पात्रं 'पारीपात्रशरावयोरिति विश्वः' तस्मिन् परिगृहीता स्थापिता कर्कशर्करा श्वेतशर्करा चीनी इति यस्मिन्भवने, शिशिरौषधरसचूर्णावकीर्णस्फटिकशूक्तिशंखनिचये, – शिशिरस्य शीतलस्य औषधस्य रसेन चूर्णेन अवकीर्णाः भरितः शूक्तीनां शंखानां निचयः समूहः यस्मिन्भवने, संचितप्रचुरप्राचीनामलकमातुलुङ्ग द्राक्षादाडिमादिफले, संचितानि संरक्षितानि प्रचुरमात्रायां बहुलमात्रायां प्राचीनानां पुरातनानां आमलकीनां धात्रीफलानि, मातुलुङ्गानि रसपूर्णजम्बीरनिम्बूफलानि द्राक्षाफलानि (अंगूर) दाडिम-अनारफलानां समूहो यस्मिन्भवने तस्मिन्, प्रतिग्राहितविप्रविप्रकीर्यमाणशान्त्युदकविप्रुषि, प्रतिग्राहिताः दत्तदक्षिणाः अर्थात् प्राप्ता दक्षिणा यैः विप्रैः तैः विप्रकीर्यमाणं प्रक्षिप्यमानं शान्त्युदकं शान्त्यर्थ जलं तस्य जलस्य विप्रुषः विन्दवः 'पृषन्ति विन्दुपृषताः पुमांसो विप्रुशः स्त्रियः इत्यमरः' यस्मिन्भवने, प्रेक्ष्याप्रेष्यमाणललाटलेपोपदिग्धदृषदि प्रेष्याभिः दासीभिः पेष्यमानः चूर्णीक्रियमाणः ललाटलेपः ललाटे भालतले लिप्यमानः यो लेपः तेन उपदिग्धं लिप्तं यत् दृषत् प्रस्थरखण्डं यस्मिन्गृहे तस्मिन् धवलगृहे श्वेतभवने स्थितम् शय्यासने उपस्थितम् (पितरमद्राक्षीत् इत्यन्वयः)।

हिन्दी – इसके बाद धवलगृह में स्थित अपने पिता को देखा जहाँ निःशब्द होकर घर की देहली पर बहुत सारे वेंत दण्ड धारण करनेवाले लोग खड़े थे, त्रिगुणात्मक पर्दे से अन्तर्भवन में जाने का रास्ता आच्छादित कर दिया गया था, दरवाजे का किवाड़ बन्द कर दिया गया था, केवाड़ के खुलने और बन्द होने से होनेवाली आवाज को बन्द कर दिया गया था, खिड़कियों का पल्ला बन्द कर बाहर से हवा के आगमन को रोक दिया गया था, परिचारक लोग भी जहाँ विकल हो रहे थे, लोगों के आने जाने के कारण सीढ़ियों पर पैरों के आघात से उत्पन्न शब्दों

से प्रतीहारी लोग कुपित हो रहे थे, (इन शब्दों से बीमार महाराज को कष्ट हो रहा था। इसीलिये प्रतीहारी क्रोध कर रहे थे।) शब्द के विना केवल इशारे से ही सभी कार्यों का सम्पादन किया जा रहा था, कुछ दूर पर राजा के अंगरक्षक लोग बैठे हुए थे, घर के कोने में पीने योग्य जल का वहन करनेवाले दास खड़े थे जो अपने आह्वान को सुनकर चकित हो रहे थे, चन्द्रशाला में चुपचाप सम्बन्धी लोग आकर बैठे हुए थे, विशेष व्याधिग्रस्त महाराज प्रभाकरवर्धन को सुनकर सम्बन्धियों की विकल पत्नियाँ कहीं (भवन के उपर में स्थित) निर्जन भवन में निवास कर रही थीं, चतुश्शाला में उद्विग्न परिजन लोग एकत्रित थे, कुछ प्रणयी लोग वहाँ प्रवेश कर रहे थे, राजा के गम्भीर ज्वर के आरम्भ को देखकर वैद्य लोग भी डर गये थे, मन्त्री लोग भी अन्यमनस्क हो रहे थे, पुरोहित लोगों की बुद्धि भी मन्द पड़ रही थी, मित्र लोग आप्तलोग दु:खी हो रहे थे, विद्वान लोग भी विचलित हो रहे थे या रात भर जगे होने के कारण सोने का प्रयास कर रहे थे, सभी आप्त सामन्त लोग सन्तप्त हो रहे थे, चँवरधारी लोग विकल हो रहे थे, राजा के प्रधान रक्षक दु:ख से उद्विग्न हो रहे थे, राजा की कृपा से धन पाकर जीनेवाले लोगों का मनोरथ समाप्त हो रहा था, स्वामि भक्ति के कारण राजा के दु:ख को देखकर भोजन पानी छोड़ देने के कारण बलहीन होते हुए प्रधान सामन्त लोग विकल हो रहे थे, रात भर जगे रहने के कारण राजपुत्र लोग धरती पर ही लेट गये थे, कुलक्रम से आये राजपुत्र लोग कष्ट झेल रहे थे, शोक के कारण कञ्चुकी लोग भी संकोच कर रहे थे, स्तुति गान करनेवाले वन्दी लोग भी आनन्दविहीन हो चुके थे, समीप में रहनेवाले सेवक लोग निराश होकर दीर्घ श्वाँस छोड़ रहे थे, दु:ख के कारण पान खाना छोड़ देने के कारण वारांगनाओं के अधर भी धूसरवर्ण के हो रहे थे, राजा को ठीक नहीं कर पाने के कारण लज्जित वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट पथ्य की साज सज्जा में पाकशालाध्यक्ष व्यस्त हो रहे थे, सेवकों द्वारा उपर उठाकर पीये जाते हुए जल की धारा से अपने सूखते होंठ को शान्त किया जा रहा था(यहाँ एक विशेष उपचार का विधान दिखाया गया है। जिसमें प्यास के कारण सूखे ओठ वाले रोगी का परिशमन करने के लिये सेवक लोग सामने में उपस्थित होकर जल की धारा को दिखाते हुए जल पीते हैं जिसे देखकर रोगी का सूखा अधर शीतलता को पाता है।) राजा(प्रभाकरवर्धन) की अभिलाषा को देखते हुए अधिक भोजन करनेवालों को भोजन कराया जा रहा था (ताकि वे भूख से विकल न हों) औषधियों की सामग्री को औषधिपरीक्षण आदि

में कुशल लोगों द्वारा तैयार किया जा रहा था, लोगों को जल पिलाने वाले सेवक लोग अन्दर से आने वाली आह्वान की आवाज को सुनकर यह समझ रहे थे कि रोगी की प्यास बढ़ गयी है, बर्फ से कमण्डल या जलपात्र को लपेटकर तक्र को शीतल किया जा रहा था, उजले पुराने कपड़े में रखे कपूर की धूलि से शलाकाओं को ठंढा किया जा रहा था, गीले कीचड़ से लीपे हुए नये पात्र में कुल्ला करने योग्य दधिमिश्रित जल इकट्ठा किया जा रहा था, कमलिनी के पत्ते से ढके हुए कोमल मृणाल रखे हुए थे, पीने योग्य जल के पात्र नाल सहितनीलकमल के समूह से परिपूर्ण स्थान पर रखे हुए थे, धारा जल के गिरने से उबलते हुए जल को ठंढा किया जा रहा था, सुन्दर लाल रंग की शर्करा का सुन्ध फैल रहा था, छोटे मंच पर रखे हुए बालुकामय सुराही से रोगी की आँख का ताप शान्त हो रहा था, सरल शैवाल से घेरकर गोलयन्त्र रखा हुआ था जिससे जलधारायें गिर रही थी, गल्वर्क नामक मणि विशेष से बने शराव (पात्र) में चावल के सत्तू उद्भासित हो रहे थे, पीले मसार नामक मणिविशेष से बने पात्र में चीनी रखी हुई थी, ठंढे औषध रस के चूर्ण से भरे हुए स्फटिक सूक्ति और शंखों का समूह भरा पडा था, प्रचुर मात्रा में पुरारा आँवला, मातुलुंग (जम्बीरी निम्बू) दाख(अंगूर) दाडिम (अनार) आदि फल एकत्रित किया गया था, दान दक्षिणा पाकर ब्राह्मण लोग शान्तिजल का छिड़काव कर रहे थे, दासियों द्वारा पीसे जानेवाले भालतल पर लगानेवाले लेप से पत्थर का टुकड़ा लिपा हुआ था, ऐसे श्वेतभवन में (हर्ष ने अपने पिता को देखा)।

परलोकविजयाय नीराज्यमानमिव ज्वरज्वलनेनानवरतपरिवर्तनैस्तरङ्गिणिशयनीये शेषमिव विषोष्मणा क्षीरोदन्वति विचेष्टमानम्, मुक्ताफलबालुकाधूलिधवलित जलधिमिव क्षयकाले शुष्यन्तम्, कालेन कैलासमिव दशाननेनोद्ध्रियमाणम्, अविरतचन्दनचर्चापराणां परिचारिकाणामत्युष्णावयवस्पर्शभस्मीभूतोदरैरिव धवलैः करैः स्पृश्यमानं लोकान्तरप्रस्थितम्, स्थास्नुना स्वयशसेव चन्दनानुलेपनच्छलेनापृच्छ्यमानम्, अविच्छिन्नदीयमान कमलकुमुदेन्दोदरदलम्, कालकटाक्षपतनशबलमिव शरीरमुद्वहन्तम्, निविडदुकूलपट्टनिपीडितकेशान्तकथ्यमानकष्टवेदनानुबन्धं मूर्धानं धारयन्तम्, दुर्धरवेदनोन्मन्नीलशिराजालककरालेन च

कालाङ्गुलिलिख्यमानलेखाख्यातमरणावधिदिवससंख्यानेनेव ललाटफलकेन भयमुपजयन्तम्, आसन्नयमदर्शनोद्वेगादिव च किञ्चिदन्तःप्रविष्टतारकं चक्षुर्दधानम्, शुष्यद्दशनपंक्तिप्रसृतधूसरदीधितितरङ्गिणीं मृगतृष्णिकामिवोष्णां निःश्वासपरम्परामुद्वहन्तम्, अत्युष्णनिःश्वासदग्धयेव श्यामायमानया रसनया निवेद्यमानदारुणसन्निपातारम्भम्, उरःस्थलस्थापितमणिमौक्तिकहार चन्दनचन्द्रकान्तम्, कृतान्तदूतदर्शनयोग्यमिवात्मानं कुर्वाणम्, (पितरमद्राक्षीत् इत्यन्वयः)।

व्याख्या- *परलोकविजयाय- परलोकस्य भूतलमपहायान्यलोकस्य स्वर्गलोकस्येत्यर्थः, तस्य विजयाय, विजयलाभाय, भूलोकस्य राजा तु अस्त्येव राजाप्रभाकरवर्धनः, इदानीं स्वर्गलोमपि जेतुं प्रस्थानं करोतीति मन्ये,(उत्प्रेक्षालंकारः) नीराज्यमानमिव नीराजना आरार्तिक्यं तया नीराजनया युक्तम् इव मन्ये, विजययात्रायां यात्राकाले यथा आरार्तिक्यं विधीयते नृपतेः तथैव मन्ये इदानीं नीराज्यमानो वर्तते राजा, ज्वरज्वलनेन ज्वरः रोग 'व्याधिभेदा विद्रधिः स्त्री ज्वरमेहभगन्दरा इत्यमरः' एव ज्वलनं वह्निः कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपादित्यमरः' तेन तद्वशात् वा, अनवरतपरिवर्तनैस्तरङ्गिणिशयनीये अनवरतं निरन्तरं परिवर्तनेन पार्श्वपरिवर्तनेन तरङ्गिनी नदी तद्वत् यत् शयनीयं शयनयोग्यं स्थानं आस्तरणं (चादर) तस्मिन्, पार्श्वपरिवर्तनेन तरङ्गिन्याः तरंगवत् उच्चावचत्वं प्राप्तं यदास्तरणं तस्मिन्निति भावः, शेषमिव शेषनागम् इव, विषोष्मणा विषस्य गरलस्य 'क्ष्वेडस्तु गरलं विषमित्यमरः' या उष्मा तापः तेन, क्षीरोदन्वति क्षीरं नाम दुग्धं तस्य दुग्धस्य य उदन्वान् सागरः तस्मिन् सागरे, विचेष्टमानम् लुठन्तं, विषस्य प्रभावात् तापाधिक्यात् लुठन्तमिव, विषप्रभावात् तापाधिक्यात् इतस्ततः लोटनं स्वाभाविकमेव, मुक्ताफलबालुकाधूलिधवलित जलधिमिव मुक्ता मौक्तिकं तस्य फलेन मौक्तिकेनेति, तद्बाहुल्येन धवलिता श्वेततां गता या बालुका सिकतामयी धूलिः वा मुक्ताफलानां या बालुकामयी धूलिः तेन धवलितो यः सागरः तमिव, मुक्ताफलानां बाहुल्यात् सागरस्य तटगतबालुकामयी धूलिर्भवति धवलिता, राज्ञः शरीरं मुक्तामयी या माला तस्याः बाहुल्यात् उभयोस्साम्यं दृश्यते, क्षयकाले क्षयो विनाशः तस्य विनाशस्य काले समये मृत्युकाले, शुष्यन्तम्, शुष्कतां गच्छन्तं, कालेन समयेन समयप्रभावादिति भावः, कैलासमिव कैलासाख्यो यः पर्वतः तमिव, दशाननेनोद्दि*

ऱ्यमाणम् दशसंख्याकमाननं मुखं 'आननं लपनं मुखमित्यमरः' यस्यासौ रावणः लंकेश्वरः तेन दशानेन रावणेन उद्ध्रियमानम् उत्थाप्यमानम् उत्पाट्यमानम्, अविरतचन्दनचर्चापराणां परिचारिकाणामत्युष्णावयवस्पर्शभस्मीभूतोदरैरिव अविरतं निरन्तरं चन्दनस्य शीतलद्रवस्य चर्चायां घर्षणलेपनादिकर्मणि पराः निरताः यो : परिचारिका दास्यः तासां , अत्युष्णस्य अतितत्पतसय अवयवस्य शरीरांशस्य स्पर्शनेन भस्मीभूतः दग्धः भस्ममात्रावशेष इति भावः उदरं मध्यभागो यस्य तादृशैः, धवलैः श्वेतैः, करैः हस्तैः, स्पृश्यमानं संवाह्यमानं, तात्पर्यमिदं यत् दास्यः चन्दनानुलिप्तकराभ्यां यदा ज्वरतापतप्तांगस्य राज्ञः स्पर्शनं करोति शीतलतालाभेच्छया तदा तप्तगात्रस्पर्शात् दासीनां हस्तस्य मध्यभागः तापप्रभावात् दग्ध इव भवति, एतेन शरीरस्य तापाधिक्यं व्यज्यते, लोकान्तरप्रस्थितम् लोकान्तरे स्वर्गलोके भूतलमपहायान्यलोकम्प्रति गम्यमानं राजानम्, स्थास्नुना स्थितिशीलः स्थास्नुः स्थिर इति भावः, तेन, स्वयशसेव स्वकीयं यशः कीर्तिः ते, चन्दनानुलेपनच्छलेनापृच्छ्यमानम् चन्दनस्य शीतलद्रवस्य अनुलेपनस्य छलेन ब्याजेन आपृच्छ्यमानम् आमन्त्र्यमानम्, गात्रे चन्दनस्यानुलेपनस्य ब्याजेन यशसा आमन्त्रणं दीयते, , अविच्छिन्नदीयमानकमलकुमुदेन्दोदरदलम्, अविच्छिन्नं अनवरतं दीयमानम् निधीयमानम् कमलानां पद्मानां कुमुदानां इन्दीवराणां नीलकमलानां उदरस्य मध्यमागस्य दलानि पत्राणि यस्मिन् तत्, कालकटाक्षपतनशबलमिव शरीरमुद्वहन्तम्, कालस्य यमराजस्य कटाक्षः वक्रदृष्टिः तस्याः दृष्टेः निपतनेन शबलं कर्बुरितं इव शरीरं गात्रं धारयन्तम्, विविधपुष्पाणां निधानं यस्मिन् शरीरे भवति तत् शरीरं तथा प्रतीयते यत् मन्ये यमराजस्य कटाक्षपतनेनैव शरीरमिदं कर्बुरितं भवति इत्युत्प्रेक्षा, निविडदुकूलपट्टनिपीडितकेशान्तकथ्यमानकष्टवेदनानुबन्धं निविडेन दृढेन दुकूलपट्टेन द्वितीयवस्त्रखण्डेन निपीडितः बद्धः केशभागः केशपाश इति तेन कथ्यमानं कथनयोग्यं आवेद्यमानमितिभावः, कष्टः कृच्छ्रं वेदना व्यथा उभयोः अनुबन्धं आधिक्यं स्थितिं वा, तादृशं मूर्धानं शिरोभागं उर्ध्वभां धारयन्तम् वहन्तम्, दुर्धरवेदनोन्न-मन्नीलशिराजालककरालेन च कालाङ्गुलिलिख्यमानलेखाख्यातमरणावधिदिवससंख्यानेनेव ललाटफलकेन भयमुपजयन्तम्, दुर्धरा दुस्सहा या वेदना तया उन्मीलितो भवति नीलवर्णीयः शिराजालकः नाडीजालः तेन करालेन विकटेन दन्तुरितेन वा कालस्य यमराजस्य अंगुलिना करजेन लिख्यमाना अंक्यमाना या लेखा गणनात्मिका रेखा तया रेखया ख्यातं प्रसिद्धिं गतं लोकानां समक्षमागतं मरणस्य परलोकप्रस्थानस्य या अवधिः निश्चितकालः मर्यादा तदनुकूलस्य दिवसस्य संख्यानं, कतिदिवसानन्तरं यास्यति

परलोकमिति रेखा कृता यमराजेनेति भावः, तादृशेन ललाटफलकेन भालतलेन भयम् भीतिं उपजनयन्तं उत्पादयन्तं, अर्थात् दुस्सहवेदनया शरीरे नाडीनां य समूहः प्रकटितः तेन प्रतीयते यत् साक्षात् यमराजः परलोकप्रस्थानस्य दिवसं गणयति , तदर्थमेषा रेखा तेन कल्पिता वर्तते। तथैव भालतले तादृशानां नाडीनां समूहस्य दर्शनेन भयमुत्पायति यस्तादृशं राजानम्, आसन्नयमदर्शनोद्वेगादिव च किंचिदन्तःप्रविष्टतारकं चक्षुर्दधानम्, आसन्नस्य समागतस्य सद्यः सम्प्राप्तस्य यमस्य यमराजस्य दर्शनेन अवलोकनेन जातः उत्पन्नः यः उद्वेगः भयप्रकम्पः तस्मात् भयात् किंचित् अल्पमात्रायां अन्तः प्रविष्टा अधोभागे गता तारका चक्षुषो भागः 'तारकाक्ष्णा कनीनिकेत्यमरः' यस्य तादृशं चक्षुः नयनं दधानम् धारयन्तम्, शुष्यद्दशनपंक्तिप्रसृतधूसरदीधितितरङ्गिर्णी मृगतृष्णिकामिवोष्णां निःश्वासपरम्परामुद्वहन्तम्,शुष्यन्तीनां शोषं गच्छन्तीनां शुष्कानां वा दशनानां दन्तानां या पंक्तिः तस्याः पंक्तेः प्रसृता निर्गता या धूसरा मलिना ईषत्पीतवर्णीया दीधितिः किरणः सा एव तरंगिनी नदी धारा, मृगतृष्णिकाम् मृगस्य हरिणस्य या तृष्णा जलपानस्येच्छा सा मृगतृष्णा कथ्यते तदिव उष्णां तप्तां निश्वासस्य श्वासावलेः परम्परां पंक्तिं उद्वहन्तम् धारयन्तम्, अत्युष्णनिःश्वासदग्धयेव अत्युष्णः अतितप्तो यो निश्वासः दीर्घश्वासपरम्परा तेन श्वासेन दग्धा या तया, श्यामायमानया कृष्णवर्णतां गच्छन्त्या रसनया जिह्वया, निवेद्यमानदारुणसन्निपातारम्भम् - आवेद्यमानम् दारुणं कष्टकरं सन्निपातस्य एतन्नामकरोगस्य आरम्भः यस्य तं तादृशं वा पितरं, उरःस्थलस्थापितमणिमौक्तिकहारचन्दनचन्द्रकान्तम् -उरः स्थले वक्षःस्थले स्थापितो मणीनां मौक्तिकानां वा हारः कण्ठमाला अथ च चन्दनं शीतलद्रवः, चन्द्रकान्तः एतदाख्यमणिविशेषः यस्य तं, कृतान्तदूतदर्शनयोग्यमिवात्मानं कृतान्तस्य यमराजस्य यो दूतः सन्देशवाहकः तस्य दर्शनयोग्यं दर्शनीयं इव आत्मानं स्वशरीरं स्वजीवनं वा कुर्वाणम्,(पितरमद्राक्षीत् इत्यन्वयः)। अस्मिन गद्यांशे प्रायः सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः।

हिन्दी - ज्वर के ज्वलन ताप से मानो परलोकविजय के लिये उनकी नीराजना की जा रही थी, लगातार पार्श्वपरिवर्तन करने के कारण तरंगिनी (लहर युक्त नदी)की तरह सिलवट पड़ चुके शय्यासन पर मानो विष के ताप से क्षीरसागर में शेषनाग की तरह तड़प रहे थे, क्षयकाल में मुक्ताफल से धवलित बालुकामय तटवाले सागर की तरह सूख रहे थे, दशानन रावण के द्वारा कैलास की तरह मानो काल(यमराज)के द्वारा उखाड़े जा रहे थे,(अर्थात् जैसे रावण कैलाश को उखाड़ने का प्रयत्न कर रहा था उसी प्रकार यमराज इनके प्राण को उखाड़ने का प्रयत्न कर

रहा था।) लगातार चन्दन लेपनादि में रत परिचारिकाओं के हाथ की तलहथी मान राजा के अतितप्त शरीर का स्पर्श करने से जल गया हो ऐसे धवलित हाथ से स्पश किये जाते हुए (परिचारिकायें राजा के शरीर पर चन्दन का लेप लगाया करती थी। राजा के शरीर के ताप से उन दासियों के हाथ की तलहथी मानो जग गयी थी। इस प्रकार वह हाथ उजला हो गया था। इसी हाथ से दासियाँ राजा का स्पर्श कर रही थीं।)लोकान्तर को प्रस्थित, चन्दन के अनुलेपन के बहाने से मानो अतिशीतल यश के द्वारा जिनका आह्वान किया जा रहा था, जिनके शरीर पर लगातार कमल कुमुद, नीलकमल आदि का दल अर्पित किया जा रहा था(ताकि शरीर में कुछ शीतलता आये।) इन फूलों से ऐसा लग रहा था मानो काल(यमराज) के कटाक्ष पतन से चितकबरे शरीर को जो धारण कर रहे थे, दुपट्टे से जिसके केश को कसकर बाँध दिये जाने के कारण कसकर बंधा हुआ केशपाश वेदना के आधिक्य को बता रहा था,ऐसे शिर को जो धारण कर रहे थे, अति कष्टदायी वेदना के कारण उगे हुए नीली नीली विकराल शिराओं(नाडियों) से युक्त जिसके ललाट को देखकर भय उत्पन्न हो रहा था, यह नाडियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो काल(यमराज) की अंगुलि से मरण की अवधि को गिनने के लिये संख्यास्वरूप रेखा बना दी गयी हो, समक्ष में आये हुए यमराज के दर्शन से उत्पन्न उद्वेग से मानो जिसकी तारकायें (आँख की पुतली) अन्तप्रविष्ट हो गयी हो, ऐसे धँसी हुई आँखों को जो धारण कर रहे थे। सूखी हुई दन्तपंक्तियों से निकलती हुई मलिन (धूसर) किरणों वाली तरंगिनी को और मृगतृष्णा की तरह तप्त निश्वासपरम्परा को जो धारण कर रहे थे, अति तप्त निश्वास से जली हुई काली जिह्वा से मानो जिसके अतिदारुण सन्निपात का आरम्भ द्योतित हो रहा था, जिसके वक्षःस्थल पर मणि मोतियों के हार, चन्दनद्रव, एवं चन्द्रकान्तमणि रखे जा रहे थे या रख दिये गये थे, यमराज के दूतों के दर्शन योग्य जिन्होंने अपनी आत्मा को बना लिया था(ऐसे पिता को हर्ष ने देखा।)

अङ्गभङ्गवलनोक्षिप्तभुजयुगलम्, पर्यस्तहस्तनखमयूखैर्धारागृहमिव तापशान्तये रचयन्तम्, नेदिष्टसलिलमणिकुट्टिमादर्शोदरेषु निपतद्भिः प्रतिविम्बैरपि सन्तापातिशयमिव कथयन्तम्, स्पृशन्तीं प्रणयिनीमिव विश्वासभूमिं मूर्च्छामपि बहु मन्यमानम्, अन्तकाह्वानाक्षरैरिव सभयभिषग्दृष्टैराविष्टम्, महाप्रस्थानकाले स्वसंतापसंतानमाप्तहृदयेषु

सञ्चारयन्तम्, अरतिपरिगृहीतमीर्ष्ययेव छायया विमुच्यमानम्, उद्योगमिवोपद्रवाणाम्, सर्वास्त्रमोक्षमिव क्षामतायाः, हस्तीकृतं विहस्ततया, विषयीकृतं वैषम्येण, क्षेत्रीकृतं क्षयेण, गोचरीकृतं ग्लान्या, दष्टं दुःखासिकया, आत्मीकृतमस्वास्थ्येन, विधेयीकृतं व्याधिना, क्रोडीकृतं कालेन, लक्ष्यीकृतं दक्षिणाशया, पीतमिव पीडाभिः, जग्धमिव जागरेण, निगीर्णमिव वैवर्ण्येन, ग्रासीकृतमिव गात्रभङ्गेन, ह्रियमाणमिव विपद्भिः, वद्यमानमिव वेदनाभिः, लुण्ठ्यमानमिव दुःखैः आदित्सितं दैवेन निरूपितं नियत्या, समाघ्रातमनित्यत्वेन, अभिभूयमानमभावेन, परिकलितं परासुतया, दत्तावकाशं क्लेशस्य, निवासं वैमनस्यस्य, समीपे कालस्य, अन्तिकेऽन्त्योच्छ्वासस्य, मुखे महाप्रवासस्य, द्वारि दीर्घनिद्रायाः, जिह्वाग्रे जीवितेशस्य वर्तमानम्, विरलं वाचि, चलितं चेतसि, विह्वलं वपुषि, क्षीणमायुषि, प्रचुरं प्रलापे, संततं श्वसिते, जितं जृम्भिकाभिः, पराधीनमाधिभिः, अनुबक्तमनुबन्धिकाभिः, पार्श्वोपविष्टया चानवरतरोदनोच्छूननयनया गृहीतचामरिकयापि निःश्वसितैरेव बीजयन्त्या विविधौषधिधूसरितशरीरया मुहुर्मुहुः 'आर्यपुत्र! स्वपिषि' इति व्याहरन्त्या देव्या यशोमत्या शिरसि वक्षसि च स्पृश्यमानं पितरमद्राक्षीत्।

व्याख्या – *अङ्गभङ्गवलनोक्षिप्तभुजयुगलम्– अंगस्य शरीरांशस्य भंगेन आकुञ्चनसम्प्रसारणादि कर्मणा उत्क्षिप्तं उत्थापितं करयोः हस्तयोः युग्लं द्वन्द्वं येन तादृशम् पितरं, पर्यस्तहस्तनखमयूखैर्धारागृहमिव पर्यस्ताः चतुर्दिक्षु बारम्बारं उत्थापितो यो करः, तस्य करस्य नखानां करजानां मयूखैः किरणावलीभिः धारागृहम् विविधधारासु जलनिपातनयोग्यगृहम् इव, तापशान्तये शरीरस्य ज्वरजनिततापस्य शान्तये, रचयन्तम् निर्मापयन्तम् तात्पर्यमिदं यत् कष्टाधिक्यात् बारम्बार स राजा स्वहस्तद्वन्द्वमितस्ततः उत्थापयति स्म, तेन नखानां किरणजालस्य निक्षेपणं सर्वतो भवति स्म, तेन प्रतीयते यदयं स्वशरीरस्य रोगजनिततापशान्तये जलधारगृहस्य निर्माणं करोति, यत्र एकेन यन्त्रेण विविधधारारूपेण जलं निपतति तत् भवति धारागृहम् (आधुनिकभाषायां सॉवर*

इति, उत्प्रेक्षालंकारः,) नेदिष्टसलिलमणि कुट्टिमादर्शोदरेषु नेदिष्ठः अतिसन्निहितः समीपे स्थितः मणिनिर्मितकुट्टिमं भूतलं एव आदर्शः दर्पणः तस्य दर्पणस्योदरेषु मध्य भागेषु, निपतद्भिः पतद्भिः, प्रतिविम्बैरपि प्रतिविम्बः छाया कान्तिः तैः प्रतिविम्बैः, सन्तापातिशयमिव स्वकीयं सन्तापस्य ज्वरजनिततापस्य अतिशयं आधिक्यं इव कथयन्तम् व्याहरन्तम्, अर्थात् तत्र राज्ञो निवासगृहे मणिनिर्मितः कुट्टिमः शीतलतासम्पादनाय जलसंयोगात् किलन्नो वर्तते, तेन कुट्टिमः दर्पणस्वरूपोऽभवत्। तस्मिन् दर्पणे राज्ञः प्रतिविम्बः पतति। तत्र प्रतिविम्बब्याजेन स्वसन्तापपातिशयं कथयन्निव प्रतीयते राजा, उत्प्रेक्षालंकारः, स्पृशन्तीं स्पर्शं कुर्वन्तीं संवाहयन्तीं, प्रणयिनीमिव प्रणयं करोति या सा नायिका प्रणयिनी तामिव आलिङ्गनं कुर्वन्तीं, विश्वासभूमिं विश्वासस्य प्रत्ययस्य भूमिं स्थानभूतां विश्वायोग्यामिति, मूर्च्छामपि मूर्च्छा अचेतनता तामपि, बहु मन्यमानम् अत्यधिकरूपेण सम्मानयन्तम्, अर्थात् यथा प्रेयसी प्रियवरं आलिंगति प्रियवरस्य शरीरं संवाहयति , अथ च यथा सा प्रियस्य विश्वासयोग्या भवति तथैवेदानीं मूर्च्छा राज्ञः शरीरं स्पृशति विश्वाद्ययोग्या चास्ति, तस्याः मूर्च्छायाः अपि स राजा सम्मानं करोति, उत्प्रेक्षालंकारः, अन्तकाह्वानाक्षरैरिव अन्तको यमः तस्य आह्वानस्य यः अक्षरः वर्णः आवाहनशब्दः तैरिव, सभयभिषग्दृष्टैराविष्टम् भयेन सहितं सभयम्, भिषजः वैद्याः तेषां वैद्यानां दृष्टैः दृष्टिपातैः आविष्टः परिवृतः यो राजा तम्, अर्थात् रोगस्य तीव्रतया भीतानां वैद्यानां दृष्टिपातः यमराजस्यावाहनशब्द इव प्रतीयते ताभिः दृष्टिभिः परिवृतो वर्तते राजा , उत्प्रेक्षालंकारः, महाप्रस्थानकाले प्रस्थानं गमनं महाप्रस्थानं परलोकगमनं तद्गमनस्य काले, स्वसंतापसंतानमाप्तहृदयेषु स्वसन्तापस्य स्वकीयस्य रोगजनिततापस्य सन्तानं विस्तारं आप्तहृदयेषु चित्तेषु, सञ्चारयन्तम् प्रसारयन्तम् विस्तारयन्तम्, अरतिपरिगृहीतमीर्ष्ययेव न रतिः अरतिः स्नेहाभावः, तेन स्नेहाभावेन परिगृहीतः पूर्णरूपेण गृहीतः, इर्ष्यया द्वेषेण छायया कान्त्या विमुच्यमानम् त्यज्यमानम्, अर्थात् रोगाधिक्यं वीक्ष्य शरीरस्य कान्तिरपि ईर्ष्यावशात् तं राजानं त्यजतीव। अयं मरणं शरणं यातीति मत्वा स्नेहाभावोऽभवत् कान्त्याः। अतस्तं परित्यजतीति, उत्प्रेक्षालंकारः, उद्योगमिवोपद्रवाणाम् उपद्रवो भीतिकारिका स्थितिः, उत्पातादिः, तेषामुत्पातानाम् उद्योगः कर्मभूमिः प्रयासस्थलमिव, मन्ये राज्ञः शरीरमेव सर्वेषामुपद्रवाणामुद्योगभूमिरिवास्ति, उत्प्रेक्षालंकारः,सर्वास्त्रमोक्षमिव सर्वेषां अस्त्राणां मोक्षणंः क्षेपणम् इव ,क्षामतायाः दुर्बलतायाः, कृशतायाः, मन्ये कृशता स्वसर्वास्त्रमोक्षं कृतवती राज्ञः शरीरेऽस्मिन्निति

भावः, हस्तीकृतं स्ववशीभूतं कृतया 'अहस्तगतं हस्तगतं कृतं हस्तीकृतमिति भावः' विहस्ततया व्याकुलीभावेन, विगतहस्तस्य भावः विहस्तता अर्थात् स्ववशाभावः, तया अर्थात् शरीरावयवे निजाधिकाराभावोऽभवत् राज्ञः इति, विषयीकृतं अविषयः विषयः कृतः विषयीकृतः तम्, वैषम्येण –विषमताया भावः वैषम्यं तेन भावेन, अर्थात् यो राजा विषमताया अधिकारक्षेत्रे नासीत् स इदानीं तथाऽभवदिति, क्षेत्रीकृतं अक्षेत्रं क्षेत्रं कृतं क्षेत्रीकृतं, क्षेत्रं भूमिः 'दारः क्षेत्रमस्य त्वित्यमरः' क्षयेण क्षयनामधेयरोगेण,अर्थात् क्षयनामधेयरोगस्य क्षेत्रे स्थाने निपतितो राजा। इदानीं यावत् यो राजा क्षयस्य क्षेत्रे नासीत् स इदानीं तत्रागतवानिति भावः, गोचरीकृतं विषयीकृतः स्वनेत्रविषयीकृतः ग्लान्या दैन्यभावेन, पश्चातापेन वा, अर्थात् राजा इदानीं पश्चातापस्य नयनयोरागतवान्, दष्टं क्षतम्, दुःखासिकया दुःखावस्थानेन, अर्थात् दुःखस्य यदवस्थानं तेन दशनविषयीकृतम्, आत्मीकृतमस्वास्थ्येन न स्वास्थ्यम् अस्वास्थ्यं तेनास्वास्थ्येन स्वात्मवत् कृतम्, अर्थात् राजा अस्वास्थ्यस्याभिन्नतां प्राप्तवान्, विधेयीकृतं व्याधिना– व्याधिः रोगः'रोगो व्याधिगदामया इत्यमरः' तेन रोगेन अविधेयं विधेयं कृतं विधेयीकृतम्, अर्थात् रोगस्य लक्ष्यमिवाभवत् राजा, क्रोडीकृतं कालेन कालेन यमराजेन स्वक्रोडे निहितं राजानम्, अर्थात् राजा इदानीं यमराजस्यांके समुपविष्टोऽभवत्, लक्ष्यीकृतं दक्षिणाशया दक्षिणा आशा दिशा 'दिशस्तु ककुभःकाष्ठा आशाश्च हरितश्च ता इत्यमरः' तया दक्षिणाशया लक्ष्यीकृतं स्वविषयीकृतम्, दक्षिणाशायाः स्वामी भवति यमः, इदानींदक्षिणाशायाः लक्ष्यमभवत् राजा, अर्थात् यमस्य विषये अपतत् राजेति तात्पर्यम्, पीतमिव पीडाभिः पीड़ा दुःखं कष्टाधिक्यं ताभिः पीडाभिः पीतं गलविलादधः कृतमिति, जग्धमिव जागरेण निद्रायाः अभावः जागरः तेन जागरेण जग्धं भक्षितमिति, अर्थात् राजा सर्वदा निद्राभावे एव तिष्ठति, निगीर्णमिव वैवर्ण्येन – विवर्णताया मलिनताया भावः वैवर्ण्य तेन निगीर्ण उदरस्थं कृतं भक्षितमिति, अर्थात् विवर्णता राज्ञः शरीरे तथा दृश्यते येन प्रतीयते यत् विवर्णतया भक्षितो राजा, ग्रासीकृतमिव गात्रभङ्गेन गात्रस्य शरीरस्य भंगः भंगिमा रोगस्याधिक्यात् कष्टवशात् शरीरे या भंगिमा भवति सा, तया भंगिमया ग्रासीकृतं आहाररूपेण स्वीकृतमिव, ह्रियमाणमिव विपद्भिः, विपत् विपत्तिः 'विपत्यां विपदापदावित्यमरः 'ताभिः विपत्तिभिः चौर्यमानमिव, मन्ये विपद्भिः चौरीक्रियते राजा, वट्यमानमिव विभज्यमानमिव, वेदनाभिः वेदना दुःखं तेन दुःखेन, अर्थात् मन्ये वेदनया राजा विभाजितोऽभवत्, लुण्ठ्यमानमिव दुःखैः – दुःखैः कष्टैः बलपूर्वकं

ह्रियमाणमिव, अर्थात् राजा बलपूर्वकं दुःखेनापहृत इति भावः, आदित्सितं दैवेन ग्रहणस्येच्छा आदित्सा, तया युक्तोऽभवत् भागधेयेन, 'दैवं दिष्टं भागधेयमित्यमरः' अर्थात् मन्ये साक्षात् भाग्यं राजानं गृहीतुमिच्छति, निरूपितं नियत्या नियतिः भाग्यं 'भाग्यं तु नियतिर्विधिरित्यमरः' तया नियत्या निश्चितमिव निर्धारितमिव, अर्थात् नियत्या तदेव निर्धारितमस्ति यदिदानीं भवति, समाघ्रातमनित्यत्वेन– न नित्यः शाश्वतः अनित्यः तस्य भावः अनित्यत्वम् तेन घ्राणस्य विषयीकृतम्, अभिभूयमानमभावेन – न भावः अभावः, भावस्याभाव इति, तेन अभावेन अभिभूयमान् आक्रम्यमानम् आक्रान्तं वा, परिकलितं परासुतया – परगतः अपगताः असवः प्राणः परगताशुः तस्य भावः पराशुता 'परासुप्राप्तपंचत्वं परेतप्रेतसंस्थिताः मृतप्रमृतौ त्रिष्वेते इत्यमरः' तया मृत्युनेति भावः, परिकलितं ग्रासीकृतं ग्रस्तमिति, दत्तावकाशं क्लेशस्य क्लेशः कष्टं दुःखं , तस्य क्लेशस्य कृते दत्तः अर्पितः अवकाशः स्थानं येन आसौ दत्तावकाशः तं, निवासं वैमनस्यस्य विगतः मनसो भावः वैमनस्यं तस्य वैमनस्यस्य निवासं निवासस्य स्थानम्,, समीपे कालस्य कालो यमः, तस्य कालस्य यमस्य समीपे अन्तिके स्थितमिति, अन्तिकेऽन्त्योच्छ्वासस्य– अन्तिमोच्छ्वासः दीर्घश्वासः तस्य अन्तिके समीपे स्थितमिति, मुखे महाप्रवासस्य निवासस्थानात् दूरे निवासः प्रवासः परलोककवासः महाप्रवासः तस्य मुखे स्थितम्, द्वारि दीर्घनिद्रायाः दीर्घा लम्बायमाना निद्रा मृत्युरिति भावः, तस्याः निद्रायाः द्वारि देहल्यां स्थितमिति, जिह्वाग्रे जिह्वायाः रसनायाः अग्रे मुखे ,जीवितेशस्य जीवितस्य जीवनस्य ईशः स्वामी यमः,'जीवितेशो यमे पुंसि त्रिषु स्याज्जीवितेश्वरे' इत्यमरः तस्य रसनायां वर्तमानम् स्थितम्, विरलं वाचि वाक् वाणी, तस्यां वाचि विरलं अत्यल्पं 'विरलं तनुरित्यमरः' अर्थात् अत्यल्पं वदति स्म राजा रोगजनितकष्टाधिक्यात्, चलितं चेतसि चित्तं मनः हृदयं, तस्मिन् चलितं , अर्थात् हृदयेन शून्यमिव, विह्वलं वपुषि वपुः शरीरं तस्मिन् विह्वलं विकलं, क्षीणमायुषि आयुः जीवनावधिः तस्मिन् क्षीणं, समाप्तप्रायतां गतं, , प्रचुरं प्रलापे प्रकर्षेण लपनं भाषणं प्रलपनं, तस्मिन् प्रचुरतां गतं, सततं श्वसिते श्वसितं श्वासग्रहणं तस्मिन् सततं निरन्तरं अर्थात् निरन्तरं श्वासः प्रचलति स्म केवलं, जितं जृम्भिकाभिः मुखं व्यादाय श्वासग्रहणं जृम्भिका 'जम्हाई इति हिन्द्यां' ताभिः जितं विजितमिव, पराधीनमाधिभिः आधिः मनसो रोगः 'आधिर्मानसी व्यथेत्यमरः'ताभिः आधिभिः पराधीनं परतन्त्रमिति, अनुबद्धमनुबन्धिकाभिः, शरीरस्य संस्थाविशेषः अनुबन्धिका'शरीर के हड्डियों का जोड़' ताभिः अनुबद्धं पूर्णरूपेण

बद्धमिव, पार्श्वोपविष्टया पार्श्वदेशे समीपे उपविष्टा या दासी तया, चानवरतरोदनोच्छूननयनया अनवरतं निरन्तरं उच्छूनं रोदनेन स्फीतं श्रान्तं रक्तवर्णीयं वा नयनं यस्या: तया दास्या, गृहीतचामरिकयापि गृहीतं चामरं बालव्यजनं यया दास्या तया, अपि, नि:श्वसितैरेव दीर्घश्वासंग्रहणं निश्वसितं तै: एव, बीजयन्त्या वायुना संवाहयन्त्या अर्थात् यद्यपि चामरग्रहारिणी तत्रोपविष्टा आसीत् परन्तु सा स्वामिन: दुरवस्थां वीक्ष्य रोदिति स्म, निश्वासं च ग्रहणाति स्म तस्या: नि:श्वासेनैव राज्ञो वीजनं भवति स्मेति भाव:, विविधौषधिधूसरितशरीरया विविधाभि: औषधीभि: धूसरितं म्लानतां गतं शरीरं यस्या: तादृश्या देव्या स्वामिन्या मुहुर्मुहु: – बारम्बारं 'आर्यपुत्र! स्वपिषि' शयनं करोषि किमिति? इति व्याहरन्त्या वाचा भणन्त्या, देव्या राज्ञ: अर्धांगिन्या यशोमत्या यशोमीति नामधेयया शिरसि वक्षसि हृदये च स्पृश्यमानं पितरमद्राक्षीत् स्वपितरं जनकं अद्राक्षीत् अपश्यत् श्रीहर्ष इति ।

हिन्दी – अंगों मे पीड़ा होने के कारण जो छटपटाहट में अपनी भुजाओं को उपर की ओर फेंक रहे थे, उन उत्क्षिप्त हाथों के नखों से निकलनेवाली किरणों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो शरीर के ताप को शान्त करने के लिये धारागृह 'जल वरसाने वाला घर' का निर्माण कर रहे हों, जल से भींगे हुए फर्श पर पड़ती हुई अपनी छाया से भी मानो अपने सन्ताप को बतला रहे थे, जो विश्वस्त प्रणयिनी की तरह स्पर्श करती हुई मूर्च्छा को भी अच्छा मान रहे थे, जिसे वैद्यलोग भयभीत दृष्टि से देख रहे थे तो ऐसा लग रहा था मानो ये दृष्टियाँ यमराज के आवाहन के अक्षर हों जिससे राजा घिर गये हों, जो महाप्रस्थान (मृत्यु)काल में अपने सन्ताप के विस्तार को अपने परिजनों के हृदयों में संचारित कर रहे थे, जो रोगग्रस्त हो जाने के कारण मानो ईर्ष्यावश छाया से भी परित्यक्त हो रहे थे, अर्थात् धीरे धीरे छाया भी जिनका साथ छोड़ रही थी, जो उपद्रवों के उद्योग की तरह हो चुके थे, दुर्बलता ने मानो अपना सारा शस्त्र उनके शरीर पर छोड़ दिया था, व्याकुलता ने मानो उनको अपने हाथों से पकड़ लिया था, विषमता ने मानो जिनको अपना विषय बना लिया था, क्षय रोग ने मानो जिनको अपना स्थान बना लिया था, ग्लानि ने जिनको अपनी दृष्टि का विषय बना लिया था, कष्टाधिक्य ने मानो जिनको डस लिया था, अस्वास्थ्य ने जिनको आत्मसात् कर लिया था, व्याधि ने जिनको अपना लक्ष्य बना लिया था, यमराज ने जिनको अपनी गोद में बिठा लिया था, दक्षिणदिशा ने जिनको

अपना लक्ष्य बना लिया था, पीड़ा ने जिनको पी लिया था, जागरण (अनिद्रा) ने जिनको खा लिया था, विवर्णता ने जिनका निगरण कर लिया था, शरीर की भंगिमा(ऐंठन) ने जिनको अपना ग्रास बना लिया था, विपत्तियों ने जिनका हरण कर लिया था, वेदनाओं ने जिनको ठग लिया था, या जिनको बाँट दिया था,दुःखों ने जिनको लूट लिया था, दैव ने जिसको पकड़ लिया था, नियति ने जिसको निरूपित कर लिया था, अनित्यता ने जिसको सूँघ लिया था, अभाव ने जिनको आक्रान्त कर रखा था, मृत्यु ने जिसे अपने अधिकार में कर लिया था, क्लेश ने जिन्हें अपने निवास का स्थान लिया था, जो वैमनस्यता का निवासस्थान हो चुके थे, जो काल के समीप जा चुके थे, जो उच्छ्वास के समीप पहुँच चुके थे, जो महाप्रवास के दरवाजे पर जा चुके थे, जो दीर्घनिद्रा के दरवाजे पर थे, जो यमराज की जिह्वा के अग्रभाग पर स्थित थे, जो बोलने में विकल हो चुके थे, अर्थात् जिन्हें बोलने में कष्ट हो रहा था, जो हृदय से चंचल हा चुके थे, जो शरीर से विह्वल हो चुके थे, जो आयु से क्षीण हो चुके थे, जो प्रचुर प्रलाप कर रहे थे, जो निरन्तर दीर्घ श्वास ले रहे थे, जिसे जम्हाई ने जीत लिया था, अर्थात् जो लगातार जम्हाई ले रहे थे, जिन्हें आधि (मानसिक रोग)ने अपने अधीन कर लिया था, समीप में बैठी हुई, लगातार स्वामी की दुरवस्था को देखकर रोती हुई थकी हुई लाल आँखोंवाली, चामर धारण करनेवाली दासियों के श्वास से ही जिनको हवा की जा रही थी, विविध औषधि का प्रयोग करने के कारण जिनका शरीर धूसर हो चुका था, देवी यशोमती के द्वारा जिन्हें बार बार यह पूछा जा रहा था कि 'आर्यपुत्र सो रहे हैं? और देवी यशोमती जिनके शिर वक्षःस्थल आदि का बार बार स्पर्श कर रही थी, ऐसे अपने पिता को श्रीहर्ष ने देखा।

दृष्ट्वा च प्रथमदुःखसन्तापमथ्यमानमतिराशङ्कित इव भागधेयेभ्यः समभवत्। अन्तकपुरवर्तिनमेव च पितरममन्यत। निराकृत इव चान्तःकरणेन क्षणमासीत्। अवधूतश्च धैर्येण, क्षेत्रीकृतः क्षोभेण, रिक्तीकृतो रत्या, विषयीकृतो विषादेन, पावकमयमिव हृदयमुद्वहन् विषमविषदूषितानीव मुह्यतीन्द्रियाणि बिभ्राणः, तमसा रसातलमपि विशेषयन्, शून्यत्वेनाकाशमप्यतिशयानो नाविन्दत कर्तव्यम्। पस्पर्श च हृदयेन भियमुत्तमाङ्गेन च गाम्।

व्याख्या – दृष्ट्वा अवलोक्य च प्रथमदु:खसन्तापमध्यमानमतिराशङ्कित इव प्रथमं पूर्व दु:खेनोत्पन्नो यो तापस्तेन मथ्यमाना मतिर्यस्यासौ हर्ष: आशंकित: शंकया ग्रस्त: इव भागधेयेभ्य: भाग्येभ्य: 'दैवं दिष्टं भागधेयमित्यमर:' समभवत्। अन्तकपुरवर्तिनमेव अन्तको यम: तस्य पुरं यमपुरं तद्वर्तिनं तत्र यमपुरे स्थितं च पितरममन्यत पितरं स्वजनकं राजानं प्रभाकरवर्धनं अमन्यत ज्ञातवान्। निराकृत अपसारित: दूरीकृत: इव चान्त:करणेन अन्त:करणं हृदयं मन: तेन क्षणमासीत् क्षणं समय: आसीत् । अवधूतश्च विचलितश्च धैर्येण ,क्षेत्रीकृत: स्वविषये कृत: नियोजितो वा क्षोभेण दु:खेन रिक्तीकृतो शून्यीकृत: शून्य इवाभवत्, रत्या स्नेहेन प्रम्णा, अर्थात् स्नेहशून्योऽभवत्, विषयीकृतो स्ववशे कृत: विषादेन दु:खेन, पावकमयमिव पावको वह्नि: तन्मयं अग्निमयमिव हृदयमुद्वहन् हृदयं चेत: तदुद्वहन् धारयन्, विषमविषदूषितानीव विषमेन तीक्ष्णेन विषेण गरलेन विदूषितानि दूषणयुक्तानि कृतानि इव मुह्यन्तीन्द्रियाणि मोहं गच्छन्ति नयनकर्णनासिकादीन्द्रियाणि विभ्राण: धारयन्, तमसा अन्धकारेण रसातलमपि पातालमपि विशेषयन् अधिकं कुर्वन् शून्यत्वेनाकाशमप्यतिशयानो शून्यतया आकाश: नभ: तदपि अतियशयान: अभिभूतं कुर्वन् नाविन्दत न ज्ञातवान् कर्तव्यम् करणीयमकरणीयं वा। पस्पर्श स्पर्श कृतवान् च हृदयेन चेतसा वक्ष:स्थलेन, भियम् भीतिम् 'भीतिर्भी: साध्वसं भयमित्यमर:' उत्तमाङ्गेन उत्तमाङ्गा: शिर:, शिरसा च गाम् धरणीम्।

हिन्दी – अपने पिता को देखकर पहले उत्पन्न दु:ख के ताप से मानो उनकी बुद्धि अस्तव्यतस्त हो गयी, भाग्य पर शंका करने लगे, अपने पिता को यमराज के नगर में अवस्थित सा ही जाना,। क्षणभर के लिये तो मानो अन्त:करण ने उनका साथ छोड़ दिया। धैर्य ने उन्हें छोड़ दिया, क्षोभ ने उनको अपना विषय बना लिया, स्नेह से (राग से) मानो शून्य हो गये, विषाद ने उनको अपना विषय बना लिया, अग्नि के सदृश हृदय को धारण करते हुए तीक्ष्ण विष के कारण दूषित की तरह मूर्च्छित इन्द्रियों को धारण करते हुए अन्धकार(दु:ख से उत्पन्न) से पाताल को भी विशेषित करते हुए अर्थात् पाताल से भी अधिक अन्धकार वहन करते हुए, शून्यता से आकाश को भी अतिशयित करते हुए उन्होंने उस समय अपने कर्तव्य को भी नहीं जाना। अर्थात् उन्हें यह ज्ञात नहीं हुआ कि इस समय मुझे सर्वप्रथम क्या करना चाहिये। उन्होंने (हर्ष ने) हृदय से डर का और शिर से भूमि का एक साथ ही स्पर्श किया।

अवनिपतिस्तु दूरादेव दृष्ट्वातिदयितं तनयं तदवस्थोऽपि निर्भरस्नेहावर्जितः प्रधावमानो मनसा प्रसार्य भुजौ 'ऐह्येहि' इत्याह्वयन् शरीरार्धेन शयनादुदगात्। ससम्भ्रममुपसृतं चैनं विनयावनम्रमुन्नमय्य बलादुरसि निवेश्य, विशन्निव प्रेम्णा निशाकरमण्डलमध्यम्, मज्जन्निवामृतमये महासरसि, स्नापयन्निव महति हरिचन्दनरसप्रस्रवणे, अभिषिच्यमान इव तुषाराद्रिद्रवेण, पीडयन्नङ्गैरङ्गानि, कपोलेन कपोलमवघट्टयन् निमीलयन् पक्ष्माग्रग्रथिताजस्रास्रविस्राविणी विलोचने विस्मृतज्वरसंज्वरः, सुचिरमालिलिङ्ग। कथंकथमपि चिराद्विमुक्तमुपसृत्य कृतनमस्कारं प्रणतजननीकमुपागतमासीनं च शयनान्तिके पिबन्निव विगतनिमेषनिश्चलेन चक्षुषा व्यलोकयत्। पस्पर्श च पुनः पुनर्वेपथुमता पाणितलेन क्षयक्षामकण्ठश्च कृच्छ्रादिवादीत् - 'वत्स! कृशोऽसि' इति। भण्डिस्त्वकथयत् - देव! तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य, इति।

व्याख्या - *अवनिपतिस्तु अवनिः धरणिः अवनेः पतिः स्वामी अवनिपतिः राजा स तु, दूरादेव पार्श्वेतरात् यावत् हर्षः स्वशरीरात् दूरमासीत् तावदेव दृष्ट्वा अवलोक्य, अतिदयितं अतिप्रियं दयाधिक्यमासीत् यस्मै तं, वीक्ष्य, तनयं सुतं पुत्रं, तदवस्थोऽपि तस्यां दुर्बलावस्थायां गतोऽपि असह्यरोगेण युक्तोऽपि, निर्भरस्नेहावर्जितः निभरिण अत्यधिकेन स्नेहेन प्रेम्णा आवर्जितो युक्तः स्नेहनिमग्न इति भावः, प्रधावमानो मनसा मनसा चित्तेन अग्रे धावन्निव, शरीरेण तु राजा चलितुमसर्थ आसीत् परन्तु पुत्रममालिंगितुं मनसा एव धावनं चकारेति भावः, प्रसार्य विस्तार्य भुजौ बाहू, 'ऐह्येहि' आगच्छ आगच्छ इति आह्वयन् आकारयन् शब्दं कुर्वन्, शरीरार्धेन शरीरस्य वदनस्य अर्धभागेन अर्थात् मध्यभागादूर्ध्वदेशेन, शयनादुदगात् शयनस्थनात् उदगात् उदतिष्ठत्। शयनासनादुत्थातुसमर्थो राजा अर्धेनैव शरीरणेव पुत्रमालिंगितुमुदतिष्ठदति भावः, ससम्भ्रममुपसृतं सम्भ्रमो संवेगः 'समौ संवेगसम्भ्रमावित्यमरः' संवेगात् स्नेहादुत्पन्नोद्वेगात् उपसृतं तत्र पार्श्वदेशे समागतं, च एनं हर्ष, विनयावनम्रमुन्नमय्य विनयेन सदाचाराचारसमुदयेन अवनम्रं अवनमितं नमितशिरस्कं उत्थाय, अर्थात् यो हर्षः पितरं प्रणमितुं अवनमितशिरस्क आसीत् तमुत्थाप्य, बलादुरसि बलपूर्वकं उरसि हृदये 'उरो*

वत्सं च वक्षश्चेत्यमरः' निवेश्य संस्थाप्य, विशन्निव प्रविशन् इव प्रेम्णा स्नेहेन, निशाकरमण्डलमध्यम् निशां करोतीति निशाकरः चन्द्रः तस्य निशाकरस्य मण्डलस्य गोलाकारस्य समूहस्य वा मध्यदेशम्, अर्थात् स्नेहवशात् चन्द्रस्य मध्यदेशं प्रविशति स्म राजेति मन्ये, स्नेहवशात् पुत्रस्यालिंगनेन तथैव सौख्यं शैत्यमभवत् यथा चन्द्रमध्ये प्रवेशात् भवितुमर्हतीति, मज्जन्निवामृतमये महासरसि अमृतं पीयूषः तन्मयः अमृतनिर्मित एव यन्महासरः महातडागः तस्मिन् सरसि मज्जन् प्रविशन् इव, उत्प्रेक्षालंकारः, स्नापयन्निव स्नानं कारयन् इव, महति श्रेष्ठे विशाले हरिचन्दनरसप्रस्रवणे हरिचन्दनं श्रीखण्डचन्दनं तस्य रसस्य यत्प्रस्रवणं निर्झरः तस्मिन् अर्थात् पुत्रस्यालिंगनं तथैवाभवत् मन्ये हरिचन्द्रस्य निझरि स्नानं भवति शैत्यलाभाय, उत्प्रेद्वालंकारः, अभिषिच्यमान इव तुषाराद्रिद्रवेण – तुषारः हिमः 'तुषारस्तुहिनं हिममित्यमरः' तस्य तुषारस्य यः अद्रिः पर्वतः'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चया इत्यमरः' तस्य यो द्रवः तरलरसः तेन द्रवेण अभिषेचनयुक्त इव, उत्प्रेक्षा, पीडयन्नङ्गैरङ्गानि –अंगैः शरीरावयवैः अंगानि पुत्रस्य शरीरावयवानि पीडयन् आलिंगयन्, कपोलेन कपोलमवघट्टयन् कपोलेन कपोलं परामर्शयन्, निमीलयन् पिधत्तं कुर्वन् पक्ष्माग्रग्रथिताजस्रास्रविस्राविणी पक्ष्मणोरग्रे ग्रथितः नियोजितः अजस्रं निरन्तरं अश्रुविस्रावणं अश्रुपातनं ययोः तादृशे विलोचने नयने अर्थात् ययोः नेत्रयोः निरन्तरमश्रुधारा प्रवहति तादृशं नयने निमीलयन्, विस्मृतज्वरसंज्वरः विस्मृतः स्मरणादपि दूरीकृतः ज्वरः रोगो येन तादृशो राजा, अर्थात् पुत्रं वीक्ष्य क्षणं यावत् स्वरोगस्य विस्मरणमभवत् यस्य राज्ञः स, सुचिरमालिलिङ्ग चिरकालं यावत् आलिंगनं कृतवान् पुत्रस्येति भावः। कथंकथमपि येन केन प्रकारेणापि चिराद्विमुक्तमुपसृत्य चिरकालात् बहुभ्यः दिवसेभ्यः यो वियुक्त आसीत् दूरं आसीत् तादृशं पितरं उपसृत्य तत्स्य पार्श्वं गत्वा, कृतनमस्कारं कृतः सम्पादितः नमस्कारः प्रणामस्य प्रक्रिया येन तादृशं पुत्रं प्रणतजननीकम् प्रणतः प्रणामेन नम्रीभूतः स्वजनन्यै यः तादृशं पुत्रं, उपागतमासीनं पार्श्वमागतं उपविष्टं च शयनान्तिके शयनस्य शयनासस्य अन्तिकं समीपे, पिबन्निव पानं कुर्वन् इव, विगतनिमेषनिश्चलेन विगतो निमेषो यस्य अथात् पक्ष्मणोर्निमीलनोन्मीलनस्य गतिरवरुद्धा यस्य नेस्य तादृशेन, चक्षुषा नयनेन नयनाभ्यामिति भावः, व्यलोकयत् अवलोकयत् पुत्रम्। पस्पर्श स्पर्शनं कृतवान् च पुनः पुनः बारम्बारं , वेपथुमता वेपथुः कम्पनं 'वेपथुः कम्पः इत्यमरः' पाणितलेन पाणेः करस्य तलः शयः उपरिगतभागः तेन पाणितलेन, क्षयक्षामकण्ठश्च क्षयेण तन्नमाकरोगेण क्षामतां शुष्कतां गतः कण्ठो यस्य स राजा कृच्छ्रादिवादीत् कृच्छ्रात् कष्टात् 'स्यात् कष्टं कृच्छ्रमित्यमरः'इव अवादीत् अवोचत– 'वत्स! पुत्र!

कृशोऽसि' दुर्बलोऽसि इति। भण्डिस्त्वकथयत् - भण्डिनामधेयो जनः अवदत्, देव! स्वामिन् ! तृतीयमहः तृतीयो दिवसः अहः दिवसः, कृताहारस्यास्याद्य कृतः आहारं भोजनं येन तस्य, अर्थात् यदा भोजनं कृतवानासीदयं हर्षः तस्य तृतीयोऽयं दिवसः। अर्थात् त्रिभ्यो दिवसेभ्यो भोजनं न कृतवानयम्, इति।

हिन्दी - दूरे से ही अपने अतिप्रिय पुत्र को आता हुआ देखकर कष्ट की उस अवस्था में भी मानो मन से दौड़ते हुए अपनी दोनो बाहें फैलाकर आओ, आओ कहते हुए अपने विस्तर पर शरीर के उपर वाले आधे भागे से उठने की कोशिश करने लगे या आधे शरीर से विछावन पर उठ गये। विनय से अवनत अपने पुत्र को संवेगवशात् उठाकर बलपूर्वक अपने वक्षः पर लगाकर मानो चन्द्रमण्डल के मध्य प्रवेश करते हुए, अमृतमय महासरोवर में डूबते हुए , हरिचन्दन रस के झरने में नहाते हुए हिमाद्रि के द्रव से स्नान करते हुए अपने शरीर से पुत्र के शरीर का दृढ आलिंगन करते हुए अपने कपोल (गाल) को पुत्र के कपोल से रगड़ते हुए जिसके पक्ष्म पर निरन्तर बहती हुई अश्रु की धारा ग्रथित हो गयी हो ऐसी आँखों को धीरे धीरे मूँदते हुए क्षण भर को अपना रोग भूलकर राजा ने पुत्र का चिर काल तक आलिंगन किया। चिरकाल के बाद मुक्त होकर हर्ष ने अपनी माता को प्रणाम किया और पिता के शयनासन के नजदीकर जाकर बैठ गया। ऐसे बैठे हुए अपने पुत्र को निर्निमेष नेत्रों से पीते हुए राजा ने देखा। बार बार काँपते हुए अपने हाथों से पुत्र का स्पर्श किया। क्षयरोग के कारण सूखते हुए कण्ठ से बोले - पुत्र दुर्बल हो गये हो। भण्डि ने कहा - इनको भोजन किये हुए तीन दिन बीत गये हैं। अर्थात् इन्होंने तीन दिन से भोजन नहीं किया है।

तच्छ्रुत्वा वाष्पवेगगृह्यमानाक्षरं कथं कथमप्यायतं निःश्वस्योवाच- वत्स! जानामि त्वां पितृप्रियमतिमृदुहृदयम्। ईदृशेषु विधुरयति धीमतोऽपिप धियम्। अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी। यतो नार्हस्यात्मानं शुचे दातुम्। उद्दाममहादाहज्वरदग्धोऽपि दह्ये खल्वहम- धिकतरमनेनायुष्मदाधिना। निशितमिव शस्त्रं तक्ष्णोति मां त्वदीयस्तनिमा। सुखं च राज्यं च वंशश्च प्राणाश्च परलोकश्च त्वयि मे स्थिताः। यथा मम तथा सर्वासां प्रजानाम्। त्वद्विधानां पीडाः वंशमलंकुर्वन्ति पीडयन्ति सकलमेव भुवनतलम्। न ह्यल्पपुण्यभाजां

भवादृशाः। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः। करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्यं ते लक्षणानि। त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि। निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये। भिषगनुरोधः पाययति मामौषधम्। अपि च वत्स! सर्वप्रजापुण्यैः सकलभुवनतल -परिपालनार्थमृत्पत्स्यमानानां भवादृशां जन्मग्रहणोपायः पितरौ। प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानः, न ज्ञातिभिः। तदुत्तिष्ठ। कुरु पुनरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे च त्वय्यहमपि स्वयमुपयोक्ष्ये पथ्यम्' इत्येवमभिहितस्य चास्य धक्ष्यन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे।

व्याख्या – *तच्छ्रुत्वा तत्सर्व पूर्वकथितं वाक्यं निशम्य, वाष्पवेगगृह्यमानाक्षरं वाष्पस्य अश्रुविन्दोः वेगेन गत्या गृह्ण्यमानं बाध्यमानं वा अश्रुप्रवाहवेगात् कष्टपूर्वकनिस्सृयमानं अक्षरं शब्दं, कथंकथमप्यायतं कथंकथं येन केनापि प्रकारेण कष्टपूर्वकमिति भावः,' आयतं दीर्घ लम्बायमानं, निःश्वस्योवाच- निश्वासं गृहीत्वा अवोचत्- वत्स! पुत्र! जानामि- मम संज्ञाने अस्ति, त्वां हर्ष, पितृप्रियमतिमृदुहृदयम् पितुः जनकस्य मम प्रियम्, अतिमृदु अतिकोमलहृदयं चित्तं, अर्थात् जानाम्यहं यत् त्वं मम प्रियतरोऽसि अतिकोमलहृदयोऽसीति, ईदृशेषु आसु परिस्थितिषु, या परिस्थितिः इदानीं तव समक्षमस्ति, सर्वेषां जनानां यां स्थितिं पश्यसि वा तासु परिस्थितिषु विधुरयति विकलतां याति, धीमतोऽपि धीः बुद्धिः 'बुद्धिर्मनीषा धिषणाधीरित्यमरः' बुद्धियुक्तो धीमान् तस्यापि विदुषाभपि, धियम् बुद्धिम्। अतिदुर्धरो अतिकष्टकरः कष्टाधिक्येन धर्तुं सोढुं योग्यः, बान्धवस्नेहः बन्धूनां स्नेहः प्रेम इति, भवति सर्वप्रमाथी सर्वेषां प्रमथनकारी, अर्थात् बन्धूनां स्वजनानां स्नेहः सर्वेषां हृदयस्य प्रमथनं करोति। यतो एतदर्थं नार्हसि योग्यतां न वहसि, आत्मानं स्वकीयं हृदयं , शुचे शोके, दातुम् -पातयितुम्, अर्थात् बन्धूनां स्नेहः सामान्यतया समेषां कृते दुःखदायी भवति अतः स्वयमेव शोके पतनं तव नोचितमिति। उद्दामभहादाहज्वरदग्धोऽपि उद्दामः तीक्ष्णः यो महादाहकारीज्वरः तेन त्वरोत्पन्नतापेन दग्धोऽपि ज्वलितोऽपि, दह्ये दाहमनुभवामि इदानीं, खल्वहमधिकतरमनेनायुष्मदाधिना खलु अहम् प्रभाकरवर्धनः, अधिकतरं रोगजनितदाहादप्यधिकं अनेन एवम्प्रकारेण आयुष्मतः दीर्घायोस्तव हर्षस्य आधिना मानसिकदुःखेन, अर्थात् तव मनसि यद्दुःखं पश्यामि तेन तथा दाहमनुभवामि यथा रोगजनितदाहेनापि नानुभवामीति। निशितमिव अतितीक्ष्णं निशितं 'निशितक्ष्णुतशातानि*

तेजिते इत्यमरः' शस्त्रं, तक्ष्णोति शरीरं लघुलघु कर्तयति, मां प्रभाकरवर्धनं त्वदीयस्तनिमा त्वदीयः हर्षस्य तनिमा दुर्बलता। सुखं शारीरिकमानसिकं च सुखस्य भावः, च राज्यं शासनं, च वंशश्च कुलं च प्राणाश्च जीवनं परलोकश्च स्वर्गलोकश्च त्वयि हर्षे, मे प्रभाकरवर्धनस्य स्थिताः। अर्थात् मम जीवनं सुखं परलोकं कुलं च हर्षस्याधारेणैव वर्तते इति भावः। यथा मम यादृशी स्थितिर्मम प्रभाकरवर्धनस्यास्ति तथा तथैव सर्वासां प्रजानाम् राज्यस्थितानां प्रजानां जनानामप्यस्ति। त्वद्विधानां त्वादृशानां हर्षसदृशानां जनानां, पीडाः दुःखं, पीडयन्ति दुःखे पातयन्ति, सकलमेव सम्पूर्णमेव भुवनतलम् भुवनानां सप्तभुवनानां तलं स्थानम्। न ह्यल्पपुण्यभाजां अल्पं पुण्यं विभर्ति यः स अल्पपुण्यभाक् तादृशानां जनानां , वंशम् कुलम् अलंकुर्वन्ति शोभायुक्तं सम्पादयन्ति भवादृशाः त्वादृशाः हर्षसदृशाः पुत्रा इति भावः।अर्थात् हर्षसदृशः पुत्रः सामान्यपुण्यवतां न भवति। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः – फलं परिणामः अस्य न एकः अनेकः विविधः जन्मान्तरेण नैकेन जन्मना अपितु बहूनां जन्मनां उपार्जितस्य अर्जितस्य लब्धस्य अकलुषस्य पुण्यस्य कलुषं पापं, न कलुषं अकलुषं पुण्यमिति कर्मणः कार्यस्य, अर्थात् जन्मान्तरीय पुण्यकर्मणः फलमेव भवति हर्षसदृशपुत्रस्य लाभः। करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्यं ते लक्षणानि – ते तव हर्षस्य लक्षणानि चिह्नानि 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमित्यमरः' चतुर्णां चतुःसंख्याकानां अर्णवानां समुद्राणां आधिपत्यं अधिपो राजा तस्य भावः अधिपता तदेवाधिपत्यं करस्य तलं शयः करतलं तद्गतं तत्र स्थितं इव कथ्यन्ति व्याहरन्ति। अर्थात् तव लक्षणानि वदन्ति यत् चतुर्णां सागराणामाधिपत्यं तव हस्ते एवास्ति। त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि– तव जन्मना एव तवोत्पत्यैव कृतार्थः सफलः अस्मीति। निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये– जीवितव्यं जीवनस्य भावः तस्मिन्, न अभिलाषो वर्तते यस्य स निरभिलाषः। अर्थात् त्वज्जीवनमवलोक्येदानीं स्वजीवनस्याभिलाषो नास्ति मम। भिषगनुरोधः भिषजां वैद्यानां अनुरोधः प्रार्थना बारम्बारं कथनं, पाययति कण्ठादधः कारयति मामौषधम् माम् औषधं रोगहरणाय दीयमानपेयादिकम्। अपि च वत्स! सर्वप्रजापुण्यैः सर्वासां प्रजानां पुण्यैः सत्कर्मभिः, सकलभुवनतलपरिपालनार्थम्– सकलानां सर्वेषां भुवनानां लोकनिवासस्थानानां परिपालनार्थ सम्यक्तया परिरक्षणार्थ पोषणार्थम्, उत्पत्स्यमानानां उत्पत्तिं जनिं भजमानानां, भवादृशां त्वादृशां हर्षसदृशानां, जन्मग्रहणोपायः जन्मग्रहणस्य उपायभूतौ पितरौ माता च पिता च पितरौ, अर्थात् भवादृशानामुत्पत्तिर्भवति लोककल्याणाय, तत्तु निश्चितमेव। कस्यापि मानवस्य जन्महेतुभूतौ पितरावेव। अन्यथा तव कीर्तौ त्वं

स्वयमेव समर्थः न तत्र मम प्रयासः। प्रजाभिस्तु राज्यस्थितलोकैः, बन्धुमन्तो बन्धुयुक्ताः, राजानः नरपतयः, न ज्ञातिभिः बन्धुभिः प्रतिवेशिभिः। अर्थात् प्रजाभिरेव राजा बन्धुवान् भवति स्वसम्बन्धिभिरेव न। तदुत्तिष्ठ - अतः उत्तिष्ठ, कुरु पुनरेव सर्वाः क्रियाः सकलाः व्यावहारिकाः क्रियाः सम्पादयन्तु। कृताहारे च त्वय्यहमपि यदाहारादिग्रहणं तव भविष्यति तदनन्तरं अहमपि स्वयमुपयोक्ष्ये स्वयं विना कस्याप्यनुराधेन उपयोक्ष्ये करिष्यामीति भावः,पथ्यम् रोगावस्थोचितभोजनादिकम्।' इत्येवमभिहितस्य इति सर्व अभिहितः निगदितो येन तस्य प्रभाकरवर्धनस्य चास्य धंक्ष्यन्निव दाहयन्निव हृदयमतितरां हृदयं चित्तं अतितरां तीक्ष्णतरां शोकानलः शोकः दुःखं तदेवानलः अग्निः रूपकालंकारः, संदुधुक्षे ज्वलितो वभूवेति।

हिन्दी –इतना सुनकर अश्रुवेग के कारण बोलने में बाधा होने पर भी किसी तरह दीर्घ निश्वास लेकर राजा बोले- वत्स! मैं पिता के अतिप्रिय हृदय से कोमल तुम्हें जानता हूँ। ऐसी अवस्था में विद्वानों की बुद्धि भी विकल हो जाती है। बन्धुओं का स्नेह अति दुर्धर और सभी का प्रमथन करनेवाला होता है। इसलिये तुम अपनी आत्मा को शोक में गिराने के योग्य नहीं हो। अर्थात् तुम शोक न करो। अत्यन्त उद्दीप्त इस महादाहज्वर के ताप से भी अधिक मैं दीर्घायु तुम्हारे मानसिक ताप से दग्ध हो रहा हूँ। तुम्हारी यह दुर्बलता मुझे तीक्ष्ण शस्त्र की तरह छील रही है। तुममें ही मेरा सुख मेरा राज्य मेरा वंश मेरे प्राण एवं परलोक सभी कुछ सन्निहित है। जैसी स्थिति मेरी है वैसी ही सभी प्रजा की भी है। तुम जैसे लोगों की पीडा सभी भुवनों को पीडित करती है। तुम्हारे जैसा पुत्र अल्प पुण्यवालों के वंश को पवित्र नहीं किया करती है। अनेक जन्मान्तरों से उपार्जित अकलुष पुण्य वाले कर्म के फल से ही ऐसा हो पाता है। तुम्हारे लक्षण तो चारों सागरों के आधिपत्य को हस्तगत की तरह बता रहे हैं। तुम्हारे जन्म से ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ। अपने जीवन से अब मै निरभिलाष हो गया हूँ। अर्थात् तुम्हारे रहते हुए मुझे अपने जीवन की अब कोई चिन्ता नहीं है। वैद्यों का अनुरोध ही अब मुझे दवाईयाँ पिला रही हैं। वत्स और भी - सभी प्रजाओं के पुण्य के बल से सभी भुवनों का परिपालन करने के लिये उत्पन्न होनेवाले तुम जैसे लोगों के लिये माता पिता तो केवल जन्म देने का कारणमात्र होते हैं। राजा अपने प्रजाओं से बन्धुबान्धव वाले होते हैं अपने परिजनों से नहीं। इसलिये उठो। अपना सभी कर्त्तव्य दैनन्दिनकर्म करो। जब तुम भोजन कर लोगे तब मैं भी अपना पथ्यग ग्रहण करूँगा। इतना कहते हुए राजा के हृदय को अत्यधिक रूप से जलाते हुए उनका शोकानल जल उठा।

क्षणमात्रं च स्थित्वा पित्रा पुनराहारार्थमादिश्यमानो धवलगृहादवततार। चकार च चेतसि- 'अकाण्डे खल्वयं समुपस्थितो महाप्रलयो व्यभ्र इव वज्रपातः। सामान्योऽपि तावच्छोकः, सोच्छ्वासं मरणम्, अनुपदिष्टौषधो महाव्याधिः, अभस्मीकरणोऽग्निप्रवेशः, अनुपरतस्यैव नरकवासः, निर्ज्योतिरङ्गारवर्षमशकलीकरणं क्रकचदारणमव्रणो वज्रसूचीपातः। किमुत विशेषश्चितः। किमत्र करवाणि' इति।

व्याख्या – *क्षणमात्रं अत्यल्पकालं यावत् च स्थित्वा तूर्ष्णी स्थिरो भूत्वा, पित्रा जन्मदात्रा प्रभाकरवर्धनेन, पुनराहारार्थमादिश्यमानो पुनः आहारस्य कृते भोजनग्रहणाय आदिश्यमानो आदेशं लब्ध्वा, धवलगृहादवततार धवलो श्वेतः श्वेतभवनात् यस्मिन् गृहे राजा आसीत् तस्मात् गृहात् अवतरणं चकार, अवतरितो बभूव। चकार च चेतसि हृदये एवं चकार कृतवान् अर्थात् हृदयेन एवं विचारितवान्, – 'अकाण्डे असमये खल्वयं समुपस्थितो मम समक्षमागतः, महाप्रलयो महान् चासौ प्रलयः, विश्वविनाशात्मकः कालः, व्यभ्र अभ्रं मेघः 'अभ्रं मेघो वाहिवाहः इत्यमरः' विगतं अभ्रं यस्मात् गगनात् स व्यभ्रः तस्मात् वारिदरहितगगनात् इव वज्रपातः वज्रस्य विद्युतसमूहस्य पतनम्। उत्प्रेक्षालंकारः। सामान्योऽपि साधारणाः अपि तावच्छोकः शोकः दुःखं , सोच्छ्वासं उच्छ्वासेन दीर्घनिःश्वासेन युक्तं मरणम् मृत्युमुखे गमनमिव, अनुपदिष्टौषधो न उपदिष्टा औषधिः यस्यै तादृशी महाव्याधिः महती व्याधिः शारीरिकरोगः , अर्थात् तादृशोऽयं रोगः यस्यौषधिर्नास्तीति भावः, अभस्मीकरणोऽग्निप्रवेशः न भस्मीक्रियते यस्यां क्रियायां सा क्रिया अभ्स्मीकरणम्, तादृशः अग्नौ प्रवेशः, अर्थात् सामान्यतया अग्निप्रवेशेन भस्मीकरणं भवति परन्तु अकाण्डाप्तशोकः तादृशः अग्निप्रवेशः यत्र शरीरस्य भस्मीकरणं न भवति, विरोधाभाससम्बलितोत्प्रेक्षालंकारः, अनुपरतस्यैव उपरतः मृत्युं गतः, न उपरतः अनुपरतः अर्थात् जीवितः, तस्य जीवितस्यैव नरकवासः यमालयवासः, मरणानन्तरमेव स्वर्गवासो नरकवासो भवति परन्तु अकाण्डदुःखागमनं जीवितावस्थायामेव नरकवास इव भवति, उत्प्रेक्षालंकारः, निर्ज्योतिरङ्गारवर्षम् ज्योतिं विना निर्ज्योतिः, तादृशम् अंगारस्य वह्निकणस्य वर्षणम्। अंगारवर्षणेन सर्वदा ज्योतिर्जायते परन्तु अकाण्डदुःखापातः तादृशमंगारवर्षणं भवति यस्मिन् वर्षणे ज्योतिर्न भवति, अशकलीकरणं शकलं खण्डः, शकलीकरणं शण्डशः करणं न शकलीकरणमशकलीकरणम्, क्रकचदारणम् क्रकचः काष्ठभेदकास्त्रं तस्यास्त्रस्य दारणेन विदारणम् , अव्रणो वज्रसूचीपातः व्रणरहितः वज्रशलाकापातः, अर्थात् वज्रशलाकापातेन*

सर्वदा व्रणो भवति परन्तु अकाण्ड दुःखेन तथा न भवति। विरोधाभाससंवलितोत्प्रेक्षालंकारः, किमुत विशेषाश्रितः विशेषस्य विशिष्टस्य आश्रये स्थितः किं कथनीयमिति, किमत्र करवाणि' इदानीं किं करणीयं मयेति न विचिन्तयितुं शक्यते मया, इति। किं कर्त्तव्यविमूढोऽस्मीति भावः।

हिन्दी – *क्षण भर वहाँ रुक कर पिता के द्वारा पुनः भोजन के लिये आदेश दिये जाने पर हर्ष धवलगृह से नीचे उतरे। उस समय उनके हृदय में ऐसा भाव आया – असमय में ही यह महाप्रलय समुपस्थित हो गया है, विना मेघ के ही यह वज्रपात है। सामान्य शोक भी उच्छ्वास के साथ मरण है, ऐसी महाव्याधि है जिसके लिये कोई औषधि निर्धारित नहीं है। ऐसा अगिनप्रवेश है जिसमें शरीर भस्म नहीं होता है। जीवितावस्था में ही नरकवास है। ऐसा अंगारवर्षण है जिसमें कोई ज्योति नहीं होती है। आरे से लगा ऐसा चीरा है जिससे शरीर का खण्ड नहीं होता है। ऐसा वज्रशलाका पतन है जिसमें कोई घाव नहीं होता है। (पर कष्ट वैसा ही होता है।) विशेष के आश्रित होने पर क्या कहा जा सकता है। इस समय मैं क्या करुँ यह समझ नहीं आ रहा हैं ।*

राजपुरुषेणाधिष्ठितश्च गत्वा स्वधाम धूममयानिव कृताश्रुपातान्, अग्निमयानिव जनितहृदयदाहान्, विषमयानिव दत्तमूर्च्छावेगान्, महापातकमयानिवोत्पादितघृणान्, क्षारमयानिवानीतवेदनान्, कतिचित्कवलानगृह्णात्। आचामांश्च चामरग्राहिणमादिदेश –'विज्ञायागच्छ कथमास्ते तातः' इति। गत्वा च प्रतिनिवृत्य च देव! तथैव' इति विज्ञापितस्तेनागृहीतताम्बूल एवोत्ताम्यता मनसास्ता- भिलाषिणि सवितरि सर्वानाहूयोपह्वरे वैद्यान्, 'किमस्मिन्नेवंविधे विधेयमधुना?' इति विषण्णहृदयः पप्रच्छ। ते तु व्यज्ञापयन्- देव! धैर्यमवलम्बस्व। कतिपयैरेव वासरैः पुनः स्वां प्रकृतिमापन्नं स्वस्थं श्रोष्यसि पितरम्' इति।

व्याख्या – *राजपुरुषेणाधिष्ठितश्च राजकीयः राज्ञः कर्मणि व्यापुतः राज्ञः कुले समुत्पन्नो वा पुरुषः राजपुरुषः, तेन अधिष्ठितः आवृतः श्री हर्षः, गत्वा स्वधाम स्वकीयं धाम भवनं, स्वनिवासस्थानं, धूममयानिव धूमः अग्न्युच्छिष्टः अग्नेरुत्पन्नो*

भवति धूमः, कृताश्रुपातान् कृतः अश्रुपातः येन स कृताश्रुपातः तान् 'कवलानितिपदेनान्वयः, अर्थात् यद्भोजनं गृहीतवान् हर्षः तान् कवलाः धूममयाः कासन्। यथा धूमेनाश्रुपातो भवति तथैव भोजनकाले पितृदुःखवशात् हर्षस्याश्रुपातो भवति स्म। तत्र भोजनमेवाश्रुपातकारणमिति मन्ये, उत्प्रेक्षालंकारः। अग्निमयानिव अग्निः वह्निः तद्वत् तत्स्वरूपं वा भोजनं, जनितहृदयदाहान् जनितः उत्पादितः हृदयस्य चित्तस्य दाहो येन तादृशं कवलं भोजनं, तान्, यथा अग्निः तापमुत्पादयति तथैवाधुना भोजनग्रहणं तापमुत्पदितवानिति भावः, भोजनमेवात्र तापोत्पादनकारणमिति मन्ये, तेनोत्प्रेक्षालंकारः। विषमयानिव विषेण युक्तं विषमयं तानिव, दत्तमूर्च्छावेगान् दत्तः प्रतिपादितः मूर्च्छायाः गतचेतनायाः वेगः जवः गतिः येन भोजनेन, अर्थात् तद्भोजनकवलं मूर्च्छामुत्पादयति स्म विषवदेवेति। अतः भोजनं विषयममासीदिति मन्ये। महापातकमयानिवोत्पादितघृणान् महान् चासौ पातकम् महापातकम् पापम् कुत्सितं कर्म तद्वत् तत्सवरूपं इव उत्पादितान् घृणान् जुगुप्सान्, जुगुप्सोत्पादनत्वात् भोजनमेव महापातकमिति मन्ये। यथा महापातकं सज्जनानां कृते घृणोत्पादकं भवति तथैवाधुना हर्षस्य कृते भोजनग्रहणमासीदिति मन्ये। एतानि भवन्ति महापातकानीति ध्येयम् -

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गश्च पञ्चमः।।

क्षारमयानिवानीतवेदनान्-क्षारं काचः 'क्षारः काचः इत्यमरः' तद्युक्तं तद्वत् वा आनीतो वेदनो येन तद्वत् भोजनमिदम्। यथा काचस्य मात्रा यदि शरीरे विशति तदा वेदनोत्पादनं भवति तथैवाधुना हर्षस्य कृते भोजनं वेदनोत्पादकमभवदिति। अतः भोजनं तत् काचग्रहणवदेवाभवदिति मन्ये। कतिचित्कवलानगृह्णात् कतिचित् द्वित्रानेव कवलान् भोजनग्रासान् 'ग्रासस्तु कवलः पुमानित्यमरः' आचामांश्च आचमनं कुर्वन् भोजनान्ते भोजनसमाप्तिसूचकं जलग्रहणम्, चामरग्राहिणमादिदेश चामरं बालव्यजनं गृह्णाति यः स चामरग्राहिण् तं सेवकं आदिदेश - आदिष्टवान् -'विज्ञायागच्छ विज्ञाय ज्ञात्वा आगच्छ पुनः मत्सविधमायाहि, कथमास्ते कथं केन प्रकारेण कस्यामवस्थायां वा आस्ते वर्तते,तातः मम पिता इति। गत्वा च प्रतिनिवृत्य पुनस्तत्रागत्य स सेवकः, उवाच देव! स्वामिन् राजन् ' राजा भट्टारको देवः इत्यमरः' तथैव यथा पूर्वमासीत् तस्यामवस्थायामेवेदानीमपीति भावः, इति विज्ञापितस्तेन तेन सेवकेन विज्ञापितः निवेदितः सन्, अगृहीतताम्बूल न गृहीतं ताम्बूलं येनासावगृहीतताम्बूलः हर्षः, भोजनान्ते ताम्बूलग्रहणस्य व्यवहारः दृश्यते परन्तु पितृकष्टाधिक्यात् शोकसन्तप्तपुत्रः ताम्बूलं न

गृहीतवानिति भावः, एवोत्ताम्यता ताम्यत्वं गृहजता कष्टाधिक्यवशात् उद्विग्नतावशात्, मनसा चित्तेन अस्ताभिलाषिणि अस्ताचलगमनस्याभिलाषेण युक्तो यः सविता सूर्यः तस्मिन् सवितरि सूर्ये, अर्थात् सूर्यो यदा अस्ताचलगमनं वाञ्छति स्म तदा, सायंकाले इति भावः, सर्वानाहूयोपह्वरे सर्वान् आहूय् आकार्य उपह्वरे रहसि एकान्ते 'रहोऽन्तिकमुपह्वरे इत्यमरः, वैद्यान् भिषजान् 'किमस्मिन्नेवंविधे अस्मिन् सम्प्राप्ते एवं विधे काले, आकण्डापतितदुःखस्य समये विधेयमधुना कर्त्तव्यम् करणीयम्? अस्यां परिस्थितावधुना किं करणीयमिति' इति विषण्णहृदयः विषण्णं विकलं हृदयं यस्य स हर्षः, पप्रच्छ पृष्टवान्। ते समुपस्थिताः जनाः तु व्यज्ञापयन् स्व स्वभावान् प्रकटितवन्तः इति – देव! राजन्! धैर्यमवलम्बस्व धीरतायाः भावः धैर्यम् तत् गृहाण। कतिपयैरेव द्वित्रैः चतुष्पंचषैः वा वासरैः दिवसैः 'क्लीबे दिवसवासरावित्यमरः' पुनः स्वां प्रकृतिमापन्नं पूर्ववदेव स्वभावमागतं 'स्वस्थं नीरोगं श्रोष्यसि पितरम्' तातम् इति। अर्थात् यथा पूर्व स स्वस्थ असीत् तथैव कतिचनदिवसानन्तरं भविष्यतीति भावः। इति स्वयं भवान् ज्ञास्यसि।

हिन्दी – राजपुरुषों से घिरे हर्ष ने अपने भवन में जाकर दो चार कौर (निवाला) भोजन किया। वह भोजन उस समय मानो धूममय थे जिससे उसकी आँखों से आँसू बहने लगे, मानो अग्निमय थे जिससे हृदय का दाह उत्पन्न हो रहा था, मानो विषमय थे जिससे मूर्च्छा का आवेग आ रहा था, मानो महापातक की तरह थे जिससे घृणा उत्पन्न हो रहा था, मानो क्षारमय थे जिससे अत्यधिक वेदना उत्पन्न हो रही थी। (यह सभी पिता के दारुण दुःख को याद कर हो रहा था। सर्वत्र उत्प्रेक्षालंकार है।) आचमन करने करते हुए चामर धारी को आदेश दिया कि जाकर देखकर आओ के पिताजी की दशा कैसी है? वह चामरधारी बाहर जाकर पुनः वापस आकर बोला – देव! पहले जैसी ही दशा है। ऐसा कहने पर विना ताम्बूल ग्रहण किये ही तमतमाये मन से अस्ताचल की ओर जाने को उन्मुख सूर्य के समय में (सायंकाल में) एकान्त में सभी वैद्यों को बुलाकर विषण्ण हृदय से पूछा कि इस समय ऐसी परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिये? उनलोगों ने (वैद्यों ने) कहा – देव! धैर्य धारण करें। कुछ दिनों में ही अपनी पुरानी अवस्था को प्राप्त अपने पिता का समाचार आप सुनेंगे। अर्थात् कुछ दिनों में आपके पिता पुनः स्वस्थ हो जायेंगे।

तेषां तु भिषजां मध्ये पौनर्वसवो युवाऽष्टादशवर्षदेशीय -स्तस्मिन्नेव राजकुले कुलक्रमागतो गतः परम्पारमष्टाङ्गस्यायुर्वेदस्य

भूभुजा सुतनिर्विशेषं लालितः प्रकृत्यैवातिपटीयस्या प्रज्ञया यथावद्विज्ञाता व्याधिस्वरूपाणां रसायनो नाम वैद्यकुमारकः सास्रस्तूष्णीमधोमुखोऽभूत्। पृष्टश्च राजसूनुना- सखे रसायन! कथय तथ्यं यद्यसाध्विव पश्यसि'इति। सोऽब्रबीत् - देव! श्वः प्रभाते यथावस्थितमावेदयितास्मि' इति।

व्याख्या - *तेषां तत्रोपस्थितानां, ये केचन हर्ष परिवृत्यस्थिता आसन् तेषां, तु भिषजां वैद्यानां 'भिषग्वैद्यौ चिकित्सके इत्यमरः' मध्ये पौनर्वसवो पुनर्वसु नक्षत्रे भवः उत्पन्नः, युवा तरुणः अष्टादशवर्षदेशीयस्तस्मिन्नेव अष्टादशवर्षाणि एव आयुरासीत् तदा यस्य तादृशो युवा, राजकुले राज्ञः कुलं राजकुलं तस्मिन् कुले वंशे, कुलक्रमागतो कुलस्य वंशस्य क्रमादेव गतः प्राप्तः, अर्थादस्य वंशे सर्वे चिकित्सका एवासन्। पिता अपि वैद्यस्तर्हि तद्‌गुणसुंयोगात् पुत्रोऽपि वैद्यः इति परम्परया वैद्य आसीत् सः, परम्पारमष्टाङ्गस्यायुर्वेदस्य परमं श्रेष्ठं पारंगतं पूर्णरूपेणाधीतशास्त्रं अष्टाङ्गस्य - अष्टौ अङ्गानि सन्ति यस्य तस्य, आयुर्वेदस्य आयुषो वेदः आयुर्वेदः चिकित्साशास्त्रमिति, अर्थात् यः चिकित्साशास्त्रस्य पूर्णपण्डित आसीत्, आयुर्वेदशास्त्रस्य अष्टाङ्गानि कथ्यन्ते यथा -*

कायबालग्रहोद्‌र्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावंगानि तस्याहुः चिकित्सा तेषु संश्रिता।।

भूभुजा भू पृथ्वी भुवं भुनक्तीति भूभुक् राजा तेन राज्ञा, सुतनिर्विशेषं सुतः पुत्रः तद्वत्, लालितः स्नेहसम्पन्नः कृतः स्नेहपूर्वकं पालित इति, प्रकृत्यैवातिपटीयस्या प्रकृतिः स्वभावः तया प्रकृत्या एव अतिपटीयस्य अतिकुशलया, प्रज्ञया बुद्‌ध्या 'बुद्धिर्मनीषा धिषणाधीः प्रज्ञा शेमुषीमतिरित्यमरः' यथावद्विज्ञाता यथाशास्त्रं विज्ञाता विशिष्टो ज्ञाता, अर्थात् शास्त्रस्य तत्त्वं यः सम्यक्तया शास्त्रानुकूलं जानाति स्म, व्याधिस्वरूपाणां व्याधिः रोगः तस्य रोगस्य यत्स्वरूपं ये प्रकाराः तेषां समेषां प्रकाराणां ज्ञातेति भावः, रसायनो नाम रसायन् इति नाम आसीत् यस्य सः, वैद्यकुमारकः वैद्यस्य कुमारकः पुत्रः वा कुमारको वैद्यः युवावस्थायामेव प्रसिद्धो वैद्यः, सास्रस्तूष्णीमधोमुखोऽभूत - अश्रुणा युक्तः सास्रः, तूर्ष्णी वचनविहीनो मूकः सन्, अधस्तात् मुखं कृत्वा अतिष्ठत्। पृष्टश्च राजसूनुना राज्ञः सूनुः पुत्रः राजसूनुः तेन हर्षेण, सखे मित्र! रसायन! कथय व्याहर, तथ्यं वास्तविकं तत्त्वं सत्यं 'सत्यं तथ्यममृतं सम्यगित्यमरः'

यद्यसाध्विव यदि चेत् साधुः सुन्दरं सम्यक्, न साधुः असाधुः तद्वत् पश्यसि' इति। सोऽब्रबीत् – देव! स वैद्यकुमारकः अवदत् , श्वः प्रभाते प्रातःकाले यथावस्थितमावेदयितास्मि' तत्त्वतः यथा अवस्था वर्तते तत् निवेदयिष्यामीति, इति। अर्थात् तव पितुः दशायाः यत् वास्तविकं तत्त्वमस्ति तत् प्रातःकाले निवेदयिष्यामीति।

हिन्दी – उन वैद्यों के बीच में स्थित पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न अठारह वर्ष का युवा वैद्यकुमारक जिसका नाम रसायन था, जो कुलक्रम से ही वैद्य था,जो अष्टाङ्ग आयुर्वेद का परम ज्ञाता था, राजा के द्वारा जो अपने पुत्र की तरह पाला गया था, स्वाभाविक रूप से ही जो अपनी चतुर(तीक्ष्ण) बुद्धि से रोगों के स्वरूपों को पूर्णतः जाननेवाला था, आँसू बहाते हुए चुपचाप मुख नीचे करके स्थिर हो गया। उसे राजपुत्र श्रीहर्ष ने पूछा – मित्र रसायन्! यदि कुछ अकल्याण जैसा देख रहे तो बताओ। वह बोला देव! कल प्रातः काल में मैं आपको आपके पिता की वास्तविक स्थिति बतानेवाला हूँ।

अत्रैव चान्तरे भवनकमलिनीपालः कोकमाश्वासयन्नपरवक्त्रमुच्चैरपठत् –

विहग! कुरु दृढं मनः स्वयं त्यज शुचमास्स्व विवेकवर्त्मनि।
सह कमलसरोजिनीश्रिया श्रयति सुमेरुशिरो विरोचनः।।4।।

तच्चाकर्ण्य वाङ्निमित्तज्ञः पितरि सुतरां जीविताशां शिथिलीचकार। गतेषु च भिषक्षु क्षतधृतिः क्षपामुखे क्षितिपालसमीपमेव पुनरारुरोह। तत्र च – 'दाहो महान्। आहर हारान्हरिणि! मणिदर्पणान्मे देहि देहि वैदेहि! हिमलवैर्लिम्प ललाटं लीलावति! घनसारक्षोदधूलिर्निधेहि धवलाक्षि! निक्षिप चक्षुषि चन्द्रकान्तं कान्तिमति! कपोले कलय कुवलयं कलावति! चन्दनचर्चा रचय चारुमति! पाटय पटमारुतं पाटलिके! मन्दय दाहमिन्दुमति! अरविन्दैर्जनयजलार्द्रैर्मुदं मदिरावति! समुपनय मृणालानि मालति! तरलय तालवृन्तमावन्तिके! मूर्धानं धावमानं बधान बन्धुमति! कन्धरां धारय धारणिके! उरसि सशीकरं करं कुरु कुरङ्गवति! संवाहय बाहू

बलाहिके! पीडय पादौ पद्मावति! गृहाण गाढमङ्गमनङ्गसेने! का वेला वर्तते विलासवति! नैति निद्रा, कथाः कथय कुमुद्वति! इत्येवंप्रायान्पितुरालापाननवरतमाकर्णयन्दूयमानहृदयो दुःखदीर्घां जाग्रदेव निशामनैषीत्।

व्याख्या – अत्रैव इदानीमेव यदा राजा अन्यैस्सह वार्ता करोति स्म तदैवेति भावः, चान्तरे वार्ताया मध्ये एव,भवनकमलिनीपालः भवने राजभवने राज्ञो निवासे या सरसी तस्यां यः कमलिनीनां पुष्पाणां रक्षकः कमलिनीं पालयतीति कमलिनीपालः, सः, कोकमाश्वासयन्नपरवक्त्रमुच्चैरपठत् – कोकं चक्रवाकपक्षिणं 'कोकश्चक्रचक्रवाकावित्यमरः' आश्वासयन् समाश्वासयन् शान्त्वयन् अपरवक्त्रच्छन्दसि निबद्धं श्लोकमेकं उच्चैः तारस्वरेण अपठत्–

विहग! कुरु दृढं मनः स्वयं त्यज शुचमास्स्व विवेकवर्त्मनि।
सह कमलसरोजिनीश्रिया श्रयति सुमेरुशिरो विरोचनः।।4।।

अयि विहग पक्षिण! 'खगे विहङ्गविहगविहङ्गमविहायसः इत्यमरः' मनः स्वचेतः दृढु सुस्थिरं कुरु, शुचं शोकं त्यज जहि, शोकात् बहिरागच्छेति भावः, विवेकस्य कर्त्तव्याकर्त्तव्यबोधो विवेकः तस्य यत् वर्त्म मार्गः 'वर्त्म नेत्रच्छदेऽध्वनीत्यमीः' तस्मिन् आस्व तिष्ठ, अर्थात् शोकं विहाय धैर्यमवलम्बस्व, कमलस्य सरसिजस्य सरोजिन्याः कमलिन्याः च या श्रीः शोभा तया शोभया सह विरोचनः सूर्यः 'चन्द्राग्न्यर्का विरोचना इत्यमरः' सुमेरुनामधेयस्य पर्वताधिपस्य शिरः मस्तकं श्रयति आश्रयते। अर्थात् अयि चक्रवाक! चन्द्रस्यागमने वियोगमाकलस्य शोके निपत्य यत् त्वमिदानीं विक्लवंत्वं यासि तत् परिहाय शीघ्रमेव धैर्यमवलम्बस्व। यतोहि सूर्यः कमलस्य सरोजिन्याश्च श्रिया सह सुमेरोः शिखरमाश्रयितुमायाति। (एतेन सूच्यते यत् प्रभाकरवर्धनस्य मृत्युविषये शोको न विधेयः यतोहि तस्य मरणं ध्रुवमेवास्तीति। चक्रवाकस्य सम्बोधनेन हर्षस्यावबोधनेनान्योक्तिरलंकारः।

तच्चाकर्ण्य तत् पूर्वोक्तं श्लोकवाक्यं निशम्य, वाङ्निमित्तज्ञः वाचः कारणं लक्षणं वा निमित्तं 'निमित्तं हेतुलक्ष्मणोरित्यमरः' यः जानाति सः हर्षः, पितरि पितुः प्रभाकरवर्धनस्य विषये, सुतरां निश्चितरूपेण जीविताशां जीवितस्य जीवनस्य आशा अभिलाषः जीविताशा तां शिथिलीचकार आशाबन्धनं तत्याजेति भावः, अर्थात् पितुर्जीवनं निश्चितरूपेण नावशिष्टमिति ज्ञातवान् हर्षः। गतेषु स्थानात् तस्मात् अन्यत्र प्रयातेषु

च भिषक्षु वैद्येषु , क्षतधृतिः क्षता कृत्ता भिन्नतां गता वा धृतिः धैर्यः यस्य स हर्षः, क्षपामुखे क्षपा रात्रिः 'निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपेत्यमरः' तस्याः मुखे आरम्भे सायंकाले हि क्षितिपालसमीपमेव क्षितिं पृथ्वीं पालयतीति क्षितिपालः राजा प्रभाकरवर्धनः, तस्य समीपं अन्तिके एव, पुनरारुरोह पुनः गतवान् , यस्मिन् भवने प्रभाकरवर्धन आसीत् तद्भवनमेव पुनः गतवान् यत्र पुर्व पितुर्दर्शनाय गतवानासीत्। तत्र च – यत्र पिता शयनासने आसीत् तत्र 'दाहोमहान् रोगजनितः दाहः तापः महान् अत्यधिको वर्तते, अतः, आहर हारान्हरिणि! अयि हरिणि! हारान् कमलादीनां ग्रथितमाल्यानि शीघ्रमानय, माल्यादीनां प्रयोजनं शारीरिकतापशमनम्। मणिदर्पणान्मे देहि देहि वैदेहि! वैदेहि नामधारिणि धात्रि! मणिनिर्मितान् दर्पणान् आदर्शान् मे मह्यं देहि शीघ्रं समर्पय, झटिति कार्यसम्पादनव्यग्रतायां द्वित्वम्। हिमलवैर्लिम्प ललाटं लीलावति! अयि लीलावति! हिमस्य तुषारस्य 'तुषारस्तुहिनं हिममित्यमरः' लवैः लघ्वंशैः ललाटं भालतलं लिम्प, भालतले तुषारेण लेपनं कुरु इति भावः, घनसारक्षोदधूलिर्निधेहि धवलाक्षि! धवलं नयनं यस्याः सा धवलाक्षी, घनसारः कर्पूरः 'घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताभ्रो हिमबालुकेत्यमरः' कर्पूरचूर्ण भवतु वा हिमस्य चूर्ण भवतु, येन शीतलतासम्पादनं स्यात्, तस्य कर्पूरस्य क्षोदेन चूर्णेन या धूलिः रजः तत् निधेहि शरीरे रक्ष स्थापय, निक्षिप अवस्थापय, चक्षुषि नयने, चन्द्रकान्तं एतदाख्यमणिविशेषं कान्तिमति! अर्थादयि कान्तिमति! शीघ्रमेव चन्द्रकान्तमणिद्रवं नयने निपातय, येन शैत्यं स्यात्, कपोले गण्डे 'गण्डौ कपोलावित्यमरः' कलय निधेहि, कुवलयं नीकमलं कलावति! अर्थादयि कलावति! राज्ञः कपोलयोः नीलकमलं स्थापय, चन्दनचर्चा रचय चारुमति! अयि चारुमति! चन्दनस्य चर्चा लेपनं रचय कुरुष्व, शरीरे चन्दनलेपनं कुरु इति भावः, पाटय सञ्चालय, पटमारुतं पटखण्डादुत्पादितं पवनं पाटलिके! अर्थादयि पाटलिके! वस्त्रखण्डमेव संचाल्य व्यजनस्य कार्य सम्पादय। मन्दय दाहमिन्दुमति! अयि इन्दुमति! रोगजनिततापं मन्दय, अवरोधय। अरविन्दैर्जनयजलार्द्रैर्मुदं मदिरावति! अयि मदिरावति! जलेन आर्द्रीकृतैः अरविन्दैः कमलैः 'पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलमित्यमरः' मुदं सौख्यं जनय उत्पादय। अर्थात् जलक्लिन्नकमलेन राज्ञः शैत्यमुत्पादय। समुपनय आहर, मृणालानि कमलानि कमलखण्डानि वा 'मृणालं विसमब्जाददिकदम्बे खण्डमस्त्रियामित्यमरः' मालति! , तरलय तालवृन्तमावन्तिके! अवन्तिदेशोद्भवे दासि! तालवृन्तं बालव्यजनं 'व्यजनं तालवृन्तकमित्यमरः' तरलय चालय, मूर्धानं शिरः, धावमानं इतस्ततः प्रचलन्तं

वैक्लव्यात् बधान बन्धनेन सुस्थिरं कुरु बन्धुमति! कन्धरां बाहुमूलं धारय गृहाण, धारणिके! उरसि वक्षसि 'उरो वत्सं च वक्षश्चत्यमरः' सशीकरं जलकणेन सहितं 'शीकरोऽम्बुणाः स्मृता इति' करं हस्तं कुरु कुरङ्गवति! संवाहय सम्पीडय बाहू भुजयुगलं बलाहिके! पीडय संवाहय पादौ चरणौ पद्मावति! गृहाण गाढमङ्गमनङ्गसेने! गाढं दृढं गृहाण, अङ्गं शरीरं अनङ्गसेने अनङ्गस्य कामदेवस्य सेना इव सुन्दरीदासि! का वेला कः समयः वर्तते विलासवति! नैति निद्रा इदानीं निद्रा नायाति, कथाः कथय कुमुद्वति! निद्राया आनयनाय कथाः कथय, इत्येवंप्रायान्पितुरालापाननवरतमाकर्ण्यन्दूयमानहृदयो एवम्प्रकारकवार्ता पितुः आलापान् कथनान् अनवरत निरन्तरं आकर्ण्य श्रुत्वा दूयमानं विकलतां भजमानं हृदयं यस्य तादृशो हर्षः, दुःखदीर्घा दुःखेन कष्टेन दीर्घतां गतां, जाग्रदेव जाग्रदवस्थायामेव निशामनैषीत् निशां रात्रिं नीतवान् यापितवान्। दुःखकाले प्रायः समयस्य दैर्घ्यं प्रतीयते। अतः सा रात्रिरपि हर्षस्य कृते दीर्घतरा जाता। तस्यां रात्रौ हर्षस्य निद्राऽपि नाभवत् पितुर्विषये चिन्तनाधिक्यात्।

हिन्दी – इसी बीच राजभवन के कमलिनीपाल (तालाब की रक्षा करनेवाला) ने चक्रवाक को आश्वासित करते हुए यह अपरवक्त्र छन्द पढ़ा – अरे पक्षि! अपने शोक को छोड़ो, मन को दृढ करो और विवेक के रास्ते पर स्थिर रहो, (धैर्य धारण करो) कमल और सरोजिनी की शोभा के साथ भगवान सूर्य सुमेरु के शिखर पर आरूढ़ हो रहे हैं।

इस श्लोक को सुनकर वाणी के निमित्त को जाननेवाले हर्ष ने अपने पिता के जीवन की आशा को शिथिल कर दिया। अर्थात् जीवन के विषय से निराश हो गये। वैद्यों के उस स्थान से चले जाने के बाद धैर्य से रहित हर्ष सायंकाल में पुनः अपने पिता के निवास वाले भवन पर चढे। अर्थात् जिस भवन में पिता को पहले देखा था उस भवन में फिर से पहुँचे। वहाँ उसने देखा कि पिता इस प्रकार प्रलाप कर रहे थे – अत्यधिक दाह (ज्वर के कारण ताप) हो रहा है। अयि हरिणि! हार लाओ, अयि वैदेहि! मणिदर्पण मुझे दो, अयि लीलावति! हिमकण से ललाट पर लेप करो, अयि धवलाक्षि! घनसार के चूर्ण की धूलि मेरे शरीर पर रखो। अयि कान्तिमति! आँखों में चन्द्रकान्त का द्रव डालो, अयि कलावति! कपोल स्थल पर कुवलय रखो, अयि चारुमति! चन्दन का लेप करो, अयि पाटलिके! वस्त्र खण्ड से हवा करो, अयि इन्दुमति! मेरे दाह को कम करो, अयि मदिरावति! जल से आर्द्र कमल से सुख

पहुँचाओ, अयि मालति! मृणाल ले आओ, अयि आवन्तिके! तालवृन्त चलाओ, अयि बन्धुमति! हिलते शिर को बाँधो, अयि धारणिके! मेरी कन्धरा को पकड़ो, अयि कुरङ्गवति! मेरे हृदय पर जलकण से भींगा हाथ रखो, अयि बलाहिके! मेरी भुजाओं को सहलाओ, अयि पद्मावति! मेरे पैरों को दबाओ, अयि अनङ्गसेने! मेरे अंगों को दृढ़ता से जकड़ो, अयि विलासवति! देखो क्या समय हो रहा है? नींद नहीं आ रही है, अयि कुमुद्वति! कथा सुनाओ। इस प्रकार प्रलाप करते हुए अपने पिता के लगातार प्रलाप को सुनकर विकल हृदयवाले हर्ष ने दुःखपूर्वक उस लम्बी रात्रि को विना सोये ही बिता दिया।

उषसि चावतीर्य राजद्वारदेशोपसर्पिणा परिवर्द्धकेनोपस्थापितेऽपि तुरङ्गे चरणाभ्यामेवाजगाम स्वमन्दिरम्। तत्र च त्वरमाणो भ्रातुरागमनार्थमुपर्युपरि क्षिप्रपातिनो दीर्घाध्वगानतिजविन श्चोष्ट्रपालान्प्राहिणोत्। प्रक्षालितवदनश्च परिजनेनोपनीतमपि प्रतिकर्म नाग्रहीत्। अग्रतः स्थितानां राजपुत्रयूनां विमनसां 'रसायनो रसायनः' इति जल्पितमव्यक्तमश्रौषीत्। पर्यपृच्छच्च तान् -भद्राः! किं रसायन' इति। पृष्टाश्च ते सर्वे सममेव तूष्णीम्बभूवुः। भूयोभूयश्चानुबध्यमाना दुःखेन कथं कथमप्याचक्षिरे - देव! पावकं प्रविष्टः' इति। तच्च श्रुत्वा प्लुष्ट इवान्तस्तापेन सद्यो विवर्णतामगात्। उत्पाट्यमानमिव च न शशाक शोकान्धं धारयितुं हृदयम्। आसीच्चास्य चेतसि - कामं स्वयं न भवति न तु श्रावयत्यप्रियं वचनमरतिकरमितर इवाभिजातो जनः। कृच्छ्रे च यथानेनानुष्ठितमुज्ज्वलीकृतमधिकतरं ज्वलनप्रवेशेन कल्याणप्रकृतिकार्तस्वरमिव कौलपुत्रमस्येति। पुनश्चाचिन्तयत्- 'समुचितमेवाथवा स्नेहस्येदम्। किमस्य तातो न तातः, कि बाम्बा न जननी, वयं न भ्रातरः।

व्याख्या - उषसि -प्रातःकाले,'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषःप्रत्युषसी अपीत्यमरः' च अवतीर्य अवतरणं विधाय श्वेतभवनादिति शेषः, राजद्वारदेशोपसर्पिणा राजद्वारस्य स्थाने तिष्ठति यः स राजद्वारोपसर्पि तेन, परिवर्द्धकेन एतदाख्यादेशपालविशेषेण उपस्थापिते समक्षमानीते, अपि तुरङ्गे अश्वे, चरणाभ्यामेवाजगाम पादाभ्याम् एव

गतवान् स्वमन्दिरम् निजनिवासभवनम्। तत्र च त्वरमाणो शीघ्रतां सम्पाद्यमानः भ्रातुरागमनार्थम् भ्रातुः राज्यवर्धनस्य आगमनाय उपर्युपरि अहमहमिकया भावनया, क्षिप्रपातिनो क्षिप्रं द्रुतं पातिनः धावितुं समर्थाः, दीर्घाध्वगानतिजविनश्चोष्ट्रपालान्प्राहिणोत् – दीर्घे लम्बायमाने अध्वनि मार्गे गन्तुं समर्थो यः, तान्, अत्यधिकजवो वर्तते यस्य सोऽतिजवी,तानतिजविनः, उष्ट्रं क्रमेलकं पालयति यः स उष्ट्रपालकः, तान् प्रस्थानमकारयत्। अर्थात् दूरस्थितं भ्रातरमानेतुं शीघ्रगामिनानश्वोष्ट्रपालान् अश्वान्(अश्ववाहान्) प्रेषयामास। प्रक्षालितवदनश्च प्रक्षालितं स्नापितं वदनं शरीरं येन स प्रक्षालितवदनो हर्षः, परिजनेन परितः स्थितेन लोकेन अर्थात स्वपरिवारजनेन उपनीतमपि सम्मुखमुपस्थापितमपि प्रतिकर्म प्रसाधनं, 'आकल्पवेशो नेपथ्यं प्रतिकर्म्म प्रसाधनमित्यमरः'शरीरशोभासम्पादनयोग्यसाधनं, नाग्रहीत् न गृहीतवान्। अग्रतः सम्मुखे, स्थितानां राजपुत्रयूनां युवाराजपुत्राणां विमनसां येषां मनश्चञ्चलमासीत् तेषां 'रसायनो रसायनः' इति नाम बारम्बारमुच्चारयताम् इति जल्पितमव्यक्तमश्रौषीत् भाषितं कथितं वचनं न व्यक्तं स्फुटम् अव्यक्तं तद्वचनं श्रुतवान्। अर्थात् युवाराजपुत्राः रसायन रसायन इति वदन्ति स्म। परन्तु किं वदन्तीति सुस्पष्टं न श्रुतवान् हर्षः। अतः पर्यपृच्छत् तान् पृष्टवान् च तान् –भद्राः! अयि कल्याणकारिणः! किं रसायन' इति रसायनस्य किमभवदिति? पृष्टाश्च हर्षस्य प्रश्नेन सम्बोधिताः, ते सर्वे ते राजपुत्राः ये इदानीं जल्पन्ति स्म, सममेव सार्धमेव, तूष्णीम्बभूवुः मूकतां धृतवन्तः। अर्थात् कश्चिदपि प्रत्युत्तरं न कृतवान्। भूयोभूयः बारम्बारं, च अनुबध्यमाना प्रश्नोस्योत्तरदानाय प्रेर्यमानाः ते, दुःखेन आन्तरिककष्टेन कथं कथमपि येन केन प्रकारेण आचक्षिरे अवदन् – देव! राजन्! पावकं अग्निं प्रविष्टः' इति। अर्थात् रसायनः दुःखाधिक्यात् स्वशरीरं अग्नौ हुतवान्। तत् – तेषां यूनां कथनं च श्रुत्वा निशम्य, प्लुष्टः दग्धः इव अन्तस्तापेन आन्तरिकोष्मणा, पितुर्मरणजन्य दुःखोपशमनात्प्रागेव रसायनस्य मृत्युसमाचारेणोत्पन्नदुत्पन्नतापेन, सद्यो शीघ्रमेव विवर्णतामगात् विकलतां मनोमालिन्यं प्राप्तवान्। उत्पाट्यमानमिव उच्छेद्यमानम् इव च न शशाक न समर्थोऽभवत्, शोकान्धं शोकेन दुःखेन अन्धतां मूढतां गतं धारयितुं अवस्थापयितुं हृदयम् चेतसम्। अर्थात् यथा उत्पाट्यमानो वृक्षः स्वशरीरं धारयितुं न शक्नोति तथैव हर्षः दुःखान्धं हृदयं स्थिरतया धारयितुं न शशाक। आसीत् च अस्य हर्षस्य चेतसि हृदये- कामं निश्चितरूपेण 'कामं प्रकामं पर्याप्तं निष्कामेष्टं यथेप्सितमित्यमरः' स्वयं न भवति स्वकीयं जीवनं न धारयति, न तु श्रावयत्यप्रियं लोकानां कृतं यत्प्रियं न भवति तदप्रियं

न श्रावयति, अरुचिकरं वचनं अरतिकरम् न रतिः अरतिः तामरतिं करोतीति अरतिकरस्तादृशं वचनं , इतरम् अन्यं इव अभिजातो जनः श्रेष्ठकुलांकुरो जनः 'अभिजातः कुलीने स्यात् न्याय्यपण्डितयोरपीति मेदिनी'। अर्थात् यः श्रेष्ठकुले समुत्पन्नो भवति स कष्टकरावस्थायां स्वयमेव न तिष्ठति, परलोकस्यातिथित्वं गृह्णाति परन्तु सामान्यजनवत् कदापि लोकानप्रियवचनं न श्रावयतीति भावः। कृच्छ्रे अतिकष्टकारिकाले 'स्यात्कष्टं कृच्छ्रमाभीलमित्यमरः' च यथा यादृशाचरणम् अनेन रसायननामधेय-रालकुलसम्बद्धपुत्रेण अनुष्ठितम् सम्पादितं अग्निप्रवेशरूपम् तेन उज्ज्वलीकृतमधिकतरं न उज्ज्वलं उज्ज्वलं कृतं उज्ज्वलीकृतं विशिष्टतरं कृतं, ज्वलनप्रवेशेन ज्वलनमग्निः तस्मिन् प्रवेशरूपकार्येण, कल्याणप्रकृति कल्याणकारी प्रकृतिः स्वभावो यस्य कार्तस्वरमिव कार्तस्वरं स्वर्ण 'रुक्मं कार्त्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियामित्यमरः' इव कौलपुत्रमस्येति कुलसम्बन्धीत्वमस्य रसायनस्य। अर्थात् यथा अग्नौ प्रवेशेन स्वर्णस्य वैशिष्ट्यं वर्धते तथैव वह्निप्रवेशेन रसायनस्यापि अत्यधिकोज्ज्वलचरित्रमभवत्। अनेन साधितं यत् कुलसम्बन्धिनो वियोगो न सोढुं योग्यः न वा लोकान् श्रावयितुं योग्यः। पुनश्चाचिन्तयत्–तदन्तरं पुनरेकवारं विचारितवान् 'समुचितमेवाथवा अथवा यथा कृतमनेन तथा उचितमेवास्ति स्नेहस्येदम् परस्परप्रीतेः इदम् कार्य । अग्नौ प्रवेशः साधयति यत् मम पित्रा सहास्य कीदृशी प्रीतिरासीत् यत् वियोमसहनात् वरमग्निप्रवेश एवाभवत्। - किमस्य रसायनस्य, तातो मम पिता प्रभाकरवर्धनः; न तातः पिता नासीत्, अर्थादासीदेव, कि वा अम्बा माता, मम माता , न जननी माता नास्ति किं? वयं न भ्रातरः वयं हर्षवर्धनराज्यवर्धनादयो भ्रातरः बन्धुर्न किम्? अर्थात् मम पिता अस्यापि पिता आसीत्, मम माता अस्यापि माता, वयं चास्य भ्रातरः। भवतु नाम सहोदरत्वं नासीत् परन्तु स्नेहबन्धनात्तु तथैव वयम्।

हिन्दी – प्रातःकाल में श्वेतभवन से उतरकर हर्ष पैदल ही अपने भवन चले गये। यद्यपि राजद्वार पर रहनेवाला परिवर्धन नामक अश्वपाल घोड़ा लेकर उपस्थित था। वहाँ जाकर शीघ्रता करते हुए अपने भाई राज्यवर्धन को लाने के लिये मैं पहले मैं पहले इस तरह से उपस्थित शीघ्र चलनेवाले लम्बे रास्ते पर चलने में सक्षम, तेजी से दौड़नेवाले ऊँटचलानेवाले दूतों को भेजा। मुँह हाथ धोने के बाद परिजनों द्वारा उपस्थापित प्रसाधनों को भी ग्रहण नहीं किया। अर्थात् अपने शरीर का प्रसाधन नहीं किया, अलंकारादि धारण नहीं किया। सामने में उपस्थित चंचलचित्तवाले युवाराजपुत्रों को 'रसायन रसायन' कहते हुए सुना जिनकी बातें स्पष्ट सुनाई नहीं दे रही थी। आगे

बढ़कर उनको पूछा कि भद्रलोगो! रसायन रसायन, क्या बोल रहे हो? हर्ष के द्वारा पूछे जाने पर सभी एक साथ ही चुप हो गये। बार बार पूछे जाने पर कष्ट पूर्वक किसी तरह उन लोगों ने कहा - देव! रसायन ने अग्निप्रवेश कर लिया। अर्थात् वह आग में जल गया। इस तथ्य को सुनकर हर्ष शीघ्र ही विकल हो गये, मानो अन्तस्ताप से जल गये हों। जैसे काटा गया वृक्ष स्वयं को सम्हाल नहीं सकता है उसी प्रकार हर्ष भी अपने हृदय को धारण नहीं कर सका। अर्थात् वह विकल हो गया। उस समय उसके हृदय में यह विचार आया कि - निश्चित ही अभिजात जन(अच्छे वंश में उत्पन्न लोग) स्वयं को ही मिटा देते हैं लेकिन लोगों को अप्रिय वचन नहीं सुनाते हैं। जैसे तदितर लोग लोग दुःखदेनेवाला वचन अन्यलोगों को सुना देते हैं। अर्थात् अच्छे वंश में उत्पन्न लोग सामान्य लोगों से अलग ही होते हैं। इस कष्टमय समय में उसने जो किया उससे तो हमारे कुल से सम्बन्ध रखनेवाला उसका धर्म और उज्ज्वल हो गया जैसे आग में पड़कर स्वर्ण और अधिक चमकीला हो जाता है। उसने पुनः सोचा - अथवा स्नेह के उचित कार्य ही उसने किया है। क्या मेरे पिता उसके पिता नहीं थे? क्या मेरी माता उसकी माता नहीं है? या हमलोग उसके भाई नहीं है? अर्थात् हैं ही। इस वियोगानल को वह सह नहीं पाया, यह स्नेह की पराकाष्ठा को ही बतलाता है।

अन्यस्मिन्नपि तावत्स्वामिनि दुर्लभीभवति भवन्त्यसवो ध्रियमाणा ह्रीहेतवो लोके किमुतामृतमयेऽनुजीविनां निर्व्याजबान्धवेऽबन्ध्यप्रसादे सुगृहीतनाम्नि ताते। सम्प्रति साम्प्रतमाचरितमनेनात्मानं दहता। किं वास्याकल्पमवस्थितस्य स्थेयसो यशोमयस्य दह्यते पतितः स केवलं दहने। दग्धास्तु वयम्। धन्यः खल्वसावग्रणीः पुण्यभाजाम्। अपुण्यभाक्त्विदमेव राजकुलं कुलपुत्रेण यत्तादृशा वियुक्तम्। अपि च ममापि कः खल्वेतेषां प्राणानां कार्यातिभारः कृत्यशेषो वा, का वा व्यापृतता येन नाद्यापि निष्ठुराः प्राणाः प्रतिष्ठन्ते। को वान्तरायो हृदयस्य येन सहस्रधा न दलतीति। दुःखार्तश्च न जगाम राजसद्म। समुत्ससर्ज च सर्वकार्याणि। शयनीये निपत्योत्तरीय वाससा सोत्तमाङ्गमात्मानमवगुण्ठ्यावतिष्ठत्।

व्याख्या – अन्यस्मिन्नपि इतरस्मिन्नपि मम पितृपादातिरिक्तेऽपि तावत् निश्चयेन, स्वामिनि प्रभौ, रक्षके, दुर्लभीभवति न लब्धुं योग्यो दुर्लभः, तादृशीभवति प्रभौ, अर्थात् दिवंगते प्रभौ, भवन्ति असवः प्राणाः ध्रियमाणा धारणकर्तारः वा धारणं कृत्वा स्थिता जीविता इत्यर्थः, ह्रीहेतवो ह्री लज्जा 'ह्रीस्त्रपाव्रीडा लज्जेत्यमरः' तस्याः लज्जायाः हेतवः कारणानि 'हेतुर्ना कारणं बीजमित्यमरः' अर्थात् स्वप्रभौ मृते सति प्राणधारकाः बान्धवाः लज्जाहेतवो भवन्ति लोके, किमुत अथ च किं तावत्, अमृतमये अमृतत्वप्रदाननिरते अमृतस्वरूपे, अनुजीविनां बान्धवानां आश्रये जीवितानां सेवकानां, निर्व्याजबान्धवे व्याजं छलं न व्याजं अव्याजं स्वाभाविकरूपेणेति भावः, 'कपटोंऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकेतवे इत्यमरः' अब्याजबाधवो यो भवति, तादृशे, अबन्ध्यप्रसादे बन्ध्यः निष्फलः न बन्ध्यः अबन्ध्यः, अबन्ध्यः प्रसादः कृपा 'प्रसादस्तु प्रसन्नेत्यमरः' यस्य तादृशे मम पितरि, सुगृहीतनाम्नि यस्य नाम्नो ग्रहणं सुन्दरं भवति ' स सुगृहीतनामा स्यात् यः प्रातः स्मर्यते बुधैरित्यमरः' तादृशि मम ताते पितरि। अर्थात् सामान्यप्रभूनां मरणेऽपि अनुजीविनां जीवनं श्रेयस्करं न भवति किं तर्हि मम पितासदृशस्य प्रभोः दिवंगते सति। सम्प्रति इदानीं मम पितुः मरणानन्तरं, साम्प्रतम् इदानीं या अवस्था वर्तते तदनुकूलमेव, आचरितम् कृतं सम्पादितम् अनेन रसायनेन,आत्मानं स्वशरीरं दहता ज्वालयता। अर्थात् रसायनेन यत्कृतं तत् समुचितेवास्ति। किं वा अस्याकल्पमवस्थितस्य अस्य रसायनस्य कल्पपर्यन्तं स्थितस्य, स्थेयसो स्थिरस्य, यशोमयस्य यशस्वरूपस्य दह्यते दग्धो भवति, पतितः स रसायनः केवलं दहने अग्नौ। अर्थात् पितुर्मरणमसहमाणो रसायनः दग्धोऽभवत्। एतेन कल्पस्थायियशः तेन समर्जितम्। तस्य यशसः कदापि क्षयो न भवितुमर्हति। इदानीं केवलं शरीरमेव पतितं शरीरे न यशः। दग्धास्तु ज्वलिताः तु वयम् ये इदानीं जीवितास्सन्ति मादृशास्ते। धन्यः श्रेष्ठः पूजनीयः आदरणीयः, खलु असावग्रणीः असौ रसायनः अग्रगन्ता, अग्रे स्थितः 'पुरोगाग्रेसरपृष्ठागतःसरपुरस्सराः इत्यमरः' पुण्यभाजाम् पुण्यवताम्। अर्थादयं रसायनः इदानीं स्वकर्मणां पुण्यभाजामग्रगण्योऽभवत्। अपुण्यभाक् न पुण्यं अपुण्यं, तदपुण्यं भुनक्तीत्यपुण्यभाक्, तु इदमेव राजकुलं इदं मम राजकुलं, सम्पूर्णराजपरिवारः, कुलपुत्रेण कुलोचितगुणयुक्तेन सुतेन यत् तादृशा रसयनसदृशा वियुक्तम् अयुक्तमभवत्। अर्थात् स्वदाहेन रसायनस्तु पुण्यभागभवत् इदं राजकुलमेवापुण्यभागभवत् यदिदानीं तत्सदृशेन राजपुत्रेण वियोगदुःखं भुनक्ति। अपि च ममापि हर्षस्यापि कः किन्नमाधेयः

खलु एतेषां स्वशरीरे स्थितानां, प्राणानां असूनां कार्यातिभारः कार्यस्य अतिभारः अत्यधिको भारः, कृत्यशेषो कृत्यस्य करणीयकार्यस्य शेषः अवशिष्टो भागः, वा, का वा व्यापृतता व्यस्तता, येन येन कारणेन न अद्यापि अस्यामवस्थायामपि, निष्ठुराः कठोराः प्राणाः असवः 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः इत्यमरः' प्रतिष्ठन्ते स्थितास्सन्ति। को वा अन्तरायो विघ्नः 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः इत्यमरः' हृदयस्य चेतसः, येन सहस्रधा सहस्रवारं सहस्रखण्डेषु न दलतीति न चूर्णितो भवति। दुःखार्तः दुःखेन आर्तः विकलः च न जगाम गतवान् राजसद्म राजकीयभवनम्। समुत्ससर्ज परित्यक्तवान् च सर्वकार्याणि सर्वाणि कार्याणि। शयनीये शयनासने 'शय्यायां शयनीयवदित्यमरः' निपत्य स्वशरीरं निपात्य उत्तरीयवाससा द्वितीयवस्त्रेण सोत्तमाङ्गमात्मानम् उत्तमांगं शिरः आत्मानम् शरीरम् 'आत्मा पुंसि स्वभावे च प्रयत्नमनसोरपि। भूतावपि मनीषायां शरीरब्रह्मणोरपि इति मेदिनी' अवगुण्ठ्यावतिष्ठत् आच्छाद्य स्थितोऽभवत्।

हिन्दी - जब कोई अन्य स्वामी भी दुर्लभ हो जाते हैं तो जीवित रहनेवाले बन्धुबान्धव लोग लज्जा के कारण हो जाते हैं तो पुनः मेरे पिता की बात ही क्या है जो स्वयं अनुजीवियों के लिये अमृतमय थे,अर्थात् उनके जीवनाधार थे, उनकी बन्धुता में कोई छ्ल कपट नहीं था, स्वभाविकबन्धुता उनमें थी। जिनकी प्रसन्नता (कृपा) अबन्ध्या थी। अर्थात् उनकी कृपा कभी निष्फल नहीं होती थी। जो सुगृहीतनामधेय थे। अर्थात् जिनका नाम ग्रहण भी विद्वानों के लिये आदरणीय था। इस समय रसायन ने अपने शरीर को जलाकर समयानुकूल उचित कार्य ही किया है। वह तो केवल आग में गिरा है वर्ना कल्पान्त तक स्थायी रहनेवाले उसका यश कहाँ जल सकता है? जले तो हमलोग हैं। धन्य है यह पुण्यवानों में अग्रगण्य रसायन। अपुण्यवाला तो यह राजकुल है जो उस राजपुत्र से भी वियुक्त हो गया। और क्या कहें, मेरे प्राणों के लिये अब कौन सा कर्तव्य शेष रह गया है या कार्य का अतिभार है या कौन सी व्यस्तता है जो इस समय भी मेरे ये निष्ठुर प्राण शरीर को नहीं छोड़ रहे हैं। अर्थात् मैं जीवित हूँ। हमारे हृदय का कौन सा विघ्न उपस्थित हो गया है जिससे यह हजारों टुकड़ों में विभक्त नहीं हो रहा है। इस प्रकार दुःख से आर्त होकर वह हर्ष राजभवन चला गया। उसने सारे कार्य छोड़ दिये। शय्या पर गिरकर अपने द्वितीयवस्त्र से शिर और सम्पूर्ण शरीर को ढककर पड़ गया।

इत्थंभूते च देवे हर्षे राजनि च तदवस्थे सर्वस्यैव लोकस्य कपोलेषु कीलिता इव कराः, लोचनेषु लेप्यमय्य इवाश्रुस्रुतयः, नासाग्रेषु ग्रथिता इव दृष्टयः, कर्णेषूत्कीर्णा इव रुदितध्वनयः, जिह्वासु सहजानीव हा कष्टानि, लपनेषु पल्लवितानीवपरिदेवितपदानि, हृदयेषु निधानीकृतानीव दुःखान्यभवन्। उष्णाश्रुदाहभीतेव नाभजत् नेत्रोदराणि निद्रा। निःश्वासवातविधूता इव व्यलीयन्त हासाः। निरवशेषदग्धेव च सन्तापेन न प्रावर्तत वाणी। कथास्वपि नाश्रूयन्त परिहासाः। क्वाप्यगमन्निति नाज्ञायन्त गीतगोष्ठ्यः। जन्मान्तरातीतानीव नास्मर्यन्त लास्यानि। स्वप्नेऽपि नागृह्यन्त प्रसाधनानि। वार्तापि नालभ्यतोपभोगानाम्। नामापि नाकीर्त्यताहारस्य। खपुष्पप्रतिमान्या सन्नापानमण्डलानि। लोकान्तरमिवानीयन्त वन्दिवाचः। युगान्तर इवावर्तन्त निर्वृतयः। पुनरिवादह्यत शोकाग्निना मकरकेतुः। दिवापि नामुच्यन्त शयनानि। शनैः शनैश्च महापुरुषविनिपातपिशुनाः समं समान्तात्समुद्भवन्भुवने भूयांसो भूपतेरभावाय भयमुत्पादयन्तो भूतानां महोत्पाताः।

व्याख्या – *इत्थंभूते च देवे हर्षे एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वामिनि हर्षवर्धने जाते सति, अर्थात् यदा हर्ष पूर्वोक्तप्रकारेण शोके निममज्ज, राजनि प्रभाकरवर्धने च तदवस्थे मृत्योरवस्थां गते, प्रभाकरवर्धनस्य मरणानन्तरं, सर्वस्यैव लोकस्य तत्र राजभवने स्थिता ये लोकास्तेषां समेषामिति भावः, कपोलेषु गण्डस्थलेषु 'गण्डौ कपोलावित्यमरः' कीलिता स्थापिता जडिता, इव कराः हस्ताः , अर्थात् समेषां जनानां हस्तौ कपोलयोः कीलितावभवन् शोकावस्थानुसारम्, अत्रोत्प्रेक्षालंकारः, लोचनेषु नेत्रेषु लेप्यमय्य लपनरस इव अश्रुस्रुतयः अश्रुणः नयनजलस्य या स्रुतिः स्रवणधारा ताः, अर्थात् लोचनाभ्यां लेपनधारा इव अश्रवः प्रवहन्ति स्म, नासाग्रेषु नासिकायाः श्वासग्रहणनलिकायाः अग्रभागे, ग्रथिता कीलिता इव दृष्टयः नेत्रपंक्तयः नेत्रशक्तयो वा, अर्थात् सर्वेषां नयनानि स्वनासिकामेव पश्यन्ति स्म नान्यत् किमपीति, कर्णेषूत्कीर्णा श्रवणरन्ध्रेषु उट्टंकिता इव रुदितध्वनयः, राज्ञः वियोगादुत्पन्ना या तत्सम्बन्धिनां क्रन्दनध्वनयः, अर्थात् श्रवणे केवलं रोदनध्वनिरेवायाति स्म, जिह्वासु रसनासु 'रसज्ञा रसना जिह्वेत्यमरः' सहजानीव सहैव जातानि इव मन्ये, हा कष्टानि महद्दुःखानि, लपनेषु मुखेषु 'आननं लपनं*

मुखमित्यमरः' पल्लवितानीव विस्तृतानि इव परिदेवितपदानि विलापस्य पदानि वाक्यानि,'विलापः परिदेवनमित्यमरः' हृदयेषु चित्तेषु निधानीकृतानीव स्थापितानि इव दुःखान्यभवन् कष्टानि अभवन् सर्वत्रोत्प्रेक्षालंकारः। उष्णाश्रुदाहभीतेव अश्रुरूपेण प्रवाहिता या अश्रुधारा तस्याः योष्मा तापं तस्मात् भीता इव, नाभजत् न प्राप्तवती नेत्रोदराणि नेत्रयोः लोचनयोः उदरभागं मध्यभागं निद्रा शयनम्। अर्थात् निद्रा लोकानां नयनोर्नागता यतोहि सर्वेषां नयनयोरश्रुपातो भवति स्म। अश्रुणः जलं तप्तं भवति। निद्रा भीतिमेति जलात्। तप्ते जले निपतनेन दाहभीतिस्तु स्वाभाविक्येव। निःश्वासवातविधूता निःश्वासस्य दीर्घतरश्वासग्रहणत्यागयोर्यो वातः पवनः तस्मात् विधूता दूरं प्रक्षिप्ता इव मन्ये व्यलीयन्त दृष्टिपथादगोचरतां गताः, हासाः परिहासस्य प्रक्रियाः। अर्थात् हासविलासस्याभावोऽभवत्। मन्ये निश्वासस्य वायुना हासविलासः दूरीकृतः यथा झंझावातेन तृणानि दूरीक्रियन्ते। उत्प्रेक्षैव। निरवशेषदग्धेव अवशेषं विना दग्धा ज्वलिता इव मन्ये च सन्तापेन शोकजनिततापेन न प्रावर्तत प्रवृत्ताऽभवत् वाणी मुखादुद्गतवाक्यावली। अर्थात् शोकोद्गतसन्तापेन लोकानां वाणी तथा दग्धाऽभवत् यस्या अवशेषमात्रमपि न दृश्यते। कथास्वपि परस्परालपनेष्वपि नाश्रूयन्त न श्रुतिमागतवन्तः परिहासाः हासवाक्यानि। क्वाप्यगमन्निति कुत्रचिदपि गतवत्यः परन्तु कुत्र गतवत्यः इति नाज्ञायन्त ज्ञानस्य विषयो नाभवत् ,गीतगोष्ठ्यः गीतस्य गानस्य गोष्ठ्यः लघुसभाः। अर्थात् गीतगोष्ठ्यः क्व गतवती इति कश्चिदपि न जानाति। गीतगोष्ठेरभावोऽभवदति सारः। जन्मान्तरातीतानीव जन्मान्तरे परस्मिन् जन्मनि अतीतानि व्यतीतानि इव नास्मर्यन्त स्मरणपथं नागतानि लास्यानि मधुनृत्यानि। नृत्यभेदो भवति लास्यम्। अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं नृत्तंताललयाश्रितमिति। तत्रापि मधुरोद्धतभेदेन द्विविधत्वं भवति। स्वप्नेऽपि शयने अपि सुप्तावपि, नागृह्यन्त गृहीतानि नाभवन् प्रसाधनानि अलंकरणादीनि। अर्थात् स्वप्ने कश्चिदलंकारं न गृह्णाति जागरितावस्थायाः चर्चैव का? वार्तापि कथनमपि नालभ्यत न प्राप्ता जनैः उपभोगानाम् सांसारिकविलासभोगानाम्। नामापि नामग्रहणमपि नाकीर्त्यताहारस्य आहारस्य भोजनस्य अकीर्त्यत कृतवानिति। अर्थात् कश्चिदपि भोजनस्य वार्ता न कृतवान्। खपुष्पप्रतिमान्यासन्नापानमण्डलानि खे आकाशे विकसति यत्पुष्पं तस्य प्रतिमा द्वितीयरूपमिव अभवन् मदिरापानस्य गोष्ठ्यः 'आपानं पानगोष्ठिकेत्यमरः'। यथा आकाशपुष्पानां केवलं श्रवणमेव भवति कदापि दर्शनं न भवति तथैव शोकावस्थायां पानगोष्ठीनां केवलं श्रवणमेव भवति दर्शनं न भवति राज्ये क्वचिदपीति भावः। लोकान्तरमिवानीयन्त वन्दिवाचः वन्दी वन्दिनो

यशोगातुः वाचः गीतात्मकपदावल्यः भूलोकमपहायान्यलोकं अनीयन्त शोकावेगेन नीतेति भावः। युगान्तर युगान्तराले इवावर्तन्त अतिष्ठन्त निर्वृतयः सुखशान्तयः। मन्ये सुखशान्त्यादयः युगात् पूर्वमासीत्। पुनरिवादह्यत मन्ये पुनः ज्वलितोऽभवत्, शोकाग्निना शोक एवाग्निः तापकारित्वात् तेन शोकरूपाग्निना ज्वलितोऽभवत् मकरकेतुः मकरः अस्ति केतौ पताकायां यस्य स कामदेवः। दिवापि दिने अपि नामुच्यन्त न त्यक्तवन्तः लोकाः शयनानि शयनासनानि। शनैः शनैश्च मन्दं मन्दं महापुरुषविनिपातपिशुनाः महान् चासौ पुरुषः महापुरुषः प्रभाकरवर्धनः तस्य विनिपातो मरणं तस्य पिशुनाः सूचनादायकाः 'पिशुनौ खलसूचकावित्यमरः' समं समन्तात् चतुर्दिक्षु सहैव एकस्मिन्नेव काले समुदभवन्भुवने उत्पन्ना अभवन् भुवने संसारे भूलोके, भूयांसो बहवः पर्याप्तमात्रायाम्, भूपतेरभावाय भुवः पृथिव्याः पतिः स्वामी भूपतिः राजा तस्य अभावाय अभावसूचनाय भयमुत्पादयन्तो लोकानां कृते भयं जनयन्तः भूतानां समस्तब्रह्माण्डस्थितानां तत्त्वानां 'युक्ते क्ष्मावृते भूतमित्यमरः महोत्पाताः महान् उत्पातः । उत्पातो भवति भूतानां तादृशी स्थितिः यया लोकानां कृते भयोत्पादनं भवति।

हिन्दी – इस प्रकार हर्ष के शोक में डूब जाने पर, राजा प्रभाकरवर्धन के उस अवस्था (मरण) को प्राप्त हो जाने पर, वहाँ राजभवन में स्थित सभी लोगों के हाथ मानो कपोलों पर कीलित हो गये, जम गये, आँखों से लेपनरस की तरह मानो अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, नासिका के अग्रभाग पर सभी की दृष्टियाँ मानो गूँथ दी गयी। कर्णरन्ध्रों में रोने की आवाजें मानो टंकित कर दी गयी। सभी की जिह्वा पर 'हा कष्ट' यही शब्द रह गया मानो जिह्वा के साथ ही इव शब्द की उत्पत्ति हुई हो। सभी के मुखों में विलाप के शब्द ही विकसित होने लगे, सभी के हृदयों में दुःख ने मानो अपना घर बना लिया। किसी की भी आँखों में नींद नहीं आ रही थी मानो अश्रुजल के ताप से उसे जल जाने का डर हो रहा था। सभी हास परिहास इस तरह दूर हो गये (कहीं खो गये)मानो निःश्वास की हवा से उड़ा दिया गया हो। किसी के मुख से आवाज नहीं निकलती थी मानो शोकसन्ताप से वह आवाज ऐसी जली जिससे उसका कोई अवशेष भी न बचा। कथाओं में भी परिहास सुनाई नहीं दिया। गीतगोष्ठियाँ मानो कहीं चली गयी। लास्य की बातें तो मानो जन्मान्तरों में बीती हुई बातें हो गयी। स्वप्न में भी किसी ने प्रसाधन ग्रहण नहीं किया। उपभोग की तो बातें भी नहीं सुनाई नहीं दी। भोजन का तो किसी ने नाम तक नहीं लिया। पानमण्डली तो आकाशपुष्प की तरह हो

गयी। (जैसे आकाश पुष्प केवल सुना जाता है देखा नहीं जाता उसी तरह पानगोष्ठी सुनने की बातें रह गयी दिखाई नहीं दी।) वन्दियों का वचन तो मानो लोकान्तर में पहुँचा दी गयी। शान्ति तो मानो युगान्तर में स्थित हो गयी। शोक की अग्नि में मानो कामदेव फिर से जल गया। दिन में भी लोगों ने शयनासन नहीं छोड़ा। धीरे धीरे महापुरुष के विनाश की सूचना देनेवाले उत्पात इस संसार में सर्वत्र एकसाथ ही उत्पन्न हो गये जो लोगों के लिये भय उत्पन्न कर रहे थे और भूपति प्रभाकरवर्धन के अभाव की सूचना दे रहे थे।

तथा हि दोलायमानसकलकुलाचलचक्रवाला पत्या सार्धं गन्तुकामेव प्रथममचलद्धरित्री। धान्वन्तरेरिवान्तरे तस्मिन् स्मरन्तः परस्परास्फालन वाचालवीचयो विजुघूर्णिरेऽर्णवाः। भूभृदभावभीतानां विततशिखिकलाप विकटकुटिलाः केशपाशा इवोर्ध्वीबभूवुर्धूमकेतवः ककुभाम्। धूमकेतुकरालितदिङ्मुखं दिक्पालारब्धायुष्कामहोमधूम-धूम्रमिवाभवद् भुवनम्। भ्रष्टभासि तप्तकालायसकुम्भबभ्रुणि भानुमण्डले भयङ्करकबन्धकायब्याजेन कोऽपि पार्थिवप्राणितार्थी पुरुषोपहारमिवोपजहार। ज्वलितपरिवेषमण्डला भोगभास्वरो जिघृक्षाजृम्भमाणस्वर्भानुभयादुपरचिताग्निप्राकार इव प्रत्यदृश्यत् श्वेतभानुः। अवनिपतिप्रतापप्रसाधिताः प्रथमतरकृतपावकप्रवेशा इवादह्यन्तानुरक्ता दिशः। स्रुतशोणितशीकरा सारारुणिततनुरनुमरणाय पर्याकुलाप्रावृतपाटलांशुक पटेवादृश्यत वसुधाबधूः।

व्याख्या - *तथा हि दोलायमानसकलकुलाचलचक्रवाला दोलायमानं स्वस्थानादग्रेपृष्ठे गम्यमानं सकलानां समेषां कुलाचलानां कुलपर्वतानां महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः। अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चया इत्यमरः' श्रेष्ठाः अचलाः कुलाचलाः इति, चक्रवालं मण्डलं 'चक्रवालं तु मण्डलमित्यमरः' समूहो यस्या सा तादृशी वा धरणी, पत्या स्वामिना पतिः भवति स्वामी, पृथिव्या स्वामी भवति राजा, अतः राज्ञः प्रभाकरवर्धनेन सार्धं सहैव, गन्तुकामेव गन्तुं स्वर्गं प्रयातुं कामना इच्छा यस्याः सा प्रथमम् पूर्वं सर्वप्रथमम् अचलद्धरित्री धरित्री धरणी 'धरा धरित्रीधरणी क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिरित्यमरः' चचाल स्वस्थानादस्थिरा बभूव। कम्पायमाना*

बभूवेत्यर्थः। अत्र ध्येयम् – श्रेष्ठपर्वतानां कुलाचलाः संख्या सप्त भवति। इमे सन्ति कुलपर्वताः-

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।।

धान्वन्तरेरिवान्तरे धन्वन्तरिः समुद्रादुत्पन्नो वैद्यराजः तत्सम्बद्धं आयुर्वेदशास्त्रममृतं वा, अन्तरे दूरं गते लुप्ते, मृते तस्मिन् राजनि, स्मरन्तः धन्वन्तरिविषयस्य स्मरणं कुर्वन्तः परस्परास्फालनवाचालवीचया परस्परं आस्फालनेन संघट्टनेन वाचालाः मुखराः तीक्ष्णध्वनियुक्ताः याः वीचयः तरंगाः तद्युक्ताः, विजुघूर्णिरेऽर्णवाः अर्णवाः समुद्राः विचुक्षुभे विक्षोभं प्राप्तवन्त इति। अर्थात् मन्ये ध्वन्तरेरभावात् तस्य स्मरणं कुर्वन्तः सागराः उत्तालतरंगध्वनिबलेन वाचालाः क्षोभं जग्मुः प्रभाकरवर्धनस्याभावे। भूभृदभावभीतानां भुवं विभर्तीति भूभृत् राजा प्रभाकरवर्धनः इति, तस्य भृभृतः अभावात् न भावः स्थितिः अभावः तस्मात् भीताः भयं गताः किमग्रे भविष्यतीति धिया भीतिमागताः ये तेषां, विततशिखिकलापविकटकुटिलाः विततं विस्तृतं शिखिनः मयूरस्य अग्नेर्वा कलापः वर्हः ज्वाला वा, तद्वत् केशपाशा केशस्य शिरोरुहस्य 'कचः केशः शिरोरुहः इत्यमरः' पाशाः जाला, इव उर्ध्वीबभूवुः उर्ध्व उपरिदेशं उत्थिता बभुवुः धूमकेतवः उत्पातकारकाः ककुभाम् दिशाम्'दिशस्तु ककुभः काष्ठा इत्यमरः'। अर्थात् राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य मरणानन्तरं भीतिवशात् दिशां केशपाशा इव धूमकेतवः नभसि उत्थिता दीप्ता बभूवुः। धूमकेतुकरालितदिङ्मुखं- धूमकेतोः उत्पातकारकानां विलासेन करालं भीषणं यत् दिशः मुखं आननम्, दिक्पालारब्धायुष्कामहोमधूमधूम्रमिवाभवद् दिशां पालकाः दिक्पालाः तैः दिक्पालैः आरब्धः आयुष्कामनया आयुवर्धनकामनया यो होमः हवनकर्म तस्मादुत्पन्नेन धूमेन धूम्रः कृष्णतां गत इव संजातं भुवनम् संसारः। अर्थात् धूमकेतुभिः करालितं दिशां मुखं तथा प्रतीयते यत् मन्ये सर्वे दिक्पालाः राज्ञः आयुवर्धनकामनया हवनकर्म कुर्वन्ति। तस्मात् हवनकर्मणः उत्थिता या धूमलेखा, तया कृष्णवर्णतां धूम्रवर्णतां वा गतं सम्पूर्ण भुवनम्। भ्रष्टभासि भ्रष्टाः निपतिताः च्युताः समाप्ताः भा दीप्तयः प्रकाशाः यस्य सः सूर्यः तस्मिन्, तप्तकालायसकुम्भबभ्रुणि तप्तः अग्न्युत्तापेन तापं गतः कालायसः कृष्णवर्णीयः लौहः, तादृशेन लौहेन निर्मितो यो कुम्भः घटः तद्वत् बभ्रुः पिंगलवर्णः , तत्सदृशतां गते, भानुमण्डले सूर्यस्य मण्डले चक्रे, भयङ्करकबन्धकायब्याजेन भीषणस्य शिरोविहीनशरीरस्य 'कबन्धोऽस्त्री-क्रियायुक्तमपमूर्द्धकलेवरमित्यमरः' छ्लेन कोऽपि कश्चिदपि , पार्थिवप्राणितार्थी पार्थिवो

नृपः तस्य प्राणस्येच्छुकः पुरुषोपहारमिवोपजहार पुरुषस्य उपहारमिव बलिमिव 'करोपहारयोः पुंसि बलिरित्यमरः' बलिः पूजार्थ नैवेद्यम् 'सपर्यातर्पणं बलिरित्यमरः' समर्पयामास। ज्वलितपरिवेषमण्डलाभोगभास्वरो ज्वलितस्य वह्नेः परिवेषस्य मण्डलाकाररेखायाः य आभोगः विस्तारः तेन भास्वरः दीप्यमानः, जिघृक्षाजृम्भमाणस्वर्भानुभयादुपरचिताग्निप्राकार गृहीतुमिच्छा जिघृक्षा तया जृम्भमाणः मुखं व्यादाय स्थितो यः स्वर्भानुः राहुः 'तमस्तु राहुः स्वर्भानु सैंहिकेयो विधुन्तुदः इत्यमरः' तस्य भयात् उपचरितः निर्मापितः अग्नेः प्राकरः विशालभित्तिः सालः'प्राकारो वारणः साल इत्यमरः' इव प्रत्यदृश्यत् दृष्टिपथमागतवान् श्वेतभानुः धवलो सूर्यः चन्द्र इत्यर्थः। अवनिपतिप्रतापप्रसाधिताः अवनेः धरणेः पतिः स्वामी अवनिपतिः राजा प्रभाकरवर्धनः तस्य प्रतापेन तेजसा अग्निस्वरूपेण तेजसा ' स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोषदण्डजमित्यमरः' प्रसाधनं श्रृंगारादिकं कृतवत्यः, प्रथमतरकृतपावकप्रवेशा प्रथमं पूर्व राज्ञः अग्निसंस्कारात्प्रागेव, कृतः पावके वह्नौ प्रवेशः प्रवेशो यया याभिर्वा ताः, इव अदह्यन्त दग्धा अभवन् अनुरक्ता तस्मिन् राजनि अनुरागः आसीत् यासां ताः दिशः आशाः' दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः इत्यमरः' स्रुतशोणितशीकरासारारुणिततनुः स्रुतं प्रवहितं यत् शोणितं रक्तः तस्य शीकराः विन्दवः, तेषां विन्दूनां निरन्तरप्रवाहेण य आसाराः पर्याप्तता 'धारासारस्तु आसारः इत्यमरः' तेन अरुणिता रक्ततांगता यस्या तनुः शरीरं, सा तादृशी वा वसुधा अनुमरणाय स्वपत्युः राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य पृष्ठे एव मृत्युमुखे गमनाय, पर्याकुला पूर्णरूपेणाकुला व्यस्ततां गता, प्रावृतपाटलांशुकपटेव प्रावृता आवृता आच्छादिता पाटलेन रक्तवर्णीयेन अंशुकेन वस्त्रेण वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकमित्यमरः' पटेन द्वितीयवस्त्रेण सुचेलकः पटोऽस्त्री स्यात्' पटेनात्र द्वितीयवस्त्रस्यार्थो गृहीतः लक्षणया अन्यथा अंशुकपटयोः प्रयोगेन पुनरुक्तिः। या तादृशी अदृश्यत दृष्टिपथमागता वसुधाबधूः वसुधा धरणिः 'सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरेत्यमरः' सा एव बधूः नवोढ़ापत्नी रूपकालंकारः। यथा बधूः पत्युः मरणानन्तरं रक्तशाटिकायां श्रृंगारं कृत्वा बह्नौ प्रवेष्टुं सज्जा भवति तथैवेयं धराबधूरभवदिति मन्ये। अत्रोत्प्रेक्षामाध्यमेन राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य मरणानन्तरं प्रकृतेरवस्थाया वर्णनं दृश्यते। कृत्स्ना प्रकृतिरेव प्रभाकरवर्धनस्य वियोगात् क्षुभितेवाभवदिति सारः।

हिन्दी--इस समय सभी कुलाचलपर्वतों का समूह हिलने लगा मानो अपने पति(प्रभाकरवर्धन) के साथ ही परलोक जाने की कामना से धरती अपने स्थान से

हिलने लगी। धन्वन्तरि के अभाव का स्मरण करे परस्पर टकराने से उत्पन्न भयंकर आवाज से युक्त तरंगों वाले सागर क्षुभित हो गये। राजा आकाश में धूमकेतु ऐसे उग आये मानो प्रभाकरवर्धन के अभाव से डरी हुई दिशाओं से व्याकुल विस्तृत अग्निशिखा की तरह दीपित या मयूर के पंख की तरह चमकीले केशपाश उपर की ओर उठ गये हों। धूमकेतु से विकराल हो चुके दिशाओं के मुख ऐसे प्रतीत होने लगे मानो राजा प्रभाकरवर्धन के आयु की कामना से दिक्पालों ने हवन कर्म आरम्भ कर दिया हो जिसके धूंये से सम्पूर्ण भुवन धूसरित हो गया हो। जिसकी किरणों का प्रकाश समाप्त हो गया ऐसा सूर्य जो तपे हुए लोहे से बनाये घट के समान पिंगल वर्ण का हो गया वह ऐसा प्रतीत हो रहा था। मानो भयंकर कबन्ध(शिर रहित शरीर) के बहाने राजा के प्राण को बचाने की कामना से किसी ने काल को पुरुषवलि दे दी हो। चन्द्रमा के चारो ओर अग्नि की ज्वाला सी जलने लगी मानो खाने की इच्छा से मुख फैलाकर आगे बढ़ रहे राहु के डर से चन्द्रमा ने अपने चारो ओर अग्निज्वाला की दीवार खड़ी कर दी हो। राजा के प्रताप से जलती हुई धरती ऐसी लगने लगी मानो पति के जलने से पूर्व ही अनुरक्त पत्नी की तरह धरती अपना श्रृंगार कर आग्नि में प्रविष्ट हो चुकी हो। बहते हुए शोणितविन्दु की अविरल धारा से लाल हो चुकी धरती ऐसी लगने लगी मानो अनुरागाधिक्य के कारण मरने को उद्यत किसी बधू ने लाल रंग की साड़ी और उत्तरीय से अपना शरीर ढक लिया हो। (यहाँ वसुधा ही बधू है। अपने से प्रेम के कारण उसके वियोग को सहने में असमर्थ पत्नी लाल साड़ी में लिपटकर जैसे अग्निप्रवेश के द्वारा स्वयं मरने को तैयार हो जाती है वैसे ही यह धरती हो गयी है। धरती का पति राजा होता है और राजा प्रभाकरवर्धन मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। वसुधा का वधू रूप में चित्रण होने से रूपक अलंकार है। अन्यत्र उत्प्रेक्षा अलंकार है।)

नराधिपविनाशसम्भ्रमभीतैर्लोकपालैरिव कालायसकवाटपुटै रकालकालमेघपटलैररुच्यन्त दिग्द्वाराणि । प्रेतपतिप्रयाणप्रहताः पटवः पटहा इवारटन्तो हृदयस्फोटनाः पस्फायिरे निपततां निर्घातानां घोरा घननिर्घोषाः। निकटीभवद्यममहिषखुरपटोद्भूता इव द्युमणेर्धाम धूसरीचक्रुः। क्रमेलककचकपिलाः पांशुवृष्टयः। विरसविराविणी-नामुन्मुखीनां शिखिनो ज्वालाः प्रतीच्छन्त्य इव पतन्तीरुल्का नभसो

ववाशिरे शिवानां राजयः। राजधामनि धूमायमानकबरी विभागविभावितविकाराः प्रकीर्णकेशपाश प्रकाशितशोका इव प्राकाशन्त प्रतिमाः कुलदेवतानाम। उपसिंहासन माकुलं कालरात्रिविधूयमानवृजिन वेणीबन्धविभ्रमं बिभ्राणं बभ्राम भ्रामरं पटलम्। अटतामन्तःपुरस्योपरि क्षणमपि न शशाम व्याक्रोशो वायसानाम्। श्वेतातपत्रमण्डलमध्याज्जीवितमिव राज्यस्य सरसपिशितपिण्डलोहितं चञ्चच्चञ्चुरुच्चैरुच्चखान खण्डं माणिक्यस्य कूजज्वरद्गृध्रो महोत्पातदूयमानश्च कथमपि निनाय निशाम्।

व्याख्या – *नराधिपविनाशसम्भ्रमभीतैर्लोकपालैरिव नराणां लोकानां अधिपो राजा प्रभाकरवर्धनः, तस्य विनाशात् मरणात् मरणभयात् उत्पन्नो यो सम्भ्रमः आवेगः 'समौ संवेगसम्भ्रमावित्यमरः' तस्मात् भीतैः भयग्रस्तैः लोकानां जनानां पालनं करोतीति लोकपालः दिक्पालाः इति भावः, तैः, इव मन्ये, कालायसकवाटपुटैः कालायसः कृष्णवर्णीयलौहः आयसो नाम लौहः तेन लौहेन निर्मितो यो कवाटः द्वाराभिरक्षणार्थलौहभित्तिः ताभिः भित्तिभिः कवाटैरिति, अकालकालमेघपटलैः अकाले असमये आगतो यो कालमेघः भीषणो वारिदः तस्य मेघस्य समूहः पटलः तद्वत् अरुच्यन्त शोभमाना बभूवुः दिग्द्वाराणि दिशः रूपद्वाराणि। अर्थात् राज्ञो प्रभाकरवर्धनस्य मरणानन्तरं जातसंभ्रमात् भयभीतैः लोकपालैः दिग्द्वाराणि पिधत्तानीव प्रतीयते अकालागतकालसमूहस्य समूहैः। प्रेतपतिप्रयाणप्रहताः प्रेतानां पतिः स्वामी नाथः यमराजः तस्य प्रयाणकाले गमनकाले यात्राकाले, प्रहता आघातिताः, पटवः कुशलाः गम्भीरभीषणध्वनिकारकाः, पटहा आनकः 'आनकः पटहोऽस्त्रीस्यादित्यमरः' विशालढक्का, इव समः आरटन्तो चतुर्दिक्षु रवं कुर्वन्तः हृदयस्फोटनाः हृदयं चित्तं स्फोटयितुं भेदयितुं समर्थाः, पस्फायिरे ववृधिरे पटहध्वनिः वृद्धिमवापुरिति, निपतता आकाशदेशात् भूमौ पततां निर्घातानां वायोः प्रबलवेगानां 'निर्घातनिःश्वसनो घोरः इत्यमरः' घोरा अतिकठिना घननिर्घोषाः घनस्य मेघस्य निर्घोषाः रवाः 'स्वाननिर्घोषनिर्ह्रादनादनिस्वानस्विनाः इत्यमरः'। अर्थात् मेघस्य भीषणध्वनयस्तथाऽभवन् मन्ये यमराजप्रस्थानकालिकपटहध्वनिर्भवति। निकटीभवद्यममहिषखुरपुटोद्भूता दूरात् पार्श्वदेशमागतवदिति भावः निकटीभवत्, यमस्य नरान्तकस्य वाहनो यो महिषः तस्य खुरपुटेन पादाग्रेण समुत्पन्ना इव द्युमणेर्धाम द्युमणिः सूर्यः 'द्युमणिस्तरणिर्मित्र इत्यमरः'*

तस्य सूर्यस्य धाम प्रकाशः तेजः प्रभावः 'त्विट्प्रभावाधामानीत्यमरः' धूसरीचक्रुः धूसरवर्णतां निन्युः । अर्थात् प्रतीयते यत् प्रभाकरवर्धनं नेतुं यो यमराज आयाति तस्य वाहनस्य खुरपुटेनोत्थिता या धूलिः सा सूर्यस्य प्रकाशमेव धूसरीचकार। यतोहि क्रमशः वाहनः पार्श्वमायाति धूलिः वृद्धिं याति। क्रमेलककचकपिलाः क्रमेलको नाम उष्ट्रः 'उष्ट्रे क्रमेलक इत्यमरः' तस्य कचाः केशाः 'कचः केशाः शिरोरुहाः इत्यमरः' इव कपिलाः कपिलवर्णीयाः ईषद्रक्तपीतवर्णीयाः पांशुवृष्टयः पांशवो धूलयः तासां धूलीनां वृष्टयः आकाशदेशात् पतनम्। अर्थात् आकाशदेशात् पति या कपिलाधूलिः तया प्रतीयते यत् मन्ये धूलेरेव वृष्टिर्भवति। विरसविराविणीनामुन्मुखीनां विरसं कटु विरवं शब्दं करोतति या सा विरसविराविणी शिवाः तासां उर्ध्व मुखं कृत्वा स्थितानां, शिखिनो वह्नेः ज्वालाः कलापाः प्रतीच्छन्त्य गृहीतुं द्रष्टुं वेच्छन्त्यः इव पतन्तीरुल्का पतन्त्यः उल्काः आकाशान्निर्गतज्वाला 'उल्का स्यान्निर्गतज्वाला इत्यमरः' नभसो अन्तरिक्षात् गगनात् ' नभोऽन्तरिक्षं गगगनमनन्तं सुरवर्त्म खमित्यमरः' ववाशिरे आह्वानं कृतवत्यः शिवानां श्रृगालपत्नीनां राजयः पंक्तयः 'श्रेणी लेखास्तु राजयः इत्यमरः' । राजधामनि राज्ञो मन्दिरे भवने धूमायमानकबरीविभागविभावितविकाराः धूमवत् भासमानाः कबरीनां केशानां 'कबरी केशवेशः इत्यमरः' विभागेन पृथक्तया विभावितः प्रस्तुतः अनुमानितः यो विकारः चित्तविकारः शोकावेग इति भावः, प्रकीर्णकेशपाशप्रकाशितशोका विकीर्णेन केशपाशेनैव प्रकाशिताः लोकानां प्रत्यक्षमभवन् शोका इव प्राकाशन्त शोभायमानाः बभूवुः प्रतिमाः मूर्तयः 'प्रतिमानं प्रतिविम्बं प्रतिमेत्यमरः' कुलदेवतानाम् कुलस्य वंशस्य याः देवताः तासाम्। उपसिंहासनम् सिंहासनस्य समीपे ,आकुलं चञ्चलं व्यस्तं कालरात्रिविधूयमानवृजिनवेणीबन्धविभ्रमं कालरात्रेः विनाशकालिकनिशायाः विधूयमानः विस्तार्यमाणः वृजिनः समूहः 'वृजिनैनौघमंह इत्यमरः' कुटिलः 'वृजिनं कल्मषे क्लीवं केशे ना कुटिले त्रिषु इति मेदिनी' यो वेणीबन्धः केशपाशबन्धः 'वेणिः प्रवेणी शीर्ष्णण्यशिरस्यै विशदे कचे इत्यमरः' बिभ्राणं दधानं बभ्राम भ्रमणं चकार भ्रामरं भ्रमराणां भ्रमरसम्बद्धं वा पटलम् समूहः। अटताम् भ्रमणं कुर्वतां अन्तःपुरस्योपरि अन्तः पुरस्य राज्ञो निवासभवनस्य उपरि क्षणमपि अतिलघुकालमपि न शशाम शान्तिं प्राप, व्याक्रोशो विकृतशब्दविशेषः, वायसानाम् काकानाम् - काके तु करटारिष्टबलिपुष्टसकृत्प्रजाः। ध्वांक्षात्मघोषपरभृद्बलिभुग्वायसा अपीत्यमरः'। श्वेतातपत्रमण्डलमध्याज्जीवितमिव राज्यासने लग्नं यत् श्वेतवर्णीयं आतपत्रं छत्रं तस्य मण्डलस्य मध्यदेशात् जीवितं प्राणाः इव राज्यस्य तस्य राष्ट्रस्य,

सरसपिशितपिण्डलोहितं रसपूर्णमांसस्य पिण्डवत् रक्तवर्णीयं, चञ्चच्चञ्चुरुच्चैरुच्चखान चञ्चलैः चञ्चुभिः मुखपुटैः उच्चखान् उत्पाटितवान् खण्ड शकलं माणिक्यस्यमणिनिर्मितरत्नस्य मणेरेव वा कूजज्वरद्गृध्रो कुजनं कुर्वत् ज्वरद् बृद्धो ग्रीध्रः मांसभोक्ता पक्षिविशेषः, महोत्पातदूयमानश्च महोत्पातैः पूर्वोक्तोत्पातसमूहैः दूयमानः कष्टं भजमानः कथमपि येन केनापि प्रकारेण निनाय निशाम् रात्रिं 'निशा निशीथिनी रात्रिरित्यमरः' यापितवान्।

हिन्दी–*अकाल काल(विनाशकाल) के समान आये हुए मेघपटलों से ऐसा प्रतीत होने लगा कि राजा(प्रभाकरवर्धन) के विनाश से भयभीत दिक्पालों ने लोहे के किबाड़ से दिशाओं का द्वार बन्द कर लिया हो। भीषण हवा के साथ आकाश से धरती पर गिरते हुए मेघ की भयंकर आवाज से ऐसा प्रतीत हुआ कि यमराज के प्रस्थानकाल में हृदय को फाड़ने की क्षमता वाली भयंकर पटह की आवाज हो रही हो। सूर्य का प्रकाश इस प्रकार धूल धूसरित हो गया मानो प्रतिपल यमराज के निकट आने के कारण यमराज के वाहन भैंसे के खुरों से उत्पन्न, ऊँट के केशपाश के समान धूसरित धूलि की वृष्टि ने सूर्य को धूसरित कर दिया हो। उपर की ओर मुख किये हुए कठोर आवाज करती हुई सियारिनों की पंक्तियाँ ऐसा प्रतीत हो रही थी मानो आकाश से गिरने वाली ज्वाला की प्रतीक्षा कर रहीं हों। राजभवनों में चारों ओर धूँये या मेघ की पंक्तियों के फैल जाने से ही जिसका शोक प्रकटित हो रही थी ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अपने केशपाशों को विखेरकर कुलदेवतायें अपने शोक को प्रकट कर रही हो। राजसिंहासन के आस पास भौंरे का समूह ऐसे घूमने लगा मानो विनाशकालिक कालरात्रि अपने टेढ़े मेढ़े केशपाशों को विखेरकर घूम रही हो, नृत्य कर रही हो। अन्तः पुर के उपर घूमते हुए कौवों की कर्कश आवाज क्षणभर के लिये शान्त नहीं हो पायी। श्वेत राजच्छत्र के मध्य से मणिखण्ड को कोई चिल्लाता हुआ बूढ़ा गीध अपने चञ्चल चोंच से ऐसे उखाड़ कर ले गया मानो सरस मांसपिण्ड के समान सम्पूर्णराज्य के प्राण को ही लेकर उड़ गया हो। ऐसे महान उत्पातों से विकल हृदयवाले हर्ष ने किसी तरह उस रात्रि को बिताया।*

अन्यस्मिन्नहनि समीपमस्य राजकुलादद्रुतगतिवशविशीर्यमाणा लङ्कारझाङ्कारिणी विजयघोषेणेव विषादस्याकुलचरणचलत्तुला-कोटिक्वणित वाचालिताभिरुद्ग्रीवाभिः, किं किमेतदिति पृच्छ्यमानेव

दूरादेव भवनहंसीभिः, स्खलितविशालश्रोणिशिञ्जानरया-नानुराविणीभिश्च वाष्पान्धा समुपदिश्यमानमार्गेव गृहसारसीभिः अदृष्टकवाटपट्टसंघट्टस्फुटित ललाटपट्टरुधिरपटलेन पटान्तेनेव रक्तांशुकस्य मुखमाच्छाद्य प्ररुदतीं, सन्तापबलविलीनकनकवलयरसध ारामिव वेत्रलतामुत्सृजन्ती, मुखमरुत्तरंगितामुत्तरीयांशुकपटीं स्फुरन्तीं फणिनीव निर्मोकमञ्जरीमाकर्षयन्ती, नम्रांसस्रंसिनानिलविलोलेन नीलतमेन तमालपल्लवचीरचीवरेणेन शोकोचितेन धम्मिल्लरचना रहितेन शिरोरुहसंचयेन चञ्चता प्रावृतकुचा, कुचताडनपीडया समुच्छूनाताम्रश्यामतलं मुहुर्मुहुरत्युष्णाश्रुप्रमार्जनप्रदग्धमिव करकिसलयं धुनाना, चक्षुर्निर्झरै शीर्यंति स्नपयन्तीव शोकाग्निप्रवेशाय स्वकपोलतल प्रतिविम्बितमासन्नलोकं, लोललोचनप्रवृत्तै-स्तरलैस्तारकांशुभिः श्यामायमानमात्मदुःखेन दिवसमपि दहन्तीव 'क्व कुमारः क्व कुमारः?' इति प्रतिपुरुषं प्रच्छन्ती, वेलेति नाम्ना यशोमत्याः प्रतीहार्याजगाम। विषण्णलोकलोचनप्रत्युद्गता चोपसृत्य कुट्टिमन्यस्तहस्तयुगला गलन्तीभिः सिञ्चन्तीव शुष्यन्तं दशनदीधितिधराभिराधूसर मधरमधोमुखी विज्ञापितवती – देव! परित्रायस्व परित्रायस्व। जीवत्येव भर्तरि किमप्यवसितं देव्या' इति।

व्याख्या – *अन्यस्मिन्नहनि अपरे दिवसे अहर्निति दिवसः 'घस्त्रो दिनाहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरावित्यमरः' समीपमस्य अस्य हर्षस्य निकटे पार्श्वदेशं वा, राजकुलाद् राजभवनादिति, राजकुलसम्बन्धात् वा 'संगतिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ इत्यमरः' द्रुतगतिवशविशीर्यमाणालङ्कारझाङ्कारिणी झटित्यागमनकारणात् द्रुतं शीघ्रं 'शीघ्रं त्वरितं लघुक्षिप्रमरं द्रुतमित्यमरः' विशीर्यमाणः स्खलद्भिः अलंकारैः आभूषणैः झांकारशब्दयुक्ता , अर्थात् द्रुतगत्यागमनवशात् शरीरादलंकारस्खलनेन या झंकारशब्दमयी आसीत् सा प्रतिहारिणी समाजगामेत्यन्वयः' विजयघोषेणेव विजयकालिकी या उद्घोषणा भवति तद्वत् विषादस्य दुःखस्य आकुलचरणचलत्तुलाकोटिक्व-णितवाचालिताभिरुद्ग्रीवाभिः, व्याकुलतावशात् चरणयोः चलति या तुलाकोटि नुपुरः 'पादाङ्गदं तुलोकोटी मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियामित्यमरः' तस्य नूपुरस्य क्वणितेन सुमध*

ुरवाचा वाचालिता मुखरीकृता या ताभिः (हंसीभिरित्यस्य विशेषणम्) उर्ध्वमुत्थिता ग्रीवा यासां ताभिः हंसीभिः, किं किमेतदिति प्रभाकरवर्धनस्य मरणजनितसमाचारविषयम्प्रति किं किम् एतत्सर्व किस्तीति, पृच्छ्यमानेव प्रश्नं कुर्वाना इव, दूरादेव दूरदेशादेव न तु पार्श्वदेशमागत्य, भवनहंसीभिः राजभवने स्थिताः या : हंसिन्यः ताभिः, , वाष्पान्धा वाष्पं नयननिर्गताश्रुः तेन वाष्पेण अन्धतां गता या सा प्रतिहारी नयनयोरश्रुस्रवणेन दृष्टिबाधनं भवत्येव, स्खलितविशालश्रोणिशिञ्जा- नरशनानुराविणीभिश्च स्खलिता अधस्तादागता विशालः विस्तृतः श्रोणिभागः नितम्बस्थलं तस्मात् सिञ्जाना मधुरशब्दं कुर्वाणा स्वनन्ती वा या रशना मध्यभागालंकारः 'स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकीरशना तथेत्यमरः' तस्याः रशनायाः अनु पृष्ठं रावं शब्दं करोति या सा अनुराविणी ताभिः, गृहसारसीभिः गृहे स्थिता पालिता पोषिता या सारसी सारसनामधेयपक्षिणो पत्न्यः ताभिः समुपदिश्यमानमार्गेव समुपदिष्टो भवति मार्गो पन्था यस्या कृते तादृशी सा प्रतिहारिणी , अर्थात् प्रतिहारिण्याः रशना यदा शब्दं करोति तदा तच्छब्दानुकारिण्यो सारस्यो भवन्ति तेन प्रतीयते यत् ताः सारस्यः तस्यै प्रतिहारिण्यै मार्गनिर्देशं कुर्वन्तीति। अदृष्टकवाटपट्टसंघट्टस्फुटितललाटपट्टरुधिरपटलेन न दृष्टः अदृष्टः यः कवापट्टः द्वारस्थितकवाटफलकः तेन संघट्टनेन अनायासाघातेन स्फुटितां भग्नतां गतो यो ललाटपट्टः भालफलकः तस्मात् निस्सतं प्रवाहितं यत् रुधिरस्य शोणितस्य पटलं समूहः धारेत्यर्थः तेनैव रक्तांशुकस्य रक्तवर्णीयवस्त्रस्य अंशुकं वस्त्रम्, 'वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकमित्यमरः' पटान्तेनेव पटस्य वसनस्य अन्तो भागः अञ्चल इति तेनाञ्चलेन इव मन्ये मुखमाच्छाद्य मुखं आननं 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखमित्यमरः' आवृत्य प्ररुदती रोदनं कुर्वती (प्रतीहारी), सन्तापबलविलीनकनकवलयरसधारामिव स्वामिमरणजनिततापस्य दुःखस्य बलात् विलीनः स्खलितो यो कनकवलयः शरीरस्य दौर्बल्यात् कनकवलयस्य भ्रंशनं समुचितेव तस्य रसधाराम् इव वेत्रलतामुत्सृजन्ती,वेतसदण्डं उत्सृजन्ती त्यजन्ती, प्रतिहारिण्याः हस्ते सततं भवति वेतसदण्डः। यथा दौर्बल्यात् कनकवलयस्यभ्रंशनमभवत् तथैव मन्ये तया वेत्रलतामपि त्यक्तवती, अर्थात् तस्याः हस्ते न कनकवलयो वर्तते न वेत्रदण्डः। मुखमरुत्तरंगितामुत्तरीयांशुकपटीं मुखन्निर्गतेन मरुता पवनेन श्रमाधिक्यात् मुखादेव श्वासग्रहणं त्यागश्च भवतीति प्रतीयते, तस्यैव पवनस्य वेगात् तरंगिता उद्धूयमाना उच्चावचत्वं गम्यमाना उत्तरीयांशुकस्य द्वितीयवस्त्रस्य 'वासश्चैलं वसनमंशुकमित्यमरः' स्तनावरणस्येति भावः वसनस्य अन्तिमो भागो यस्याः सा प्रतीहारिणी, स्फुरन्तीं

उद्धूयमानांशुकपटीमिति, फणिनीव फणी सर्प: 'कुण्डली गूढपाचक्षु:श्रवा: काकोदर: फणीत्यमर:' तस्य सर्पस्य स्त्री फणिनी तद्वत् मन्ये निर्मोकमञ्जरीमाकर्षयन्ती निर्मोक: सर्पस्यत्यक्तचर्म कञ्चुक इति'समौ कञ्चुकनिर्मोकावित्यमर:' तस्य मञ्जरींवल्लरीं 'वल्लरिर्मञ्जरीस्त्रियावित्यमर:' बलात् गृह्णन्ती, अर्थात् मुखमरुता प्रंखतीमंशुकपटीं सा तथा गृह्णाति येन प्रतीयते यत् काचित् सर्पिणी स्वनिर्मोकपट्टं गृह्णाति। , नम्रांसस्रंसिनानिलविलोलेन नम्रीभूतौ यौ अंसौ स्ककन्धदेशौ 'स्कन्धो भुजशिरोऽस: इत्यमर: तस्मात् स्थानात् स्रंसिना स्खलितेन अनिल: पवन: तेन पवनेन यो विलोलतां चञ्चलतां गत: तादृशेन नीलतमेन अत्यधिकनीलवर्णीयेन, कृष्णवर्णीयेनेति भाव:, तमालपल्लवचीरचीवरेण -तमालस्य य: पल्लव: पत्रगुच्छ: तन्निर्मितचीरचीवरेण वस्त्रेण शोकोचितेन शोकस्यौचित्यपूर्णेन शोककाले कृष्णवसनधारणस्यैचित्यात् धम्मिल्लरचनारहितेन धम्मिलस्य केशसंयमनस्य 'धम्मिलं संयता कचा:' रचना बन्धनं तस्मात् रहितेन शून्येन अर्थात् विकीर्णेन चञ्चता चञ्चलेन शिरोरुहसंचयेन शिरोरुहा: केशा: तेषां सचय: समूह: केशसमूहेनेति भाव:, प्रावृतकुचा प्रावृतौ आवृतावाच्छादितौ कुचौ स्तनौ 'स्तनौ कुचावित्यमर:' यस्या: सा, कुचताडनपीडया शोकवशात् कुचयो: स्तनयो: ताडनं कुचताडनं तेन समुत्पन्ना या पीडा कष्टं तया पीडया, समुच्छूनाताम्रश्यामतलं समुच्छूनं स्फीतं पूर्णरूपेण परिवर्तितं आताम्र रक्तवर्णीयं श्यामतलं कृष्णं तलं यस्य तत् अर्थात् बारम्बारं ताडनेन रक्तवर्णीयं करतलं कृष्णवर्णीयमभवदिति भाव:, मुहुर्मुहुरत्युष्णाश्रुप्रमार्जनप्रदग्धमिव मुहुमुर्हु: बारम्बारं पौन:पुण्येन अत्युष्णं अत्यधिकतप्त: य अश्रु: नयनजलं शोकाश्रुण: उष्णत्वमेव प्रसिद्धम्, तस्य प्रमार्जनं प्रौञ्छनेन प्रद्ग्धं अग्नितापात् ज्वलितमिव करकिसलयं कर: एव किसलय: नवीनपत्रं , तादृशं करं हस्तं, धुनाना कम्पयन्ती (प्रतीहारी) स्वकपोलतलप्रतिविम्बितमासन्नलोकं स्वकीये कपोलस्य गण्डस्य यत् तलं उपरितनो भाग: तस्मिन् प्रतिविम्बरूपेण परिदृश्यमानं प्रतिविम्बितं आसन्ना: अग्रे समुपस्थितो यो लोक: परिजनो तं, शीर्यति प्रवाहिते चक्षुर्निर्झरि चक्षु: नयनम् एव निर्झर: पर्वतात् निपतिष्यमाना धारा प्रस्रवण इति 'उत्स: प्रस्रवणो वारिप्रवाहो निर्झरो झर: इत्यमर:' तस्मिन् अर्थात् नयनयोर्या अश्रुधारारूपनिर्झरो प्रवहति तस्मिन्, स्नपयन्तीव स्नानं कारयन्तीव शोकाग्निप्रवेशाय शोकरूपो यो अग्नि: तस्मिन्नग्नौ तस्य लोकस्य प्रवेशाय, अर्थात् अग्निप्रवेशात् प्राक् लोकं सा नयनाश्रुधारया स्नापयति स्म, यतोहि शोकरूपाग्नौ सर्वे प्राय: प्रविष्टा एवासन् . लोललोचनप्रवृत्तैस्तरलैस्तारकांशुभि: लोलं चञ्चलं यल्लोचनं नयनं 'लोचनं नयनं

नेत्रमित्यमरः' तयोः नयनयोः प्रवृत्त प्रस्फुटितैः तरलैः चञ्चलैः तारका कनीनिका 'तारकाक्ष्णा कनीनिकेत्यमरः' नयने प्रचलति यः श्यामविन्दुः तस्य अंशुभिः किरणैः 'किरणोऽस्त्रीमयूखांशुरित्यमरः' श्यामायमानम् कृष्णतामागम्यमानम् दिवसमपि दिनमपि, आत्मदुःखेन आत्मोत्थितेन शोकेन दहन्तीव ज्वालयन्तीव प्रतीहारी, 'क्व कुमारः क्व कुमारः?' इति प्रतिपुरुषं तत्र ये जनाः उपस्थिताः तान् सर्वान् पृच्छन्ती, वेलेति नाम्ना या वेला इति नाम्ना ख्याता आसीत् सा प्रतीहारी, यशोमत्याः हर्षस्य मातुर्नाम यशोमती तस्याः प्रतीहारी द्वापालिका आजगाम समागतवती। विषण्णलोकलोचनप्रत्युद्गता विषण्णानां विषादयुक्तानां लोकानां जनानां लोचनभूतो हर्षः, तम्प्रति समुद्गता सहसैवागता सा प्रतीहारी च उपसृत्य हर्षस्य नयनसमक्षमागत्य कुट्टिमन्यस्त हस्तयुगला कुट्टिमः मणिखचिता भूः ''कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूरित्यमरः' भवनस्य भूतलभागः,तस्मिन् भूतले न्यस्तं स्थापितं हस्तयुगलं करद्वन्द्वो यया सा, गलन्तीभिः स्रवद्भिः पतन्तीभिः दशनदीधितिधाराभिः दशनानां दन्तानां या दीधितिः किरणाः श्वेतदीप्तिरिति भावः,'भानुःकरो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिस्त्रियामित्यमरः' तस्याः दीप्तेर्या धारा ताभिः धाराभिः नयनाश्रुप्रवाहैः, शुष्यन्तं शुष्कतां गच्छन्तं आधूसरम् धूसरवर्णीयं अधरं दशनच्छदं 'ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससवित्यमरः' सिञ्चन्तीव अधोमुखी अधस्तात् मुखं यस्याः सा प्रतीहारी विज्ञापितवती बोधितवती - देव! राजन्! परित्रायस्व परित्रायस्व रक्षस्व रक्षस्व, जीवत्येव यदा जीवितो वर्तते भर्ता स्वामी तदैव किमपि किमपि अकरणीयकार्य अध्यवसितं कृतं देव्या स्वामिन्या यशोमत्या' इति।

हिन्दी - दूसरे दिन रानी यशोमती की प्रतिहारिणी जिसका नाम वेला था राजभवन से हर्ष के पास पहुँची, शीघ्रता से चलने के कारण जिसे टूटते गिरते अलंकारों की झनकार से वह स्वयं झंकृत हो रही थी। ऐसा लग रहा था मानो विषाद की विजयघोषणा हो रही हो। व्याकुल चरणों के इधर उधर रखे जाने के कारण चंचल नूपुर की आवाज को सुनकर भवन की हंसिनियाँ गर्दन उठाकर मानो दूर से ही पूछ रही थी कि यह क्या हो रहा है? जिसके विशाल नितम्बस्थल से किंकिणी के खिसक जाने के कारण आवाज करती हुई किंकिणी की आवाज का अनुसरण करती हुई गृहसारसियाँ मानो उसे मार्ग दिखा रही थी। आँखों में आँसू आ जाने के कारण नहीं दिखाई पड़नेवाले किवाड़ से टकरा जाने से जिसके भालतल से बहती शोणित धारा मुख पर ऐसी लग रही थी मानो वह लाल कपड़े से अपना मुख ढककर रो रही हो। सन्ताप की अधिकता के कारण स्खलित होते कनकवलय की धारा की तरह

मानो वह वेत्रदण्ड को भी छोड़ चुकी थी, मुख से निकलने वाली श्वास प्रश्वास की हवा से उसका दुपट्टा उड रहा था जिसे वह हाथों से खींच रही थी मानो कोई सर्पिणी अपना केंचुल छोड़ रही थी। झुके हुए कन्धे पर खुले बन्धन के अभाव में खुले केशपाश सरक रहे थे जो हवा के कारण हिल रहे थे, ऐसा लग रहा था मानो अत्यन्तनीलवर्ण के तमालपल्लवों की चीरचीवर(वृक्ष के छाल से बना वस्त्र) की तरह थे, जो शोक कालिक वस्त्र के योग्य ही था। इसी केशपाश से उसका स्तनयुगल आच्छादित हो रहा था। स्तनों (दुःख के कारण छाती पीटने से) को पीटने के कारण काला पड़ गया है जो हाथ वह ऐसा लग रहा है मानो बार बार अत्युष्ण गर्म आँसू को बार बार पोंछने के कारण वह हाथ जल गया था, ऐसे हाथ को हिला रही थी अर्थात् उसका हाथ काँप रहा था। बहते हुए आँख रूप झरने से मानो अपने कपोलतल पर प्रतिबिम्बित वहाँ उपस्थित सभी लोगों को दुःख के कारण अग्निप्रवेश से पहले स्नान करवा रही थी। चञ्चल आँखों में प्रवृत्त चञ्चल कनीनिकाओं से काले पड़े दिन को मानो वह अपने आत्मदुःख से जला रही थी। कुमार कहाँ है? कुमार कहाँ हैं? ऐसा हर एक पुरुष को पूछती हुई वहाँ आयी। विषादपरिपूर्ण लोगों के लोचन(आँख) श्रीहर्ष के समीप आकर फर्श पर अपना दोनो हाथ रखकर झरती हुई दाँतों की उजली कान्ति की धारा से सूखते हुए एवं धूसर वर्णता को प्राप्त अधरों को भिंगोती हुई नीचा मुख करके इस प्रकार बोली - देव! रक्षा करो, रक्षा करो। पति के जीवित रहते हुए ही देवी ने कुछ कर लिया।

ततस्तदपरमाकर्ण्य च्युत इव सत्त्वेन, द्रुत इव दुःखेन, आचान्त इव चिन्तया, तुलित इव तापेन, अङ्गीकृत इवातङ्केनाप्रतिपत्तिरासीत्। आसीच्चास्य चेतसि- 'प्रतिपन्नसंज्ञस्य बहुशोऽपि हृदये दुःखाभिषङ्गो निपतन्नश्मनीव लोहप्रहारः कठिने हुतभुजमुत्थापयति न तु भस्मशात्करोति मे निरनुक्रोशस्य कायम्' इति। उत्थाय च त्वरमाणोऽन्तःपुरमगात्। तत्र च मर्तुमुद्यतानां राजमहिषीनामश्रृणोद् दूरादेव - तात चूत! चिन्तयात्मानं प्रवसति ते जननी। वत्स जातीगुच्छ! गच्छाम्यापृच्छस्व माम्। मया विनाद्यानाथा भवसि। भगिनि! भवनदाडिमलते! रक्ताशोक! मर्षणीयाः पादप्रहाराः

कर्णपूरपल्लवभङ्गापराधाश्च। पुत्रक! अन्तःपुरबालबकुलकवारुणी गण्डूषग्रहणदुर्ललित! दृष्टोऽसि। वत्से प्रियङ्गुलतिके! गाढमालिङ्ग मां दुर्लभा भवामि ते! भद्र भवनद्वारसहकारक! दातव्यो निवापतोयाञ्जलिरपत्यमसि। भ्रातः पञ्जरशुक! यथा न विस्मरसि माम्, किं व्याहरसि दूरीभूतास्मि ते? सारिके! स्वप्ने नः समागमः पुनर्भूयात्। मातः मार्गलग्नं कस्य समर्पयामि गृहमयूरकम्? अम्ब! सुतवल्लालनीयमिदं हंसमिथुनं, मन्दपुण्यया मया न सम्भावितोऽस्य चक्रवाकयुगलस्य विवाहोत्सवः। मातृवत्सले! निवर्तस्व गृहहरिणिके! समुपनय सौविदल्ल! वल्लभवल्लकीं परिष्वजे तावदेनाम्। चन्द्रसेने! सुदृष्टः क्रियतामयं जनः। बिन्दुमति! इयं तेऽन्त्या वन्दना। चेटि! मुञ्च चरणौ। आर्ये कात्यायनिके! किं रोदिषि, नीतास्मि दैवेन। तात कञ्चुकिन्! किं मामलक्षणां प्रदक्षिणीकरोषि। धात्रेयि! धारयात्मानं किं पादयोः पतसि। भगिनि! गृहाण मामपश्चिमां कण्ठे। कष्टं न दृष्टा प्रियसखी मलयवती। कुरङ्गवति! अयमामन्त्रणाञ्जलिः। सानुमति! अयमन्त्यः प्रणामः। कुवलयवति! एष तेऽवसानपरिष्वङ्गः। सख्यः! क्षन्तव्याः प्रणयकलहाः' इत्येवंप्रायानालापान्।

व्याख्या - *ततः तदनन्तरं ,पितुर्मरणवार्ताश्रवणस्य पश्चात्, तदपरम् तत् प्रतीहारीमुखान्निर्गतं वाक्यं, अपरं द्वितीयं शोककारणं, आकर्ण्य श्रुत्वा, च्युतः स्खलितः, इव मन्ये, सत्त्वेन धैर्यादिसत्वगुणेन, अर्थात् अपरशोकं निशम्य धैर्यात स्खलितो बभूवेति मन्ये, द्रुत द्रवीभूतोऽभवत् इव दुःखेन समागतदुःखकारणेनेति भावः, आचान्त पीतः इव चिन्तया चिन्तानामधेयव्यभिचारिभावेन, तुलित तुलनां नीतः परिमापितो वा ,इव तापेन शोकजनितान्तःउष्मणा, अङ्गीकृत स्वकृतः स्वबाहौ समावेशितः इव आतङ्केन पौनः पुण्येन समागम्यमानशोककारणेन अप्रतिपत्तिः किंकर्तव्याविमूढता आसीत्। आसीत् च अस्य हर्षस्य चेतसि अन्तःकरणे 'प्रतिपन्नसंज्ञस्य लब्धचैतन्यस्य प्रतिपन्ना संज्ञा चैतन्यं यस्य, बहुशोऽपि बहुवारमागतोऽपि हृदये चेतसि दुःखाभिषङ्गो शोकेन पराभवः 'अभिषङ्गः पराभवः इत्यमरः' निपतन्नश्मनि प्रस्तरे 'अश्मानः शिला*

दृषदित्यमर:' निपतन् इव लोहप्रहार: लौहस्य आयसस्य प्रहार:, (लौहेन निर्मीयते घन:) कठिने कठोरे हुतभुजम् वह्निम् 'हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहन: इत्यमर:' उत्थापयति उत्पादयति न तु भस्मशात्करोति भस्मवत् न करोति, मे मम हर्षस्य निरनुक्रोशस्य निर्दयस्य निर्गत: अनुक्रोश: दया यस्य तादृशस्य 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽप्यथो हस: इत्यमर:' कायम् शरीरम् 'कायो देह: क्लीवपुंसोरित्यमर:' इति। उत्थाय स्वासनादुत्थितो भूत्वा च त्वरमाण: शीघ्रतां कुर्वन् अन्त:पुरम् राजपत्न्या: निवासस्थानं अगात् गतवान्। तत्र देव्या: भवने च मर्तुमुद्यतानां मरणं वरीतुं उद्यता: सज्जा: या: महिष्यस्तासां ,पत्युर्मरणानन्तरं पातिव्रत्यनिर्वोढुं तेन सहैवाग्नौ प्रवेष्टुं सज्जा भवन्ति कुलपत्नय:, राजमहिषीनाम् राजपत्नीनां , तादृशी राजपत्नी यस्या: राजपत्नीत्वेनाभिषेको भवति, 'कृताभिषेका महिषीत्यमर:' अशृणोद् श्रुतवान् दूरादेव दूरदेशादेव न तु पार्श्वं गत्वा - तात चूत! अयि पुत्रस्वरूपरसाल! 'आम्रश्चूतो रसालोऽसावित्यमर:' चिन्तयात्मानं स्वकीयमात्मानं चिन्तय चिन्तां कुरु स्वात्मन: इति भाव:, स्वजीवनस्य चिन्ता स्वयमेव त्वया विधेयेति तात्पर्यम्। यतोहि इदानीं, प्रवसति दूरदेशं याति ते तव जननी माता 'जनयित्री प्रसूर्मातेत्यमर:'परञ्चात्र भरणपोषणकर्त्रीरूपेण मातेति भाव: । वत्स जातीगुच्छ! अयि पुत्र जातीपुष्पस्य स्तवक! गच्छामि -इत: त्वदग्रदेशात् क्वचिदन्यत्र गच्छामि, आपृच्छस्व आलिङ्ग माम्, ममालिंगनं कुर्विति भाव:, दूरगमनकाले आलिंगनस्य व्यवहारदर्शनात्। मया विना यशोमत्या विना अर्थात् मादृशीनां जननीनामभावात् अद्य अस्मात्कालादेव अनाथा असहाया न नाथो यस्य स अनाथ: स्त्रीलिंगे अनाथेति, भवसि। भगिनि! स्वसे! 'भगिनी स्वसेत्यमर:' भवनदाडिमलते! राजप्रासादे या दाडिमीनां लता वल्लरी तत्सम्बोधने! अर्थादयि दाडिमलते! इत: आरभ्य मया विना त्वमनाथा भवसीति चिन्तय। रक्ताशोक! अयि रक्तवर्णीयाशोकवृक्ष! मर्षणीया: क्षन्तव्या: पादप्रहारा: पादाभ्यां कृता: प्रहारा: आघाता:, पादाघातेनावपमाननं भवतीति मत्वा क्षमायाचनमत्र दृश्यते। अशोके पुष्पाभावे पादप्रहारो विधीयते स्त्रिया येन पुष्पविकासो जायते। उक्तं यथा -

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति बकुलस्सीधुगण्डूषसेकात्।
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो मेरुर्गिरान् विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकार:।।

कर्णपूरपल्लवभङ्गापराधश्च कर्णभूषणस्य निर्माणाय त्वत्पल्लवभंगाज्जातापराधोऽपि क्षन्तव्य इति, कर्णपूरः कर्णाभूषणमेव 'पुंस्युत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरे च शेखरे इत्यमरः' कर्णाभूषणनिर्माणाय स्त्रियः अशोकपल्लवं गृह्णाति। अतएवाशोकस्य कृते अपराधिन्यो राजमहिष्य:।

पुत्रक! अन्तःपुरबालबकुलक! अयि . पुत्रस्वरूप अन्तःपुरस्योद्यानस्थितबालबकुलनामधेयवृक्ष! वारुणीगण्डूषग्रहणदुर्ललित! वारुणी नाम मदिरा तस्याः मदिरायाः गण्डूषस्य मुखनिर्गतस्य ग्रहणेन स्वीकरणेन दुर्लिलित् दुर्विनीत! दृष्टोऽसि त्वमपि मम नयनयोः प्रत्यक्षमागतवानित्येवालं तव कृते 'मदिरायाः गण्डूषसेकेन बकुलस्य पुष्पसमृद्धिर्जायते' बकुलस्सीधुगण्डूषसेकात्' इति साहित्यसिद्धान्तात्। वत्से प्रियङ्गुलतिके! प्रियङ्गोर्या लता सा पुत्रीवत् पालिता वर्तते अतः पुत्रीवत् सम्बोधनम्। गाढमालिङ्ग मां प्रगाढं स्नेहाधिक्यात् ममालिंगनं कुर्विति, ' दुर्लभा दुःखपूर्वकं लब्धुं योग्या असम्भवेति भावः, भवामि ते। इतः परं त्वत्कृते मत्सहयोगः मद्दर्शनं वा दुर्लभमेव भविष्यतीति तात्पर्यम्। भद्र कल्याणकारिण् 'श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभमित्यमरः' भवनद्वारसहकारक! भवनस्य राजप्रासादस्य द्वारस्थित सहकारस्य वृक्ष! दातव्यो दातुं योग्यः, निवापतोयाञ्जलिः तोयः जलं निवापतोयं भवति पितृनुद्दिश्य दीयमानजलं तस्य जलस्य अंजलिः त्वया देय इति तात्पर्यम्। अपत्यमसि पुत्रोऽसि त्वमिति। पुत्रस्य कर्तव्यं भवति पित्रे निवापाञ्जलिदानम्। 'पितृदानं निवापः स्यादित्यमरः'। भ्रातः पञ्जरशुक! पञ्जरस्थितशुक! त्वं मम भ्रातृवदसि। यथा न विस्मरसि माम् येन त्वं मां न विस्मरिष्यसि तथा कुर्विति भावः। किं व्याहरसि किं वदसि ? दूरीभूतास्मि ते? त्वामपहाय दूरं गच्छामीति। सारिके! स्वप्ने शयने दृश्यमाने नः अस्माकं सारिकायाः महिषीनां च, समागमः सम्मेलनं पुनर्भूयात् पुनर्भवेत्। इदानी तु महिषीनामग्निप्रवेशकारणात् सम्मेलनवियोगो भवति, परन्तु स्नेहाधिक्यादाशा भवति यत् स्वप्ने अस्माकं स्यात्सम्मेलनम्। मातः! मार्गलग्नं मार्गे पथि स्थितं मार्गावरोधमुपस्थाय स्थितं , कस्य कस्य जनस्य हस्ते समर्पयामि परित्यजामि सम्यक्परिपालनाय गृहमयूरकम् गृहे स्थितं पालितं मयूरं शिखिनम्? अम्ब! सुतवल्लालनीयमिदं पुत्रवत् स्नेहेन लालयितुं योग्यं हंसमिथुनं हंसस्य युगलम्। मन्दपुण्यया मन्दं स्वल्पमभवत् पुण्यं यस्याः सा मन्दपुण्या तया, मया यशोमत्या वाऽन्यमहिष्या न सम्भावितः न सम्पादितः अस्य चक्रवाकयुगलस्य चक्रवाकनामधेयपक्षिद्वन्द्वस्य विवाहोत्सवः पाणिग्रहणरूपोत्सवः उपयम इति 'विवाहोपयमौ समावित्यमरः'। विवाहोत्सवे वरः कन्यायाः पाणिं गृह्णातीत्यतः

पाणिग्रहणमपि। मातृवत्सले! मातुः कृते: वत्सलः स्नेहयुक्तः, स्त्रीलिंगे वत्सलेति 'श्रीमान् स्निग्धस्तु वत्सलः इत्यमरः' निवर्तस्व परावर्तनं कुरु, स्वस्थानं गच्छ, गृहहरिणिके! गृहे अस्माभिः स्नेहेन पालिते हरिणिके!। सौविदल्ल! कञ्चुकिन् 'सौविदल्लाः कञ्चुकिनः इत्यमरः' समुपनय ममाग्रे उपस्थितं कुरु, वल्लभवल्लकीं वल्लभस्य पत्युः 'दयितं वल्लभं प्रियमित्यमरः' वल्लकीं वीणां 'वीणा तु वल्लकीत्यमरः' परिष्वजे आलिंगयामि तावत् एनाम् वल्लकीम्। चन्द्रसेने! सुदृष्टः क्रियतामयं जनः, अमुं जनं सुन्दरतया पश्येति भावः चन्द्रसेनां सम्बोध्य। बिन्दुमति! इयं वन्दना यां वन्दनामधुना प्रस्तौषि सा ते तव अन्त्या अन्तिमा वन्दना वर्तते। इतः परं वन्दनाया अवसरो नास्ति त्वत्कृते। चेटि! दासि! दासाः भवन्ति चेटाः चेटकाः वा, तस्यैव स्त्रीलिंगे चेटीति 'भृत्ये दासेरदासेयदारसगोप्यकचेटकाः इत्यमरः' मुञ्च चरणौ मम पादयुगलं त्यज। आर्ये माननीये! कात्यायनिके! एतन्नामधेये! किं रोदिषि, कथं रोदनं करोषीति, नीतास्मि गृहीतास्मि दैवेन भागधेयेन 'दैवं दिष्टं भागधयेमित्यमरः' तातकञ्चुकिन्! मत्कृते श्रेष्ठ कञ्चुकिन! किं कथं माम् राजमहिर्षी अलक्षणां लक्षणं चिह्नं न सुन्दरं लक्षणं यस्याः सा अलक्षणेति, तादृशीं मां, 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमित्यमरः' प्रदक्षिणीकरोषि प्रदक्षिणा चतुर्दिक्‌भ्रमणं, तथा कथं करोषीति भावः। श्रेष्ठनां पूज्यानां भवति प्रदक्षिणा। इदानीं महिषी स्वामलक्षणां जानाति, अतएव प्रदक्षिणातो निवारयति कञ्चुकिनम्। धात्रेयि! धात्री भवत्युपमाता, तस्याः पुत्री धात्रेयी, तस्याः सम्बोधनमिदम्, 'धात्री स्यादुपमातापीत्यमरः' धारयात्मानं आत्मानं स्वहृदयं धारय स्वस्थं कुरु, अधैर्यधारिणी मा भव, किं कथं ,पादयोः मम चरणयोः पतसि। भगिनि! स्वसे! गृहाण स्वीकुरु मामपश्चिमां पुनरागमनाद्रहितां माम् कण्ठे। अहं पुनर्नागमिष्यामीति कृत्वेदानीमेव मामालिंगेति भावः। कष्टं दुःखं यत् न दृष्टा दृष्टिगोचरा नाभवत् प्रियसखी मलयवती, कुरङ्गवति! अयमामन्त्रणाञ्जलिः अयं प्रणामाञ्जलिः। सानुमति! अयमन्त्यः प्रणामः। कुवलयवति! एष तेऽवसानपरिष्वङ्गः अवसानं समाप्तिकालः तात्कालिको परिष्वंगः आलिंगनम्। अतः परमालिंगनं न भविष्यतीति भावः। सख्यः! क्षन्तव्याः प्रणयकलहाः प्रणये प्रेम्णि स्नेहेन यः कलहाः विग्रहाः वैरतायाः भावनाः जाताः ताः क्षन्तव्याः इति,कदाचित् इत्येवंप्रायानालापान् एवम्प्रकारकवचनानि अशृणोदित्यन्वयः पूर्वतः योज्यः।

हिन्दी - इसके बाद उस दूसरे शोक को सुनकर हर्ष किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये,मानो बलं से च्युत हो गये हों, मानो चिन्ता ने उन्हें पी लिया हो, मानो तापों से

उसे तौल दिया गया हो, मानो शिथिलता ने उसे गोद में बिठा लिया हो। उस समय उनके हृदय में यह विचार आया कि - चैतन्यपूर्णलोगों के हृदय पर बार बार दु:खों का प्रहार उसी प्रकार आग उत्पन्न करता है जैसे पत्थर पर लोहे का प्रहार करता है। पर वह आग इस शरीर को भस्मशात् नहीं करती है। वहाँ से उठकर शीघ्रतावश अन्त:पुर में चले गये। वहाँ दूर से मरने को उद्यत राजमहिषियों (रानियों) के आलाप विलाप को सुना। तात चूत! अब अपने विषय में स्वयं सोचो क्योंकि तुम्हारी माता अब जा रही है। वत्स जातिगुच्छ! मैं जा रही हूँ, कुछ बातें कर लो। अरी बहन! भवन में विकसित दाडिमलते! मेरे विना अब तुम अनाथ हो जा रही हो। अरे लाल अशोक! क्षमा कर दो कि मैने तुम पर अपने पैरों का प्रहार किया था और अपने कानों का आभूषण बनाने के लिये तुम्हारे पल्लव तोड़े थे। अरे मेरे पुत्र! अन्त:पुर में रहनेवाले बालबकुल! मदिरा के गण्डूष (मदिरा पीकर कुल्ला करना) को ग्रहण करने से दुर्ललित! तुम्हें मैंने देख लिया है। अरी पुत्रि! पियंगुलतिके! मेरा गाढ़ आलिङ्गन करो। अब मैं तेरे लिये दुर्लभ हो जाऊँगी। अरे कल्याणकारिण! भवन के द्वार पर स्थित सहकार! तुम मेरे बेटे हो। मुझे निवापाञ्जलि (पितरों को दिया जानेवाला जल) अवश्य देना। अरे भाई पिंजरे के तोते! मुझे भूलना मत। मैं अब तुमसे दूर जा रही हूँ। अरी सारिके! स्वप्न में पुन: हमारा तुम्हारा मिलन हो। मात:! मार्ग रोककर खड़े इस मयूर को मैं किसे समर्पित करूँ (किसके साथ लगा दूँ।) अम्ब! पुत्र की तरह इस हंसमिथुन का पालन करना। अल्प पुण्यवाली मैंने इस चक्रवाकयुगल का विवाह भी नहीं कराया। माता से प्रेम करनेवाली घर में रहनेवाली मृगी! लौट जाओ। कञ्चुकिन! मेरे पति का वीणा लाओ, तब तक उसका आलिङ्गन कर लूँ। चन्द्रसेने! इस आदमी का खयाल रखना। विन्दुमति! ये तुम्हारी अन्तिम प्रार्थना है। चेटि! पैर छोड़ो। आर्ये कात्यायनि! क्यों रो रही हो? मैं तो भाग्य के द्वारा बुलायी गयी हूँ। तात कञ्चुकिन्! मुझ जैसी कुलक्षणी की परिक्रमा क्यों कर रहे हो? धात्रेयि! अपने को सम्हालो, क्यों पैरों पर गिर रही हो? बहन! पुन: नहीं मिलनेवाली बहन के कण्ठ से लग जाओ। कष्ट है कि अभी तक मलयवती दिखाई नहीं दी है। कुरङ्गवति! यह आमन्त्रण की अञ्जलि है। सानुमति! यह अन्तिम प्रणाम है। कुवलयवति! यह तेरा अन्तिम आलिङ्गन है। सखियो! प्रणय कलहों को क्षमा कर देना।

दह्यमानश्रवणश्च तैः प्रविशन्नेव निर्यान्तीं दत्तसर्वस्वापतेयां गृहीतमरणप्रसाधनाम्, जानकीमिव जातवेदसं पत्युः पुरः प्रवेक्ष्यन्तीम्, प्रत्यग्रस्नानार्द्रदेहतया श्रियमिव भगवतीं सद्यः समुद्रादुत्थिताम्, कुसुम्भबभ्रुणी वाससी दिवमिव तेजसो सांध्ये दधानाम्, ताम्बूलदिग्धरागान्धाकाराधरप्रभापटपाटलं पट्टांशुकमिव विधवामरणचिह्नमङ्गलग्नमुद्वहन्तीम्, रक्तकण्ठसूत्रेण कुचान्तरावलम्बिना स्फुटितहृदयविगलितरुधिरधाराशङ्कां कुर्वन्तीम्, तिर्यक्कुटिलकुण्डलकोटिकण्टकाकृष्टतन्तुना हारेण वलितेन सितांशुकपाशेनेव कण्ठमुत्पीडयन्तीम्, सरसकुंकुमाङ्गरागतया कवलितमिव दिधक्षता चितार्चिष्मता, चितानलार्चनकुसुमैरिव धवलधवलैरश्रुविन्दुभिरंशुकोत्सङ्गमापूरयन्तीम्, गृहदेवतामन्त्रणबलिमिव वलयैर्विगलद्भिः पदे पदे विकिरन्तीमाप्रपदीनाम्, कण्ठे गुणकुसुममालां यमदोलामिवारूढाम्, अन्तर्गुञ्जन्मधुकरमुखरेणामन्त्र्यमाणलोचनोत्प लामिव कर्णोत्पलेन, प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव मणिनूपुरबन्धुभिर्बद्धमण्डलं भ्रमद्भिर्भवनहंसैः, सन्निहितप्राणसमं मरणाय चित्तमिवचित्रफलकमविचलं धारयन्तीम्, अर्चाबद्धोद्धूयमानधवलपुष्पदामकां, पतिव्रतापताकामिव पतिप्रासयष्टिमिष्टामुपगूहमानाम्, बन्धोरिव निजचारित्र्यस्य धवलस्य नृपातपत्रस्य पुरो नेत्रोदकमुत्सृजन्तीम्, पत्युः पादपतनसमुद्भमदभ्यधिकवाष्पाम्भःप्रवाहप्रतिरुद्धदृशः कथमपि प्रतिपन्नादेशान्सचिवान्सन्दिशन्तीम्, अनुनयनिवर्तितविधुरवृद्ध बन्धुवर्गवर्धमानध्वनिर्भिर्गृहाक्रन्दैराकृष्य माणश्रवणाम्, भर्तृभाषितनिभैः पञ्जरसिंहबृंहितैर्ह्रियमाणहृदयाम्, धात्र्या भर्तृभक्त्या च निजया प्रसाधिताम्, मूर्च्छया जरत्या च संस्तुतया धार्यमाणाम्, सख्या पीडया च व्यसनसंगतया समालिङ्गिताम्, परिजनेन सन्तापेन च गृहीतसर्वावयवेन परीताम्, कुलपुत्रोच्छ्वसितैश्च महत्तरैरधिष्ठिताम्,

कञ्चुकिभिर्दुःखैश्चातिवृद्धैरनुगताम्, भूपालवल्लभान्कौलेयकानपि सास्रमालोकयन्तीम्, सपत्नीनामपि पादयोः पतन्तीम्, चित्रपुत्रिकामप्यामन्त्रयमाणाम्, गृहपतत्रिणामप्यञ्जलिं पुरस्तादुपरचयन्तीम्, पशूनप्यापृच्छमानाम्, भवनपादपानपि परिष्वज्यमानां मातरं ददर्श।

व्याख्या –*दह्यमानश्रवणश्च तैः तादृशैः पूर्वलिखितैः वचनैः दग्धमिव श्रवणं यस्य तादृशो हर्षः, प्रविशन्नेव मातुर्भवने प्रवेशकाले एव, निर्यान्तीं भवनात् बहिर्गच्छन्तीं, दत्तसर्वस्वापतेयां दत्तानि सर्वानि स्वकीयानि अपतेयानि धनानि यया अन्येषां कृते तादृशीं (स्वमातरं ददर्शेत्यन्वयः)'द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु इत्यमरः' गृहीतमरणप्रसाधनाम् – गृहीतानि शरीरे धारितानि मरणकालोचित प्रसाधनानि यया (पत्युर्मरणानन्तरं पत्या सहैवाग्नौ प्रवेष्टु पतिव्रतापत्नी प्रसाधनं करोति स्म।) जानकीमिव जनकस्यापत्यं स्त्री जानकी भगवती सीता इव, जातवेदसं अग्निं जातवेदा अग्निरिति 'जातवेदास्तनूनपादित्यमरः' पत्युः स्वभर्तुः पुरः समक्षं, प्रवेक्ष्यन्तीम् प्रवेशं करिष्यमानाम्, यथा जानकी पत्युस्समक्षमेवाग्नौ प्रविष्टवती तथैवेदानी यशोमती पत्युर्दाहात्प्रागेवाग्नौ प्रवेष्टुमिच्छतीवेत्युत्युत्प्रेक्षा) प्रत्यग्रस्नानार्द्रदेहतया प्रत्युग्रे सद्यः स्नानेन आद्रः क्लिन्नं देहः शरीरं प्रत्यग्रस्नानार्द्रदेहः, तस्य भावः स्नेहार्द्रता तया, श्रियमिव श्रीः भगवती लक्ष्मी तामिव, भगवतीं देवीं, सद्यः साक्षात् समुद्रादुत्थिताम् जलनिधेः उत्पन्नां, यथा भगवती लक्ष्मी समुद्रादुत्पत्तिकाले क्लिन्नगात्रा आसीत् तथैवेदानीं यशोमतीति भावः(उत्प्रेक्षा) कुसुम्भबभ्रुणी वाससी कुसुम्भं नाम पुष्पविशेषं 'स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखमित्यमरः' तद्वत् बभ्रुवर्णीयं वस्त्रद्वयं, दिवमिव दिवः आकाशं 'द्यौदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीवे व्योम पुष्करमम्बरमित्यमरः' तद्वत् तेजसो दीप्तेः तेजः प्रभावे दीप्तौ चेत्यमरः' सांध्ये संध्याकाले दधानाम् धारयन्तीम्, यथा संध्याकाले आकाशः रक्तवर्णीयं तेजो धारयति तथैवेदानीं यशोमती रक्तवस्त्रयुगलेन शोभते इति भावः, ताम्बूलदिग्धरा-गान्धाकाराधरप्रभापटपाटलं ताम्बूलं पर्णपत्रं तस्य चर्वणेन दिग्धः लिप्तः रंजितः यो रागः रक्तवर्णः तेन अन्धकारितं पूर्णरक्तवर्णेन रक्तवर्णस्य गहनता बोधनाय अन्धकारपदप्रयोगः इत्यवधेयम् तद्वशात् अधरस्य दशनावरणसय या प्रभा कान्तिः तदेव पटं तेन पाटलं पूर्णरक्तं, पट्टांशुकमिव राजकीयवस्त्रस्त्रमिव विधवामरणचिह्नमङ्गलग्नमुद्वहन्तीम् विगतो*

धवो पतिर्यस्याः सा विधवा तस्याः मरणकालिकं चिह्नं लक्षणं 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणमित्यमरः' रक्तवर्णीयं परिधानं अधोवस्त्रं 'अन्तरीयोपसंव्यानपरिधान्यधोंऽशुके इत्यमरः' रक्तकण्ठसूत्रेण रक्तवर्णीयं यत्कण्ठभूषणभूतं सूत्रं तेन, कुचान्तरावलम्बिना कुचयोः स्तनयोः अन्तर्भागे मध्यभागे अवलम्बते यत् तेन स्फुटितहृदयविगलितरुधिरधाराशङ्कां पत्युर्मरणजनितशोकेन स्फुटितं विदीर्णं यत् हृदयं तस्मात् विगलितं स्रवितं यत् रुधिरं तस्य धारा प्रवाहः तस्य प्रवाहस्य शंकां कुर्वन्तीम्, कण्ठस्थितरक्तसूत्रं स्तनयोर्मध्ये लम्बमान आसीत् तेन प्रतीयते यत् शोकविदीर्णहृदयात् रक्तधारा प्रवहतीति, तिर्यक्कुटिलकुण्डलकोटिकण्टकाकृष्टतन्तुना तिर्यक् वक्रं कुटिलं वक्रभंगिमायुक्तं यत् कुण्डलं कर्णभूषणं तस्य भूषणस्य यो कोटिः अग्रभागः 'अत्युत्कर्षाश्रयः कोट्यो मूले इत्यमरः' तदेव कण्टकं शंकुः तेन आकृष्टः तन्तुः गुणः यस्य तेन तादृशेन वा , हारेण गलसूत्रेण, वलितेन वेष्टनकारिणा बलवदाकृष्टेनेति भावः, सितांशुकपाशेनेव सितांशुकं श्वेतवस्त्रं तदेव पाशः तेन पाशेन कण्ठमुत्पीडयन्तीम् कण्ठं गलं कषन्तीमिति भावः, हारस्य तन्तुः वक्रकुण्डलेनाकृष्ट आसीत् तेन हारः कण्ठे लग्नं जथा प्रतीयते मन्ये सा स्वप्राणत्यागाय स्वकण्ठकषणं करोति,सरसकुंकुमाङ्गरागतया रसयुक्तकुंकुमनिर्मितो यदङ्गरागः शरीरप्रसाधनाय लेपविशेषः तत्प्रभावात् , कवलितमिव कवलितं भुक्तं चर्वितं इव दिधक्षता दग्धुमिक्षता चितार्चिष्मता चिता नाम शवज्वालनायनिर्मितासनम् तज्ज्वालनाय यदर्चिष्मान् वह्निः तेन, चितानलार्चनकुसुमैरिव चितायाः अनलस्य वह्नेः 'कृशानुः पावकोऽनल इत्यमरः' अर्चनाय पूजनाय यत्कुसुमं तैः इव धवलधवलैरश्रुविन्दुभिरंशुकोत्सङ्गमापूरयन्तीम् धवलैः श्वेतैः नयनजलविन्दुभिः अंशुकस्य वस्त्रस्य उत्संगं भागं पूरयन्तीं क्लेदयन्तीम्, अर्थात् शोकस्य कारणात् देव्याः नयनयोयोश्रुविन्दुनिपतनं भवति तस्य वर्णः धवलः तेन प्रतीयते यत् चितायाः अनलस्यार्चनाय धवलपुष्पैरर्चनं विधीयते। सामान्यतया अग्नेरर्चना विधीयते अग्निदेवतोषणाय, गृहदेवतामन्त्रणबलिमिव गृहे स्थिता या कुलदेवता तस्या आमन्त्रणाय आवाहनाय बलिम् पूजनम् इव 'सपर्या तर्पणं बलिरित्यमरः' वलयैः कंकणैः 'कटको वलयोऽस्त्रियामित्यमरः' विगलद्भिः निपतद्भिः, पदे पदे प्रतिपदं विकिरन्तीम् विक्षेपयन्तीम् आप्रपदीनाम् पादाग्रं यावत् 'पादाग्रं प्रपदमित्यमरः' लम्बायमाना, कण्ठे गुणकुसुममालां गुणेन तन्तुना संयुक्ता या माला स्रक् तां, यमदोलामिवारूढाम्, यमस्य गमनस्य अन्तकस्य दोलां आरूढामिव, अर्थात् पादाग्रं यावत् कण्ठमाला तथा लम्बायमाना दृश्यते येन प्रतीयते यत् यमस्य

दोलायां आरोहति सा देवी यशोमती, अन्तर्गुञ्जन्मधुकरमुखरेणामन्त्र्यमाणलोचनोत्पलामिव कर्णोत्पलेन अन्तर्भागे गुञ्जनं कुर्वन् यो मधुकर: भ्रमरस्तेन मुखरं वाचालं यत्कर्णोत्पलं कर्णाभूषणरूपेण स्थितं नीलकमलं तेन आमन्त्र्यते नेत्ररूपकमलं यस्या तां देवीं यशोमतीं, प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव प्रदक्षिणा भवति परितो भ्रमणं (कस्यापि श्रेष्ठस्य प्रदक्षिणा भवति स्वोत्कर्षलाभाय) तां पदक्षिणां क्रियमाणं करोतीति वत् प्रतीयमान् इव, मणिनूपुरबन्धुभि मणिनिर्मितं यन्नूपुरं पदयो: स्थितमाभूषणं मञ्जीरं 'मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियामित्यमर:' बद्धमण्डल विरचितं मण्डलं चक्राकारं स्थिति:, तद्वत् भ्रमद्भि: भ्रमणं कुर्वद्भि: भवनहंसै: भवनस्थितै: हंसै: मरालै:, अर्थात् पदयो: मणिनूपुरस्य ध्वनिस्तथा भवति मन्ये भवनीहंसा: देव्या: प्रदक्षिणां कुर्वन्ति, सन्निहितप्राणसमं म्यक्तया स्थापितं प्राणसदृशं, मरणाय जीवनत्यागाय चित्तमिव चित्तं हृदयं तदिव, चित्रफलकम् चित्रस्य पत्युर्लिखितरूपस्य फलकं पट्टं अविचलं निश्चलतया धारयन्तीम् धारणं कुर्वन्तीम्, अर्चाबद्धोद्धूयमानधवलपुष्पदामकां अर्चार्थ पूजार्थ 'पूजा नमस्यापचिति: सपर्यार्चार्हणा: समा इत्यमर:' बद्धा स्थापिता गुम्फिता उद्धूयमाना वायुवेगात् फरफरायामाना धवलपुष्पानां दाम: पंक्ति: संन्दानं 'न पुंसि दाम संन्दानमित्यमर:' दाम एव दामक: अस्ति यस्मिन् तां (प्रासयष्टिमिति) पुष्पामालागुम्फितामित्यर्थ:, पतिव्रतापताकामिव पत्युस्सेवाभावरूपव्रतं धारयति या सा पतिव्रता तस्या: पताका ध्वजं चिह्नमिव 'पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियामित्यमर:' पतिप्रासयष्टिम् पत्यु: स्वभर्तु: प्रासस्य अस्त्रविशेषस्य या यष्टि: दण्ड: तां, इष्टाम् अभिलषितां उपगूहमानाम् आश्लिष्यन्तीम्, बन्धोरिव निजसुहृद: इव, निजचारित्र्यस्य निजस्य स्वस्य चरित्रस्य भाव: चारित्र्यं तस्य, धवलस्य श्वेतवर्णीयस्य नृपातपत्रस्य नृपस्य राज्ञ: प्रभाकरवर्धनस्य यदातपत्रं राजच्छत्रं तस्य पुरो समक्षं नेत्रोदकमुत्सृजन्तीम् नेत्रयो: जलं अश्रुविन्दुरित्यर्थ: उत्सृजन्तीम् त्यजन्तीम्, पत्यु: स्वभर्तु: पादपतनसमुद्गमदभ्यधिकवाष्पाम्भ: प्रवाहप्रतिरुद्धदृश: पादयो: पतनेन चरणयो: नमस्कारभाव प्रदर्शनेन समुद्गमद् उत्सृजत् अभ्यधिकं अधिकाधिकं वाष्पाम्भ: नेत्रयोरश्रुजलं तस्य जलस्य य: प्रवाह: धारा तेन प्रवाहेन प्रतिरुद्धा अवरुद्धा या दृक् दृष्टि: कथमपि केनापि प्रकारेण, प्रतिपन्नादेशान् आज्ञाकारिण: सचिवान् मन्त्रिण: 'मन्त्री सहाय: सचिवावित्यमर:' सन्दिशन्तीम् आदेशं प्रयच्छन्तीम् अनुनयनिवर्तितविधुरवृद्धबन्धुवर्गवर्धमानध्वनिर्भिर्गृहाक्रन्दैराकृष्यमाणश्रवणाम्

– अनुनयेन प्रार्थनापूर्वकम् निवर्तिता परावर्तिता ये विधुर: विकल: बृद्ध: ज्येष्ठ: बन्धुवर्ग: तस्य वर्गस्य वर्धमान: प्रसारं गम्यमानो यो ध्वनि: तै: गृहे जायमानै: आक्रन्दै: तेषां जनानां क्रन्दनस्वरै: आकृष्यमानानि श्रवणानि लोकानां यया देव्या तां, भर्तृभाषितनिभै: भर्तु: स्वामिन: यद् भाषितं कथितं तत् निभै: सदृशै: 'निभसंकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादय: इत्यमर:' पञ्जरसिंहबृंहितैर्ह्रियमाणहृदयाम् पञ्जरे लौहशलाकानिर्मितकोष्ठे ये सिहा: केशरिण: तेषां बृंहितै: दीर्घतरगर्जनै: ह्रियमानं आकृष्यमानं हृदयं यस्या: तां , धात्र्या दास्या, भर्तृभक्त्या भर्तु: स्वामिन: भक्त्या सेवाभावनया , च निजया स्वकीयया प्रसाधिताम् प्रसाधनेन शरीरालंकरणेन युक्तां, मूर्च्छया गतचेतनया मोहेन 'मूर्च्छा तु कश्मलं मोह: इत्यमर:' जरत्या बृद्धया च संस्तुतया परिचितया धार्यमाणाम् अबलम्बमानां, सख्या मित्रस्वरूपया, पीडया वेदनया च व्यसनसंगतया व्यसने विपदि 'व्यसने विपदि इत्यमर:' संगता सहचारितया स्थिता या तया समालिङ्गिताम् आश्लिष्टाम्, परिजनेन स्वं परित: स्थितेन जनेन, सन्तापेन दु:खेन च गृहीतसर्वावयवेन गृहीतो सर्वावयव: शरीरांश: तादृशेन शरीरेण, परीताम् आवृताम्, कुलपुत्रोच्छ्वसितैश्च कुलक्रमागदागता: ये पुत्रास्तनया: तेषां उच्छ्वसितै: दीर्घनि:श्वासै: च महत्तरै: दीर्घतरै: अधिष्ठितां युक्ताम्, कञ्चुकिभिर्दु:खैश्चातिबृद्धैरनुगताम् कञ्चुकि: द्वारपाल: सौविदल्ल: तै: भर्तुविनाशजनितदु:खै: अतिबृद्धै: ज्यष्ठै: अनुगताम् अर्थात् यस्या पृष्ठेदेशे बुद्धा: कञ्चुकिन: चलन्ति स्म, भूपालवल्लभान् भूपालेषु नरपतिषु ये वल्लभा: श्रेष्ठा: तान् कौलेयकान् कुलीनान् सत्कुलोत्पन्नान् 'कौलेयक: सारमेये कुलीनेपीत्यमर: अपि सास्रमालोकयन्तीम् अश्रुपूर्णनेत्राभ्यामालोकयन्तीम् सपत्नीनामपि पत्युरन्या पत्नी सपत्नी सौतन इत्यर्थ: तासामपि पादयो: चरणयो: पतन्तीम्, चित्रपुत्रिकाम् चित्रे लिखितां पुत्तलिकां अपि आमन्त्रयमाणाम् सम्भाषमानां,, गृहपतत्रिणामपि गृहे स्थिता: पालिता: पोषिता: ये पतत्रिण: पक्षिण: तेषामपि 'पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजा इत्यमर:' अञ्जलिं करयुगलं प्रणाममुद्रां पुरस्तादुपरचयन्तीम् अग्रे निर्मान्तीम् प्रदर्शयन्तीम्, पशूनप्यापृच्छमानाम्-पशूनपि सम्भाषमानाम्, भवनपादपानपि भवने स्थिता: ये पादपा: वृक्षा: तानपि परिष्वज्यमानां आलिंग्यमानां मातरं स्वजननीं ददर्श अपश्यत्।

हिन्दी – इन बातों (पूर्वोक्त) को सुनकर जिनका कान जलने लगा ऐसे हर्ष ने अपनी माता को देखा जिसने अपना सर्वस्व दान कर दिया था, जो जानकी की

तरह पति के समक्ष आग में प्रवेश करने को तैयार थी, सद्यः स्नान करने के कारण गीला बदन होने से ऐसी लग रही थी मानो लक्ष्मी साक्षात् सागर से निकल रही हो, जो संध्याकालिक आकाश की लालिमा की तरह गेरुए रंग के वस्त्रों को धारण कर चुकी थी, ताम्बूल की लालिमा से रक्तरंजित अधर प्रभा से रंजित पट्टांशुक को अंग में लग्न विधवाओं के मरण चिह्न की तरह धारण कर रही थी, गले में लटके हुए लाल सूत्र जो स्तनों के बीच में झूल रहे थे, ऐसी शंका कर रहा था जैसे पति के वियोग के कारण विदीर्ण हुए हृदय से रक्त की धारा प्रवाहित हो रही हो, टेढे हो चुके कर्णाभूषण में फँस जाने के कारण जिस कण्ठमाला का धागा खींचा जा रहा था वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गर्दन में लपेटे हुए उजले कपड़े के फंदे से वह फांसी लगा रही हो, शरीर पर सरस कुंकुम राग का लेप होने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो जलाने की इच्छा की चिताग्नि ने उसे खा लिया हो, चिता की अग्नि के पूजन योग्य फूलों की तरह उजले उजले फूलों की अश्रुविन्दुओं से अपने कपड़े के कोने को भिंगो रही थी, कदम कदम पर उसके हाथ से कंकण गिर रहे थे, उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो गृहदेवताओं को आमन्त्रित करने के लिये वह पूजाकुसुम विखेर रही हो, पैर के अगले शिरे तक लटकती गुणकसुम ग्रथित कण्ठमाला से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो यमराज की दोला पर आरूढ हो रही हो, कान में लगे हुए आभूषण भूत नीलकमल जो मध्य बैठे मधुकरों से गुँजायमान हो रहा था, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो नेत्रोत्पल को आमन्त्रण दे रहा हो, मणि के बने नूपुर युगल का से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो भवन में घुमते हुए हंसों का समूह उनकी प्रदक्षिणा कर रहा हो, अपने प्राण के समान अपने पति के चित्रपट को मरण के समय वह अपने हृदय पर धारण कर रही थी, अपने पति के प्रिय प्रास (भाला) का आलिङ्गन कर रही थी जिसमें पूजन के लिये बाँधी गयी माला फरफरा रही थी, अपने चारित्र्य के बन्धु की तरह पति की उजले आतपत्र (छाता) के समक्ष आँसू बहा रही थी, पैरों पर गिरकर प्रणाम की प्रक्रिया को पूरा करते हुए अधिकाधिक आँसू के प्रवाह से अवरुद्ध दृष्टिवालों आज्ञाकारी मन्त्रियों को आदेश दे रही थी, अनुनय पूर्वक जिन्हें वापस लौटा दिया गया था ऐसे विकल वृद्धों के रोने की आवाज से सभी लोगों के कान को आकृष्ट कर रही थी, अपने पति की आवाज के समान पिंजरे में बन्द सिंहों की आवाज से जिसके हृदय का हरण हो रहा था, पतिभक्ति से तथा अपनी धात्री के द्वारा जो प्रसाधित हो चुकी थी(अर्थात् धात्री ने जिसका प्रसाधन कर दिया था),

वृद्धाओं के द्वारा मूर्च्छा से जो सम्हाली जा रही थी, जो सखियों से पीडा से तथा व्यसनसंगति से आलिङ्गित हो रही थी, चारों ओर स्थित परिजनों से तथा सन्तापों से जिसका सम्पूर्ण अंग मानो गृहीत हो चुका था, कुलपुत्रों के दीर्घ निःश्वासों से जो अधिष्ठित थी, अत्यन्त दुखी एवं अतिवृद्ध कञ्चुकी लोग जिसका अनुगमन कर रहे थे, कुलीन नरपतियों को अश्रुपूरित आँखों से देख रही थी, जो अपनी सौतनों के भी पैरों पर गिर रही थी, चित्रलिखित पुत्तलिकाओं का भी जो आलिङ्गन कर रही थी, घर में पाले गये पक्षियों के आगे जो हाथ जोड़ रही थी, पशुओं को भी आश्वासन दे रही थी, भवन के वृक्षों का भी जो आलिङ्गन कर रही थी, ऐसा अपनी माता को हर्ष ने देखा।

दूरादेव च वाष्पायमानदृष्टिरभ्यधात् – अम्ब! त्वमपि मां मन्दपुण्यं त्यजसि! प्रसीद, निवर्तस्व इत्यभिदधान एव च सस्नेहमिव नूपुरमणिमरीचिभिश्चुम्ब्यमानचूडश्चरणयोर्न्यपतत्। देवी तु यशोमती तथा तिष्ठति पादनिहितशिरसि विमनसि कनीयसि प्रेयसि तनये गुरुणा गिरिणेवोद्वेगावेगेनावष्टभ्यमाना मूर्च्छान्धतमसं रसातलमिव प्रविशन्ती, वाष्पप्रवाहेणेव चिरनिरोधसंपिण्डितेन स्नेह सम्भारेण निर्भराभिराविर्भूतेनाभिभूयमाना, कृतप्रयत्नापि निवारयितुं न शशाक वाष्पोत्पतनम्। उत्कटकुचोत्कम्पप्रकटितासह्याशोककूता च गद्गदिकागृह्यमाणगलविकला निःसामान्यमन्युतरलीक्रियमाणा-धरोद्देशा पुनरुक्तस्फुरणनिबिडितनासापुटा निमील्य नयने नयनाम्भःसेकप्लवेन प्लावयन्ती विमलौ कपोलौ संछाद्य करनखमयूखमालाखचिततनुना तन्वन्तरनिर्गच्छदच्छासस्रोत-सेवांशुकपटान्तेन किञ्चिदुत्तानितं वदनेन्दुं दूयमानमानसा स्मरन्ती प्रस्नुतस्तनी प्रसवदिवसादारभ्य सकलमङ्कशायिनः शैशवमस्य ज्ञातिगृहगतहृदया 'अम्ब तात! न पश्यत पापां परलोकप्रस्थितां मामेवमतिदुःखिताम्' इति मुहुमर्मुहुराक्रन्दती पितरौ 'हा वत्स'! विश्रान्तभागधेयया न दृष्टोऽसि' इति प्रेष्ठं ज्येष्ठं तनयमसन्निहितं

क्रोशन्ती,'अनाथा जाता' इति श्वसुरकुलवर्तिनीं दुहितरमनुशोचन्ती, निष्करुण! किमपराद्धं तवामुना जनेन? इति देवमुपालभमाना, नास्ति मत्समा सीमन्तिनी दुःखभागिनी' इति निन्दन्ती बहुविधमात्मानम्, 'मुषितास्मि कुतान्तनृशंस! त्वया' इत्यकाण्डे कृतान्तं गर्हमाणा मुक्तकण्ठमतिचिरं प्राकृतप्रमदेव प्रारोदीत्।

व्याख्या - *दूरादेव मातुः दूरे स्थित एव च वाष्पायमानदृष्टिः वाष्पैः अश्रुविन्दुभिर्युक्ता दृष्टिरासीत् यस्यासौ हर्षः, अभ्यधात् अवोचत् - अम्ब! मातः! 'अम्बा मातेत्यमरः' त्वमपि मां मन्दपुण्यं मन्दुं अल्पतां गतं पुण्यं यस्य तादृशं मां हर्ष , त्यजसि! त्यक्त्वा गच्छसि? प्रसीद प्रसन्ना भव, मयि कृपां कुर्वेत्यर्थः, निवर्तस्व स्वसंकल्पितप्राणत्यागरूपकार्यात् परावर्तिता भव, इत्यभिदधान इति निवेदनं कुर्वन्, एव च सस्नेहमिव स्नेह प्रेम युक्तमिवव, नूपुरमणिमरीचिभिश्चुिम्ब्यमानचूडः नूपुरं पादभूषणं तस्य नूपुरस्य या मरीचिः किरणः 'किरणोऽस्त्रिमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः इत्यमरः' ताभिः मरीचिभिः चुम्ब्यमाना स्पृश्यमाना चूडा शिखा यस्यासौ हर्षः 'शिखा चूडेत्यमरः' चरणयोः पादयोः, न्यपतत् अपतत्, प्रणाममकरोदित्यर्थः। देवी राज्ञी तु यशोमती एतदाख्या हर्षस्य माता, तथा तिष्ठति स्थितवति पादनिहितशिरसि पादयोः निहितं स्थितं शिरः यस्य तस्मिन्, विमनसि विमनायमानतां गतवति, कनीयसि लघुतरे, प्रेयसि प्रिये तनये पुत्रे 'आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः इत्यमरः' गुरुणा भारयुक्तेन गिरिणेव गिरिः पर्वतः तेन 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चया इत्यमरः' उद्वेगावेगेनावष्टभ्यमाना उद्वगेस्य शोकजनितप्रवाहस्य य आवेगः तीव्रता तया अवष्टभ्यमाना दृढमालिंग्यमाना मूर्च्छान्धतमसं मूर्च्छायाः कारणेन अन्धतमसं गहनान्धकारपरिपूर्ण, रसातलम् पातालं 'अधोभुवनपातालं बलिसद्मरसातलमित्यमरः' प्रविशन्ती प्रवेशं कुर्वन्ती, वाष्पप्रवाहेणेव वाष्पस्य नयनाश्रुणः यः प्रवाहः धारा तेन इव मन्ये चिरनिरोधसंपिण्डितेन चिरकालं यावत् निरुद्धा आसीत् या नयनाश्रुधारा तया सम्पिण्डितः एकत्रीभूतः यस्तेन स्नेहसम्भारेण स्नेहः प्रेम तस्य सम्भारः समूहः तेन प्रेमाधिक्येनेति भावः, निर्भराभिराविर्भूतेन समधिकोदयेन अभिभूयमाना, अवष्टभ्यमाना, कृतप्रयत्नापि कृतं प्रयत्नं यया सा कृतप्रयत्ना तया अपि अर्थात् प्रयत्नं कृत्वाऽपि निवारयितुं अपसारयितुं न शशाक समर्था बभूव वाष्पोत्पतनम् नयनाश्रुविन्दुनः उत्पत्तिम्। अर्थात् यशोमती प्रयत्नं कृत्वाऽपि स्वनयनाश्रुपतनं रोद्धुं समर्था न बभूव। तस्याः*

नयनयोरश्रुविन्दोरुत्पतनमभवत्। सा रुरोदेति भावः। उत्कटकुचोत्कम्प-प्रकटितासह्याशोककूता उत्कटेन उद्दामेन कुचयोः स्तनयोः उत्कम्पेन कम्पनेन प्रकटितः लोकानां पुरतः समायातो य असह्यः असहनीयः शोकः दुःखं तस्य कूतः अभिप्रायः अर्थात् स्तनयोः कम्पनेन यस्याः शोकाधिक्यस्याभिप्रायस्य प्रकटनमभवत्, च गद्गदिकागृह्यमाणगलविकला गद्गदस्वरेण गृह्यमानो अवरुद्धयमानो गलः कण्ठः तेन विकलतां गता या सा, निःसामान्यमन्युतरलीक्रियमाणाधरोद्देशा निःसामान्येन असाधारणेन मन्युना क्रोधेन तरलीक्रियमाणः चञ्चलीक्रियमाणः अधरोद्देशः अधरयोर्भागो यस्याः सा , पुनरुक्तस्फुरणनिबिडितनासापुटा पुनः उक्तः पुनरुक्तः तस्य पुनरुक्तस्य स्फुरणेन स्पन्दनेन निविडितः विचलितः नासापुटः नासिकायाः अग्रभागः यस्याः सा, निमील्य पिधाय नयने नेत्रे नयनाम्भःसेकप्लवेन नयनयोः प्रविताम्भः जलं अश्रु तस्य सेकस्य प्लवेन प्रवाहेन, प्लावयन्ती आच्छादयन्ती स्वधारायां निमज्जयन्ती विमलौ मलरहितौ स्वच्छौ कपोलौ गण्डस्थलं संच्छाद्य आच्छाद्य, करनखमयूखमालाखचिततनुना करयोः ये नखाः कराग्रजाः तेषां नखानां यो मयूखः किरणः तस्य किरणस्य माला पंक्तिः तया खचितेन व्याप्तेन तनुना शरीरेण तन्वन्तरनिर्गच्छद् च्छास्रस्रोतसेवांशुकपटान्तेन तनोः शरीरस्य अन्तरात् मध्यदेशात् निर्गच्छद् निस्सरत् अच्छः स्वच्छः निर्मलः यः अश्रुणः अस्रोः धारा तया धारया इव अंशुकस्य वसनस्य 'वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वासनमंशुकमित्यमरः' अन्तेन एकभागेन, किञ्चिदुत्तानितं किञ्चिन्मात्रायां उत्थापितं वदनेन्दुं वदनचन्द्रं दूयमानमानसा दूयमानं विकलतां गच्छत् मानसेन मानसं यस्याः सा, प्रस्नुतस्तनी स्वभावत एव प्रस्नुतं प्रवहितं स्तनं यस्याः सा, प्रसवदिवसादारभ्य प्रसवं जन्म तद्दिवसादेव आरभ्य, सकलमङ्कशायिनः कलापूर्वकं अंके क्रोडे शयनं कर्तु शीलमभवत् यस्यासावङ्कशायी तस्य हर्षस्य शैशवमस्य शिशुतायाः भावः शैशवत् बाल्यकालं स्मरन्ती स्मरणं कुर्वन्ती, ज्ञातिगृहगतहृदया ज्ञातिः स्वबन्धुः स्वपितृकुलमिति भावोऽत्र तस्यगृहं गतं हृदयं यस्या सा, अर्थात् क्षणादेव यशोमत्या हृदयं स्वपितुर्गृहं गतवान्, तस्यैव चिन्तमकरोत् 'अम्ब- मातः! तात! पितः! न पश्यत मा अवलोकयन्तु पापां पापस्वरूपां (विधवात्वेन पापस्वरूपां स्वां वदति यशोमती) परलोकप्रस्थितां परलोकं यमपुरं प्रति प्रस्थितां गन्तुमुद्यतां, मामेवम् यशोमतीं एवम् अतिदुःखिताम्' अत्यधिकदुःखेन संयुक्ताम्, इति मुहुमर्मुहुराक्रन्दती बारम्बारं रुदन्तीं, पितरौ माता च पिता च, अग्रे पुत्रम्प्रति राज्यवर्धनम्प्रति रोदिति सा 'हा वत्स'! हा पुत्रक विश्रान्तभागधेयया विश्रान्तं शान्तिं गतं भागधेयं भाग्यं

'दैवं दिष्टं भागधेयमित्यमरः' यस्या तया, न दृष्टोऽसि' न दृष्टवानसि इति प्रेष्ठं उत्तमं ज्येष्ठं श्रेष्ठं तनयम् पुत्रं असन्निहितं अनुपस्थितं, क्रोशन्ती, रुदन्तीं 'अनाथा जाता' न नाथः रक्षकः स्वामीति अनाथः तादृशी जात अभवम्' इति श्वसुरकुलवर्तिनीं श्वसुरस्य पत्युः पितुः कुले वर्तते या सा तां दुहितरमनुशोचन्ती दुहितरं पुत्रीं अनुशोचन्ती बारम्बारं शोकं प्रकटयन्ती निष्करुण! अयि करुणाविहीन्, किमपराद्धं को नामापराधोऽभवत्, तव अमुना अनेन जनेन? इति एवम्प्रकारेण देवम् देवतां भाग्यं वा उपालभमाना उपालम्भ्यन्ती, नास्ति मत्समा मादृशी, सीमन्तिनी नारी 'नारी सीमन्तिनी बधूरित्यमरः' दुःखभागिनी' दुःखं भतीति दुःखभाक् तादृशी, इति निन्दन्ती निन्दनं कुर्वन्ती बहुविधमात्मानम् बहुप्रकारेण आत्मानं स्वं निन्दन्तीति, 'मुषितास्मि चौरितास्मि कृतान्त! यमराज! नृशंस! अतिकठोर! त्वया' इति अकाण्डे असमये अस्थाने कृतान्तं यमराजं गर्हमाणा निन्द्यमाना मुक्तकण्ठम् मुक्तेन कण्ठेन बाधं विनैव अतिचिरं चिरकालं यावत् प्राकृतप्रमदेव स्वाभाविकरूपेण प्रमदा इव सामान्य नारीव प्रारोदीत् रोदनं कृतवतीति।

हिन्दी - दूर से ही आँसू से भरे नयनों से हर्ष ने कहा - अम्ब! मुझ मन्दपुण्य को तु भी छोड़ रही हो। प्रसन्न हो मान जाओ, लौट आओ, ऐसा कहते हुए स्नेहपूर्वक मानो नूपुर मणि की मरीचि से चुम्बित शिखावाले होते हुए माता के चरणों पर गिर पड़े। देवी यशोमती ने उस प्रकार पैरों पर गिरे हुए पैरों पर अपने शिर को रखे हुए विमनस्क छोटे पुत्र को देखकर पर्वत के समान गुरुतर उद्वेग के आवेग से अभिभूत होती हुई मूर्च्छा के अन्धकार से परिपूर्ण रसातल में प्रवेश करती हुई, मानो चिरकाल से रोके हुए अश्रुप्रवाह के जम जाने के कारण स्नेह सम्भार से अभिभूत होती हुई प्रयत्न करके भी अपने अश्रुप्रवाह को नहीं रोक पायी। काँपते हुए स्तनों से जिसके हृदय का असह्य शोक प्रकट हो रहा था, जो गद्गद कण्ठ से विकल हो रही थी, असाधारण क्रोध के कारण जिसके अधर चंचल हो रहे थे, बार बार एक ही बात को कहने से जिसका नासापुट मानो जड़ हो रहा था, अपने आँखे मूँदकर अश्रुजल के प्रवाह से कपोल युगल को आप्लावित करती हुई नख किरणों की माला से आच्छादित शरीर से, शरीर के अवयवों से निकलते हुए स्वच्छ अश्रुधार रूप पटान्त से आच्छादित हर्ष के मुखचन्द्र को कुछ उपर उठाकर विकल मानसवाली स्तनों से दूध की धार बहानेवाली यशोमती प्रसव दिन से लेकर गोद में सोने तक की बाल्यस्थिति को याद करती हुई कुछ देर के लिये मानो अपने पिता के घर पहुँच गई और इस प्रकार बोली - अम्ब! तात! परलोक प्रस्थान करने को उद्यत, अति

दुःखिनी मुझ पापिनी को मत देखो, ऐसा बार बार कहती हुई अपने दूसरे ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुत्र को जो यहाँ उपस्थित नहीं थे, याद कर कहने लगी – हा पुत्र! जिसका भाग्य अस्त हो रहा है ऐसी मैंने तुझे नहीं देखा। श्वसुर के घर में निवास करती हुई अपनी पुत्री को याद कर बोली पुत्रि! अब अनाथ हो गयी हो। भाग्य का उपालम्भन करती हुई बोली कि अये निष्करुण! इस व्यक्ति ने तेरा क्या अपराध किया था, वास्तव में मुझ जैसी दुःखभागिनी नारी और कोई नहीं है। इस प्रकार विविध प्रकार से अपने आत्मा की निन्दा करती हुई असमय में ही यमराज को कोसती हुई कि अरे कठोर कृतान्त तूने मुझे ठग लिया है, इस प्रकार मुक्त कण्ठ से चिरकाल तक सामान्य नारी की तरह रोती रही।

प्रशान्ते च मन्युवेगे सस्नेहमुत्थापयामास सुतम्। हस्तेन चास्य प्ररुदितस्य पक्ष्मपालीपुञ्ज्यमानाश्रुकणनिवहां द्रुतामिवाधिकतरं क्षरन्तीं दृष्टिमुन्ममार्ज। स्वयमपि कठोररागपरिपीयमानेन धवलिम्ना मुच्यमानोदरे क्वथदश्रुवत्पर्यन्ते शुक्लशीकरतारतारकितपक्ष्मणी सूक्ष्मतराश्रु विन्दुपरिपाटीपतनानुबन्धविधुरे लोचने पुनःपुनरापूर्यमाणे प्रमृज्य वाष्पार्द्रगण्डगृहीतां च श्रवणशिखरमारोप्य शोकलम्बामलकलतामधः स्रस्तविलोलबालिकाव्याकुलितां च समुत्सार्य तिरश्चीं चिकुरसटामश्रुप्रवाहपूरितमार्द्रं च किञ्चिच्च्युतमुत्क्षिप्य हस्तेन स्तनोत्तरीयं तरङ्गितमिव नखांशुपटलेन मग्नांशुकपटान्ततनु ताम्रलेखालाञ्छित लावण्यकुब्जिकावर्जितराजतराजहंसास्यसमुद्गीर्णेन पयसा प्रक्षाल्य मुखकमलं कलमूकलोकाविधृते वासःशकले शुचिनि समुन्मृज्य पाणी सुतवदनविनिहितनिभृतनयनयुगला चिरं स्थित्वा पुनःपुनरायतं निःश्वस्यावादीत् –'वत्स! नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा। स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे हृदयम्। अस्मिंश्च समये प्रभूतप्रभुप्रसादान्तरिता त्वां न पश्यति दृष्टिः। अपि च पुत्रक! पुरुषान्तरविलोकनव्यसनिनी राज्योपकरणमकरुणा वा नास्मि लक्ष्मीः क्षमा वा। कुलकलत्रमस्मि चारित्रमात्रधना धर्मधवले कुले जाता।

किं विस्मृतोऽसि मां समरशतशौण्डस्य पुरुषप्रकाण्डस्य केसरिण इव केसरिणीं गृहिणीम्? वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराक्रमक्रयक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्। एवंविधेन पित्रा ते भरतभगीरथनाभागनिभेन नरेन्द्रवृन्दारकेण गृहीतः पाणिः। आसेवितः सेवासंभ्रान्तानन्तसामन्तसीमन्तिनीसमावर्जितजाम्बूनदघटाभिषेकः शिरसा। लब्धो मनोरथदुर्लभो महादेवीपट्टबन्धसत्कारलाभो ललाटेन। आपीतौ युष्मद्विधैः पुत्रैरमित्रकलत्रबन्दिवृन्दविधूयमानचामररमरुच्चलच्चीनांशुकधरौ पयोधरौ। सपत्नीनां शिरःसु निहितं नमन्निखिलकटककुटुम्बिनीकिरीटमाणिक्य मालार्चितं चरणयुगलकम्। एवं कृतार्थसर्वावयवा किमपरमपेक्षे क्षीणपुण्या? मर्तुमविधवैव वाञ्छामि।

व्याख्या – *प्रशान्ते शान्तिं गते अर्थात् यो मन्युरासीत् स क्रमशो यदा शान्तोऽभवत् तदा, च मन्युवेगे शोकस्यावेगे 'मन्युशोकौ इत्यमरः' सस्नेहमुत्थापयामास स्नेहपूर्वकं उत्थापितवती सुतम् पुत्रम्। अर्थात् शान्ते शोकावेगे सा यशोमती पादपतितं सुतं हर्ष उत्थापितवती। हस्तेन करणे च अस्य हर्षस्य प्ररुदितस्य प्रकर्षेण यः रोदनं कृतवानासीत् तादृशस्य पक्ष्मपालीपुञ्ज्यमानाश्रुकणनिवहां पक्ष्मणां नेत्रलोम्णां या पाली पंक्तिः 'पालिः स्त्र्यश्र्यङ्कपंक्तिषु इत्यमरः' तस्यां पुञ्ज्यमाना एकत्रीभूता ये अश्रुकणाः नेत्रवाष्पविन्दवः तेषां यो निवहः समूहः 'समूहो निवहव्यूहसंदोहविसरव्रजा इत्यमरः' स समूहः अस्ति यस्यां दृष्टौ तां, द्रुतामिव द्रवीभूतामिव अधिकतरं क्षरन्तीं प्रवहन्तीं दृष्टिम् नेत्रं उन्ममार्ज प्रौञ्छितवती। स्वयमपि कठोररागपरिपीयमानेन कठोरो गाढो यो रागः रक्तिमा तं परिपीयमानेन पूर्णरूपेणाच्छाद्यमानेन धवलिम्ना श्वेततया मुच्यमानोदरे क्षीयमाने त्यज्यमाने उदरे अन्तर्भागे, क्वथदश्रुवत्पर्यन्ते क्वथत् उष्णतां गच्छत् अश्रुः नेत्रवारिकणः तेन प्लाविते पर्यन्तभागे शुक्लशीकरतारतारकितपक्ष्मणी शुक्लः धवलः यः शीकरः नेत्रजलविन्दु तेन तारं अत्यन्तं तारकितं तारकाभिः युक्ततां गते पक्ष्मणी नेत्रलोम्णि सूक्ष्मतराश्रुविन्दुपरिपाटीपतनानुबन्धविधुरे सूक्ष्मतरः अतिलघुः यो अश्रुविन्दुः नेत्रजललवः तस्य या परिपाटी पद्धतिः परम्परा धारेति भावः तस्याः धारायाः पतनरूपानुबन्धेन विधुरे व्याकुलतां गते दृष्टिबाधितां गते, लोचने नयने पुनःपुनरापूर्यमाणे*

बारम्बारं नेत्राश्रुविन्दुपतनेन पूर्यमाने प्लवमाने नयने, प्रमृज्य सम्प्रौञ्छ्य, वाष्पार्द्रगण्डगृहीतां वाष्पेणाश्रुविन्दुना आर्द्रतां गतो क्लिन्नतां गतो यः कपोलः तेन गृहीतां धारितां च श्रवणशिखरमारोप्य श्रवणयोः कर्णयोः यत् शिखरम् अग्रभागः तत्र आरोप्य स्थापयित्वा, शोकलम्बामलकलताम् शोकवशात् दुःखवशात् लम्बायमानां दूरं यावत् प्रसृतां अलकानां केशानां या लता पाशः ताम्, अधःस्रस्तविलोलबालिकाव्याकुलितां बन्धनशैथिल्यात् अधोगच्छन्तीं पतन्तीं विकीर्यमानां वा विलोलतां चंचलतां गता या बालिका कर्णभूषणस्वरूपा (बाला इति हिन्द्यां) तया व्याकुलितां व्यस्तां, च समुत्सार्य उपरि विन्यस्य तिरश्चीं वक्रं 'तिर्यगर्थे साचितिर इत्यमरः' चिकुरसटाम् चिकुरस्य केशस्य 'चिकुरः कुन्तलो बालः इत्यमरः' सटां जटां प्रसाधनाभावात् जटात्वमाप्तकेशाः इति भावः, 'शिखा चूड़ा केशपाशी व्रतिनस्तु जटा सटेत्यमरः' अश्रुप्रवाहपूरितम् अश्रुणः नेत्रविन्दुनः प्रवाहेण पूरितं व्याप्तं आर्द्र क्लिन्नं च किञ्चिच्च्युतम् किञ्चिन्मात्रायां च्युतं स्खलितम् केशपाशं उत्क्षिप्य उपरि सम्प्रेष्य उत्थाप्येति भावः, हस्तेन करेण, स्तनोत्तरीयं स्तनयोः कुचयोः यदुत्तरीयं द्वितीयवस्त्रं, तरङ्गितमिव संजातभङ्गमिव उच्चावचस्थितिं गतमिव नखांशुपटलेन नखानां कराग्रजानां अंशुभिः किरणैः 'किरणोऽस्त्रिमयूखांशु इत्यमरः' पटलेन समूहेन 'समूहे पटलं न ना इत्यमरः' मग्नांशुकपटान्ततनुताम्रलेखालाञ्छितलावण्यकुब्जिकावर्जित राजतराजहंसास्यसमुद्गीर्णेन मग्नः लीनः आच्छादितः यदंशुकस्य आच्छादनस्य 'वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकमित्यमरः' तदर्थं पटस्य वस्त्रस्य अन्तस्य कोणभागस्य तनुः अतिलघु या ताम्रलेखा ताम्रस्य लेखा तया लाञ्छितं चिह्नितं यत् लावण्यं सौन्दर्य तया लेखया युक्ता या कुब्जिका दासीविशेषा(शरीरेण वक्रा कुब्जिकेति प्रसिद्धार्थः। अन्यच्च - सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा तु कुब्जिकेति रुद्रयामलपटले) तया आवर्जितं आनीतं राजतस्य रजतस्य भावः राजतं तस्य (चांदी का इति हिन्द्यां) राजहंसः राजहंसस्वरूपवत् यत् जलपात्रं तस्य आस्येन मुखेन समुद्गीर्णेन निस्स्रियमाणेन, पयसा जलेन, प्रक्षाल्य पूर्णरूपेण क्षालनं कृत्वा, मुखकमलं मुखमेव कमलं तत् मुखस्य प्रौञ्छनं कृत्वेति भावः, कलमूकलोकविधृते कलेन विहीनः कलमूकः जन्मप्रभृत्येव वक्तुमसमर्थः (गूँगा) तादृशेन लोकेन जनेन विधृते गृहीते,वासःशकले वासः वस्त्रं शकलं खण्डः वस्त्रखण्डे इत्यर्थः, शुचिनि पवित्रे स्वच्छे समुन्मृज्य सम्प्रौञ्छ्य, पाणी हस्तौ, सुतवदनविनिहितनिभृतनयनयुगला सुतस्य पुत्रस्य वदने मुखे विनिहितं स्थापितं नयनस्य

युगलं यस्याः सा , अर्थात् तनयस्य मुखमविचलनेत्राभ्यां पश्यन्ती, चिरं स्थित्वा चिरकालं यावत् स्थित्वा पुनःपुनरायतं बारम्बारं विस्तृतं दीर्घ निःश्वस्यावादीत् निःश्वासं गृहीत्वा अवदत् –'वत्स! पुत्र! नासि न प्रियो त्वं मम प्रियो न इति नास्ति अर्थात् त्वं मम प्रियपुत्रोऽसि, निर्गुणो वा गुणविहीनो वा त्वं न, त्वं गुणवानसि, परित्यागार्हो परित्यागस्य योग्यो न त्वमिति वा। स्तन्येनैव स्तनोद्भवं स्तन्यं दुग्धं तेनैव दुग्धेन सह त्वया हर्षेण पीतं आत्मसात् कृतं मे मम यशोमत्याः हृदयम चित्तम्। अस्मिंश्च समये इदानीं यः शोकस्य कालः प्रवर्तते तस्मिन् प्रभूतप्रभुप्रसादान्तरिता प्रभूतमत्यधिकं तन्मात्रायां प्रभोः स्वामिनः तव पितुः प्रसादेन कृपया अन्तरिता आच्छादिता त्वां न पश्यति दृष्टिः नयनम्। अपि च पुत्रक! तनय! पुरुषान्तरविलोकनव्यसनिनी पुरुषान्तरं अन्यपुरुषं विलोकयितुं द्रष्टुं व्यसनं कौतूहलं यस्याः तादृशी दृष्टिः या केवलं राज्योपकरणमकरुणा राज्यस्य उपकरणं वस्तुमात्रं अकरुणा न करुणा अकरुणा करुणाविहीना वा नास्मि लक्ष्मीः सागरजा, क्षमा धरित्री वा। कुलकलत्रमस्मि सत्कुलस्य कलत्रं भार्या अस्मि 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोरित्यमरः' चारित्रमात्रधना चरित्रस्य भावः चारित्रं तदेव धनं यस्या तादृशी अहं धर्मधवले स्वकुलोचितधर्मपालनेन धवलं उज्ज्वलं तस्मिन् कुले वंशे 'कुलान्यभिजनान्वयौ वंशोऽन्ववायः इत्यमरः' जाता समुत्पन्ना। किं विस्मृतोऽसि मां यशोमतीं स्वमातरम् समरशतशौण्डस्य समराणां युद्धानां शतं असंख्यमिति भावः तेषु युद्धेषु शौण्डः मत्तः 'मत्ते शौण्डः इत्यमरः' यः प्रभाकरवर्धनस्तस्य, पुरुषप्रकाण्डस्य प्ररुषेषु जनेषु प्रकाण्डः प्रसिद्धः यस्तस्य केसरिणः सिंहस्य 'सिंहो मृगेन्द्रः पंचास्यो हर्यक्षः केसरी हरिरित्यमरः' इव केसरिणीं सिंहनीं इव गृहिणीम् गृहे तिष्ठतीति गृही तस्यानुगामिनी गृहिनी तां, भार्याम्? वीरजा वीरस्य जाता पुत्री, वीरजाया वीरस्य प्रभाकरवर्धनस्य जाया पत्नी 'भार्या जायेत्यमरः' वीरजननी वीरस्य पुत्रस्य जन्मदात्री माता, च मादृशी पराक्रमक्रयक्रीता पराक्रमरूपक्रयेन द्रव्येण क्रीता वीर्यशुल्केति भावः, कथमन्यथा अन्यत्प्रकारकं कार्य कथं कुर्यात्। एवंविधेन पित्रा जनकेन ते तव हर्षस्य भरतभगीरथनाभागनिभेन एतादृशेन प्रसिद्धनरेशसदृशेन, नरेन्द्रवृन्दारकेण नराणां इन्द्रो राजा नरेन्द्रः तेषु नरेन्द्रेषु वृन्दारको श्रेष्ठो यः प्रभाकरवर्धनः तेन, गृहीतः स्वीकृतः पाणिः हस्तः 'पंचशाखः शयः पाणिरित्यमरः'। आसेवितः लब्धः स्वीकृतो वा सेवासंभ्रान्तानन्तसामन्त सीमन्तिनीसमावर्जितजाम्बूनदघटाभिषेकः सेवायां याः सम्भ्रान्ताः सत्कुलोत्पन्नाः कुलीनाः अनन्ताः बहुलाः सामान्तानां लघुराज्ञां

सीमन्तिन्यः पत्न्यः 'नारी सीमन्तिनी वधूरित्यमरः' ताभिः समावर्जितैः आनीतैः जाम्बूनदेण स्वर्णेन 'रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियामित्यमरः' निर्मितैः घटैः कलशैः अभिषेकः स्नानम्। राज्ञीपदे अभिषेकसुखास्वादो मया लब्धः इति भावः, शिरसा। लब्धः प्राप्तः मनोरथदुर्लभो मनोरथादपि दुःखपूर्वकं लभ्यः अतिमहानिति, महादेवीपट्टबन्धसत्कारलाभो महोदवीपदस्य यो पट्टबन्धः तस्य सत्कारस्य सम्मानस्य लाभः ललाटेन भालपट्टेन। अर्थात् मम भालपट्टे महादेवीतिपट्टबन्धोऽभवदिति। आपीतौ पीतवन्तौ युष्मद्विधैः त्वादृशैः पुत्रैः जातकैः अमित्रकलत्रबन्दिवृन्दविधूयमानचाभरमरुच्चलच्चीनांशुकधरौ न मित्रं अमित्रं शत्रुः तेषां शत्रूणां बन्दीभूतानि कलत्राणि तासां कलत्राणां वृन्दः समूहः तेन समूहेन विधूयमानं संचाल्यमानं यच्चामरं तस्मादुत्पन्नो यो मरुत् पवनः तेन पवनेन चलत् कमपायमानं चीनांशुकं चीनदेशनिर्मितं वस्त्रं ययोः तादृशौ पयोधरौ स्तनौ (त्वादृशैः पीताविति)। सपत्नीनां पत्युरन्यभार्याणां शिरःसु मूर्धदेशेषु निहितं स्थापितं नमन्निखिलकटककुटुम्बिनीकिरीटमाणिक्यमालार्चितं नमन्तीनां सादरं प्रणमन्तीनां निखिलानां सर्वासां कटककुटुम्बिनीनां स्कन्धावारस्य स्त्रीणां किरीटे मुकुटे यन्माणिक्यं तस्य माणिक्यस्य मालाभिः पंक्तिभिः अर्चितं पूजितं चरणयुगलकम् पादयुगलम्। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कृतार्थसर्वावयवा कृतार्थाः साफल्यं गताः सर्वे अवयवाः यस्याः तादृशी अहं यशोमती किमपरमपेक्षे एभिरन्यत् किं अपेक्षं अपेक्षां कुर्याम् क्षीणपुण्या क्षीणतां गतं पुण्यं सत्कर्म यस्याः ? अर्थात् किमप्यवशिष्टं लभ्यं मया नास्तीति । मर्तुम् जीवनं त्यक्तुं, अविधवैव विगतो धवो पतिः यस्याः सा विधवा , न विधवा अविधवा तादृशी एव अहं वाञ्छामि। अर्थात् विधवायाः जीवनं नेच्छामि। पत्युर्जीवितावस्थायामेव मम मरणं स्यादित्येवेच्छा वर्तते मम।

हिन्दी – जब शोक का आवेग शान्त हुआ तो उसने स्नेह पूर्वक पुत्र को (पैरों पर से) उठाया। चिरकाल से रोते रहने के कारण जिसकी बरौनियों में अश्रुविन्दु एकत्रित हो चुके थे, और जिससे अधिकाधिक मात्रा में आँसू बह रहे थे ऐसी आँखों (पुत्र की)को अपने हाथों से पोंछा। गाढ प्रेम को पीने के कारण जिसके अन्तर्भाग की धवलिमा स्वयं समाप्त हो रही थी, गर्म अश्रुप्रवाह से जो भरे हुए थे, उजले अश्रुविन्दुओं से जिसके भौंह एवं बरौनियाँ तारकित हो रही थी, छोटे छोटे अश्रुविन्दुओं की परिपाटी के अनुबन्ध से जो आँख विकल हो रहा था, बार बार जो आँसुओं से भर रहा था, उसे (आँखों को) पोंछकर आँसुओं से भींगे कपोल पर लटके केश

को कर्णशिखर पर टिका कर, शोक के कारण विखरे एवं लटकते हुए केशपाश को जो नीचे तक लटकने के कारण घुँघराले केशभार अस्त व्यस्त हो रहे थे, को उपर की ओर उठाकर, अश्रुप्रवाह के कारण भींगे हुए कुछ कुछ खिसकते हुए स्तनावरण को उठाकर तरंगित नखाशुपटलों में डूबे हुए कपड़ों के अन्तर्भाग में लालवर्ण से चिह्नित कुब्जा दासी के द्वारा लाये गये राजहंस के मुख के समान चाँदी के पात्र के जल से मुखकमल को प्रक्षालित किया। गूँगे दासों द्वारा लाये गये स्वच्छ वस्त्रखण्डों से अपने हाथ को पोंछकर अपने पुत्र के मुख पर अपनी आँखों को टिकाये हुए चिरकाल तक खड़ी रहकर विस्तृत लम्बी निःश्वास खींचकर वह (यशोमती) बोली – पुत्र! ऐसी बात नहीं है कि तुम मेरे प्रिय नहीं हो या तुम गुणवान नहीं हो, या तुम परित्याग के योग्य हो। स्तनों के दूध के साथ ही तुमने मेरे हृदय को भी पी लिया है। इस समय तुम्हारे पिता की असीम अनुकम्पा से आच्छादित दृष्टि तुम्हें नहीं देख पा रही है। और पुत्र ! अन्य पुरुष को देखने की व्यसनवाली यह अकरुण दृष्टि इस राज्य की एक वस्तु मात्र रह गयी है, न मैं लक्ष्मी हूँ और न धरती। सत्कुल में उत्पन्न जिसका चरत्रि ही एकमात्र धन है, ऐसी मैं धर्म के उज्ज्वल कुल में उत्पन्न हुई हूँ। क्या तुम भूल गये कि मैं सैकड़ों युद्धों में मदमत्त पुरुषप्रकाण्ड केसरी (प्रभाकरवर्धन)की सिंहनी की तरह पत्नी हूँ। वीर पिता की पुत्री, वीर प्रभाकरवर्धन की पत्नी, और तुम जैसे वीरों की माता, पराक्रम रूप धन से खरीदी गयी मैं भला अन्यथा कार्य कैसे कर सकती हूँ? इस प्रकार भरत भगीरथ नाभाग के समान नरेन्द्रों के समूह में प्रधान तुम्हारे पिता ने मेरा हाथ पकड़ा है (पाणिग्रहण किया है।) मैंने सेवा में लगी हुई अनन्त सामन्तों की पत्नियों के द्वारा लाये गये स्वर्णघटों के अभिषेक का सेवन किया है। मनोरथ से भी अलभ्य महादेवी पट्ट के सत्कार लाभ को मैने अपने ललाट से पाया है। तुम जैसे पुत्रों ने दुश्मनों की वन्दी पत्नियों के समूह से हिलाये जा रहे चामर की हवा से चंचल चीनांशुकवाले मेरे स्तनों का पान किया है। सादर प्रणाम करती हुई स्कन्धवार(सैन्यशिविर) में रहनेवाली स्त्रियों के मुकुट में लगे माणिक्य माला से अर्चित अपने चरण युगल सौतनों के शिर पर मैंने रखे हैं। इस प्रकार सभी तरह से कृतार्थ,क्षीणपुण्यवाली मैं भला और क्या चाहूँगी (कुछ भी नहीं) केवल अविधवा हो मरना चाहती हूँ। (पति की मृत्यु आसन्न है। मृत्यु के पश्चात् मैं विधवा हो जाऊँगी। और मैं विधवा होकर मरना नहीं चाहती हूँ। इसलिये पति की मृत्यु से पहले ही मृत्यु का वरण करना मैंने निश्चित कर लिया है।)

न च शक्नोमि दग्धस्य स्वभर्तुरार्यपुत्रविरहिता रतिरिव निरर्थकान्प्रलापान्कर्तुम्। पितुश्च ते पादधूलिरिव प्रथमं गगनगमनमावेदयन्ती बहुमता भविष्यामि शूरानुरागिणीनां सुराङ्गणानाम्। प्रत्यग्रदृष्टदारुणदुःखदग्धायाश्च मे किं धक्ष्यति धूमध्वजः। मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन् समये साहसम्। अतिशीतलः पतिशोकानलादक्षयस्नेहेन्धनादस्मादनलः। कैलासकल्पे प्रवसति जीवेश्वरे जरत्तृणकणिकालघीयसी जीविते लोभ इति क्व घटते? अपि च जीवन्तीमपि मां नरपतिमरणावधीरणमहापातकिनीं न स्प्रक्ष्यति पुत्र! पुत्रराज्यसुखानि। दुःखदग्धानां च भूतिरमङ्गला चाप्रशस्ता च निरुपयोगा च भवति। वत्स! विश्वस्तानां यशसा स्थातुमिच्छामि लोके न वपुषा। तदहमेव त्वां तावत्तात् प्रसादयामि न पुनर्मनोरथप्रातिकूल्येन कदर्थनीयास्मि।' इत्युक्त्वा पादयोरपतत्।

व्याख्या – *न च शक्नोमि दग्धस्य भस्मीभूतस्य स्वभर्तुः स्वकीयपत्युः प्रभाकरवर्धनस्य ,आर्यपुत्रविरहिता आर्यपुत्रेण स्वभर्त्रा (राज्ञी आर्यपुत्र इति सम्बोधयति भर्तारमिति साहित्यदर्पणः) विरहिता विहीना, रतिरिव रतिः कामदेवस्य पत्नी तामिव, निरर्थकान् निष्प्रयोजनान् अर्थविहीनान् प्रलापान् व्यर्थरोदनं 'प्रलापोऽनर्थकं वचः इत्यमरः' कर्तुम्। पितुश्च ते तत्र हर्षस्य पितुः प्रभाकरवर्धनस्य, पादधूलिरिव पादयोः चरणयोः धूलिः पादधूलिः तदिव, प्रथमं पूर्व गगनगमनम् गगने आकाशे गमनं गगनगमनं तत् आवेदयन्ती निवेदयन्ती बहुमता बहुभिः मतेन युक्ता प्रतिष्ठिता, भविष्यामि शूरानुरागिणीनां शूराणां वीराणां या अनुरागिण्यः प्रेमयुक्ताः तासां सुराङ्गणानाम् सुराणां देवानां या अङ्गनाः स्त्रियः तासाम्। प्रत्यग्रदृष्टदारुणदुःखदग्धायाश्च प्रत्यग्रं समक्षं दृष्टं अवलोकितं येन दारुणं महत्कष्टकरं दुःखं तेन दुःखेन दग्धा भस्मीभूता या तस्याः मे मम यशोमत्याः किं धक्ष्यति भस्मीभूतं करिष्यति धूमध्वजः धूम एव ध्वजो यस्यासौ अग्निः। मरणाच्च जीवनत्यागात् च मे मम जीवितम् जीवनं एव अस्मिन् समये साहसम् साहसिककार्यमिति। अर्थात् प्राणत्यागे नास्ति साहसप्रदर्शनमपितु जीवनधारणे एवेदानीं साहसप्रदर्शनं वर्तते मम। अतिशीतलः अत्यधिकशैत्ययुक्तः पतिशोकानलात् पत्युर्मरणविषयकशोकादेवादुत्पन्नो यो वह्निस्तस्मात् अक्षयस्नेहेन्धनात् न क्षयं याति यत् तदक्षयं*

अक्षयं यत् स्नेहरूपेन्धनं काष्ठादीनि तस्मात् तस्मादनलः अनलो वह्निः। अर्थात् पतिमरणरूपशोकानलादयमग्निः शील एव भविष्यतीति। कैलासकल्पे कैलासस्वरूपे, प्रवसति प्रकृष्टं दूरे गतवति जीवेश्वरे जीवस्य प्राणस्य ईश्वरः स्वामी मम पतिः तस्मिन् जरत्तृणकणिकालघीयसी शीर्णतृणस्य लघुकणिका शकलमिव लघुतमे जीविते लोभ इति क्व घटते? अर्थात् पत्युरभावे जीवनेऽस्मिन् लोभः कदापि न भवितुमर्हति। अपि च जीवन्तीमपि जीवनं धारयन्तीमपि मां यशोमतीं नरपतिमरणावधीरणमहापातकिनीं नरपतेः प्रभाव रवर्धनस्य मरणात् जीवनत्यागात् अवधीरणया अवहेलनया युक्तां महापातकिनीं महापापिनीं न स्प्रक्ष्यति मम स्पर्श न करिष्यति, पुत्र! पुत्रराज्यसुखानि पुत्रस्य राज्ये या नि सुखानि तानि। अर्थात् पत्युरभावे लोकानामवहेलनया महापातकिन्या मम सुखं न भविष्यति पुत्रस्य राज्यसुखे। दुःखदग्धानां दुःखेन या दग्धा प्रज्वलिता भवति तासां तेषां वा च भूतिः ऐश्वर्य 'विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमित्यमरः' अमङ्गला अकल्याणकारिणी च अप्रशस्ता अनुचिता च निरुपयोगा उपयोगविहीना च भवति। वत्स! पुत्र! विश्वस्तानां ये मयि विश्वसन्ति तेषां वा कुलस्य पतिव्रताधर्मपालनेन याः विधवाः अभवन् तासां प्रतिष्ठितानां महिलानां 'विश्वस्ता विधवे समे इत्यमरः' यशसा कीर्त्या स्थातुम् चिरकालं यावत् स्वस्थितिं रक्षितुं इच्छामि लोके संसारे न वपुषा शरीरेण 'गात्रं संहननं वपुरित्यमरः' । अर्थात् लोके शरीरेण स्थितिः चिरस्थायिनी न भवति परन्तु यशसः स्थितिः चिरस्थायी भवतीति। तदहमेव त्वां हर्ष तावत् तात प्रसादयामि प्रार्थयामि न पुनः मनोरथप्रातिकूल्येन मनोरथस्य इच्छायाः प्रतिकूलतायाः विरोधिताया भावः प्रातिकूल्यं तेन कदर्थनीया निन्दनीया अस्मि।' इत्युक्त्वा पादयोरपतत् इति निवेद्य हर्षस्य चरणयोः पतितवती।

हिन्दी – *अयि पुत्र! जल चुके अपने पति आर्यपुत्र(प्रभाकरवर्धन) से विरहित होकर मैं रति (कामदेव की पत्नी) की तरह व्यर्थ प्रलाप नहीं कर सकती हूँ। तुम्हारे पिता के पैरों की धूली की तरह मैं पहले ही आकाश में जाने का निश्चय करती हुई (अर्थात् पति के मरने से पहले ही मर जानेवाली) वीरों में अनुराग रखनेवाली देवाङ्गनाओं के बीच में प्रतिष्ठित हो जाऊँगी। आगे में अतिदारुण दुःख (पतिमरणरूप) को देखकर जो जल चुकी हो उसे यह आग क्या जलायेगी? इस समय मेरे मरने में कोई साहस नहीं है अपितु जीवित रहने में ही साहस प्रदर्शन होगा। जिसका अक्षय स्नेह रूप इन्धन कभी समाप्त नहीं होता है उस पतिमरणजनित शोकाग्नि से तो यह (चिता की अग्नि) अति शीतल है। कैलाश के समान मेरे*

पति जब इस लोक से बहुत दूर जा रहे हैं तो जीर्णशीर्ण तृण के टुकड़े के समान इस जीवन से लोभ की संगति कहाँ होती है? और यदि मैं जीवित भी रही तो पुत्र के राज्य का सुख मेरा स्पर्श नहीं करेगी क्योंकि मैं पति के मरण के तिरस्कारजनित महापातकवाली हूँ। दुःख से जले हुए लोगों का ऐश्वर्य सर्वदा अमङ्गल करनेवाली अप्रशस्त और निरुपोग होती है। वत्स! इस संसार में मैं विश्वस्त लोगों के यश के साथ जीवित रहना चाहती हूँ, शरीर से नहीं। इसलिये पुत्र! मै तुम्हें ही कहती हूँ कि प्रसन्न हो जाओ और मेरी इच्छा के प्रतिकूल मुझे दुखी मत करना। ऐसा कहकर वह पैरों पर गिर पड़ी।

स तु ससम्भ्रममपनीय चरणयुगलमवनमिततनुरुभयकरविधृत वपुषमवनितलगतशिरसमुदनमयन्मातरम्। दुर्निर्वारतां च शुचः समवधार्य कुलयोषिदुचितां च तामेव श्रेयसीं मन्यमानः क्रियां च तां ज्ञात्वा तूष्णीमधोमुखोऽभवत्।

व्याख्या – स हर्षः तु ससम्भ्रम् सम्भ्रमेण युक्तः अपनीय अपसार्य झटित्येवाकृष्य चरणयुगलम् स्वपादयुगलम् अवनमिततनुः अवनमिता नम्रिता तनुः शरीरं यस्यासौ हर्षः उभयकरविधृतवपुषम् उभाभ्यां निजकराभ्यां विधृतं वपुः शरीरं यस्यां तादृशीं मातरम्, अवनितलगतशिरसम् अवनेः धरणेः तले गतं निपतितं शिरः यस्याः तां उदनमयत् उत्थापयत् मातरम्। अर्थात् पादयोर्निपतिततां मातरं स्वकरयुगलाभ्यां धृत्वा झटित्येवोत्थापयत्। दुर्निर्वारतां दुस्सहतां यस्य निवारणमसम्भवमस्ति स दुर्निवारस्तस्य भावः दुर्निर्वारतां तां च शुचः शोकस्य समवधार्य निश्चितं कृत्वा कुलयोषिदुचितां सत्कुलोत्पन्ना या योषित् नारी तस्या अनुकूलां उचितां, च तामेव यशोमत्या संकल्पितां पद्धतिमेव श्रेयसीं कल्याणकारिणीं मन्यमानः स्वीक्रियमाणः क्रियां च तां ज्ञात्वा तूष्णीम् निर्वचन एव अधोमुखोऽभवत् नम्रिताननोऽभवत्।

हिन्दी – हर्ष ने शीघ्रता से अपने पैरों को हटा लिया और झुककर अपने दोनो हाथों से अपनी माता को उठा लिया जिसका वदन झुका हुआ था और शिर जमीन पर टिक गया था। हर्ष ने यह समझ लिया कि माता के दुःख का निवारण करना असम्भव है।। सत्कुल में उत्पन्न नारियों के लिये अपनी माता द्वारा संकल्पित पद्धति (अग्निप्रवेश) को ही कल्याणकारी मानते हुए और अपनी माता को उस कार्य के लिये कृतसंकल्प जानकर चुपचाप अपना मुख नीचे कर लिया।

अभिनन्दति च स्नेहकातरापि कुलीनता देशकालानुरूपम्। देव्यपि यशोमती परिष्वज्य समाघ्राय च शिरसि निर्गत्य चरणाभ्यामेव चान्तःपुरात्पौराक्रन्दम्प्रतिशब्दनिर्भराभिरुपरुध्यमानेव दिग्भिः सरस्वतीतीरं ययौ। तत्र च स्त्रीस्वभावकातरैर्दृष्टिपातैः प्रविकसितरक्तपङ्कजपुञ्जैरिवार्चयित्वा भगवन्तं भानुमन्तमिव मूर्तिरैन्दवी चित्रभानुं प्राविशत्। इतरोऽपि मातृमरणविह्वलो बन्धुवर्गपरिवृतः पितुः पार्श्वं प्रायात्। अपश्यच्च स्वल्पावशेषप्राणवृत्तिं परिवर्त्यमानतारकं तारकराजमिवास्तमभिलषन्तं जनयितारम्। असह्यशोकोद्रेकाभिद्रुतश्च त्याजितः स्नेहेन धैर्यम्। आश्लिष्यास्य सकलदुर्मदमहीपालमौलिमालालालितौ पादपद्मावन्त स्तापान्मुख-चन्द्रमिव द्रवीभवन्तं दशनज्योत्स्नाजालमिव जलतामापद्यमानं लोचनलावण्यमिव विलीयमानं मुखसुधारसमिव स्यन्दमानम्, अच्छाच्छमश्रुस्रोतसां सन्तानं महामेघमयविलोचन इव वर्षन्नित-रवद्विमुक्तारावश्चिरं रुरोद।

व्याख्या - *अभिनन्दति प्रशंसति, च स्नेहकातरापि स्नेहेन प्रेम्णा कातरतां व्याकुलतां गतापि अधीरतां गतापि 'अधीरे कातरस्त्रस्ते इत्यमरः' कुलीनता सत्कुलोत्पन्नता उच्चकुले समुत्पत्तिजनितभावः, देशकालानुरूपम् देशस्य कालस्य समयस्य च अनुरूपम् तदनुकूलम् (आचरणमिति)। अर्थात् देश्कालानुरूपमाचरणं सर्वदा सत्कुलोत्पन्नता प्रशंसत्येव। देव्यपि राज्ञी अपि यशोमती एतन्नाम्नी हर्षस्य माता, परिष्वज्य आलिंग्य समाघ्राय च शिरसि मूर्धसु निर्गत्यबहिरागत्य चरणाभ्यामेव पादाभ्यामेव च अन्तःपुरात् राज्ञः परिवारस्य निवासभागः अन्तःपुरं तस्मात् स्थानात् पौराक्रन्दम्प्रतिशब्दनिर्भराभिः पुरे नगरे वसन्ति ये ते पौराः तेषां पुरवासिनां आक्रन्दनं रोदनं तत्प्रतिशब्दे निर्भरा या ताभिः नारीभिः उपरुध्यमाना अवरोध्यमाना इव दिग्भिः पूर्वपश्चिमादिदिशाभिः, सरस्वतीतीरं सरस्वतीनाम्नी या नदी तस्यास्तीरं तटं ययौ गतवती। रुदन्तीनां नागरिकानां रोदनस्वरस्य प्रतिध्वनिर्भवति सर्वासु दिक्षु तेन प्रतीयते यत् ताः दिशः यशोमतीमवरुणद्धि, इत्युत्प्रेक्षा। तत्र च स्त्रीस्वभावकातरैर्दृष्टिपातैः स्त्रीणां नारीणां स्वभावादेव या कातरा विह्वला अधीरा भवति दृष्टिः तासां दृष्टीनां पातैः पतनैः प्रविकसितरक्तपङ्कजपुञ्जैरिव*

पूर्णरूपेण विकसितं यत् रक्तकमलं तेषां कमलानां पुञ्जैः समूहैः इव अर्चयित्वा पूजयित्वा भगवन्तं ऐश्वर्यवन्तं भानुमन्तमिव भानुमन्तं सूर्य इव मूर्तिरैन्दवी इन्दोः चन्द्रस्य 'इन्दुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इत्यमरः' सम्बन्धिनी ऐन्दवी मूर्तिः प्रतिरूपं चित्रभानुं अग्निं 'चित्रभानुर्विभावसुरित्यमरः' प्राविशत् प्रविष्टवती। अर्थात् यथा चन्द्रस्य मूर्तिः सूर्य विशति तथैव यशोमती वह्निं प्रतिष्टवतीति। इतरः अन्यः अपि मातृमरणविह्वलो मातुः यशोमत्याः मरणं मातृमरणं तेन विह्लः कातरः बन्धुवर्गपरिवृतः बन्धूनां परिवारजनानां वर्गः समूहः बन्धुवर्गः तेन परिवृतः आवृतः, पितुः जनकस्य प्रभाकरवर्धनस्य पार्श्व समीपं प्रायात् गतवान्। अपश्यत् च स्वल्पावशेषप्राणवृत्तिं स्वल्पमात्रायामेवावशिष्टा प्राणानां वृत्तिः गर्तियस्यासो प्रभाकरवर्धनस्तं, परिवर्त्यमानतारकं परिवर्त्यमाने उर्ध्व गम्यमाने तारके नयनभागे 'तारकाक्ष्णा कनीनिकेत्यमरः' तारकराजम् तारकानां नक्षत्राणां राजा चन्द्रः तं इव आस्तमभिलषन्तं अस्तंगमनस्य भावमिव इच्छन्तं जनयितारम् पितरम्। जन्मदातृत्वेन जनयिता पिता। असह्यशोकोद्रेकाभिद्रुतः पितृमरणजनितः असहनीयस्य शोकस्य दुःखस्य यः उद्रेकः उत्पत्तिः तेन अभिद्रुतः द्रवीभूतः च त्याजितः स्नेहेन धैर्यम्। आश्लिष्य आलिंग्य अस्य पितुः सकलदुर्मदमहीपालमौलिमालालालितौ सकलानां सर्वेषां दुर्मदा स्वबलगर्वेण गर्वितानां महीपालानां नृपाणां मौलेः शिरसः मालाभिः पंक्तिभिः लालितौ सेवितौ पादपद्मौ चरणौ एव कमलौ पद्म शब्दः पुल्लिंगे नपुंसके चापि 'वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलमित्यमरः' तौ अन्तस्तापात् अन्तःकरणे शोकजनितो यस्तापस्तस्मात् मुखचन्द्रमिव मुखमेव चन्द्रं तद्वत् द्रवीभवन्तं गलन्तम्, दशनज्योत्स्नाजालमिव दशनानां दन्तानां या ज्योत्स्ना चन्द्रिका श्वेतकिरणः तस्याः ज्योत्स्नायाः जालं समूह इव जलतामापद्यमानं जलस्य भावः जलता तां आपद्यमानं गच्छन्तं लोचनलावण्यमिव लोचनानां नेत्राणां यत् लावण्यं सौन्दर्य तदिव विलीयमानं विलीनतामापद्यमानं मुखसुधारसमिव मुखरूपचन्द्रस्य सुधाया अमृतस्य यद्रसः तदिव स्यन्दमानम् प्रवहमानम् अच्छाच्छम् अतिस्वच्छं अश्रुस्रोतसां अश्रुणः नयनजलस्य यः स्रोतः प्रवाहस्तेषां सन्तानं समूहं महामेघमयविलोचन बहुवृष्टिसमर्थमेघो महामेघः भीषणवारिदः तद्वत् विलोचनं नयनं इव वर्षन् इतरवत् विमुक्तारावः स्पष्टशब्देन युक्तः चीत्कारपूर्णस्वरेणेति भावः चिरं चिरकालं यावत् रुरोद रुदितवान्।

हिन्दी – सत्कुल में उत्पन्न लोगों का स्वभाव होता है कि वे स्नेह से कातर होकर भी देश काल के अनुरूप व्यवहार का अभिनन्दन करते ही हैं। देवी यशोमती ने भी अपने पुत्र का आलिंगन किया, उसके शिर को चूमा और पैदल ही अपने नगर

से बाहर निकलकर पुरवासियों के रोने की आवाज से प्रतिध्वनित दिशाओं से रोकी जाती हुई भी सरस्वती नदी के किनारे पहुँच गई। वहाँ स्त्री स्वभाव से कातर दृष्टिपात के साथ त्रिकसित लालकमल के समूह से अग्नि देव की अर्चना कर मानो उसी प्रकार अग्नि में प्रविष्ट हो गयी जैसे सूर्य में चन्द्रमूर्ति प्रविष्ट हो जाती है। हर्ष भी माता के मरण को देखकर विह्वल अपने परिवारजनों से घिरे हुए पिता के समीप गये। वहाँ जाकर अपने पिता को देखा जिनके प्राण की वृत्ति बहुत कम बची हुई थी (अर्थात् जो मरणासन्न थे।) जिनकी आँखें उलट सी गयी थी जैसे चन्द्रमा अस्ताचल पर जाने की इच्छा कर रहा हो। असह्य शोक के कारण द्रवित होते हुए स्नेह ने मानो धैर्य को छोड़ दिया। सभी दुर्मद राजाओं की मौलिमाला से लालित पिता के पादयुगल का आलिंगन कर अन्तस्ताप से मानो गलते हुए मुख चन्द्र को जिसकी दशनज्योत्स्ना समूह से मानो मुख चन्द्र जल बनकर बह रहा था, आँखों की लावण्य मानो लुप्त हो रहा था, मुख सुधा की धारा मानो बह रही थी, स्वच्छ अश्रुजल की धारा का प्रवाह से मानो अपने आँख रूप भयंकर मेघ को बरसाते हुए सामान्य व्यक्ति की तरह जोर जोर से चिरकाल तक रोते रहे।

राजा तु तमुपरुध्यमानदृष्टिरविरतरुदितशब्दाश्रितश्रवणः प्रत्यभिज्ञाय शनैः शनैरवादीत्- पुत्र! नार्हस्येवं भवितुम्। भवद्विधा न ह्यमहासत्त्वाः। महासत्त्वता हि प्रथममवलम्बनं लोकस्य पश्चाद्राजबीजता। सत्त्ववतां चाग्रणीः सर्वातिशयाश्रितः क्व भवान्, क्व वैक्लव्यम्? कुलप्रदीपोऽसि' इति दिवसकरसदृशतेजसस्ते लघूकरणमिव। 'पुरुषसिंहोऽसि' इति शौर्यपटुप्रज्ञोपबृंहितपराक्रमस्य निन्देव। 'क्षितिरियं तव' इति लक्षणाख्यातचक्रवर्तिपदस्य पुनरुक्तमिव। गृह्यतां श्रीः' इति स्वयमेव श्रिया परिगृहीतस्य विपरीतमिव। 'अध्यास्यतामयं लोकः' इत्युभयलोकविजिगीषोरपुष्कलमिव। 'स्वीक्रियतां कोश' इति शशिकरनिकरनिर्मलयशःसंचयैकाभिनिवेशिनो निरुपयोगमिव। 'आत्मीक्रियतां राजकम्' इति गुणगणात्मीकृतजगतो गतार्थमिव। 'उह्यतां राज्यभारः' इति भुवनत्रयभारवहनोचितस्यानुचितनियोग इव। 'प्रजाः परिरक्ष्यन्ताम्'

इति दीर्घदोर्दण्डार्गलितदिङ्मुखस्यानुवाद इव।' परिजनः परिपाल्यताम्' इति लोकपालोपमस्यानुषङ्गिकमिव। 'आतत्येन शस्त्राभ्यासः कार्यः' इति धनुर्गुणकिणकलङ्ककालीकृतप्रकोष्ठस्य किमादिश्यते। 'निग्राह्यतां चापलजातम्' इति नूतनतरवयसि निगृहीतेन्द्रियस्य निरवकाशेव मे वाणी। 'निरवशेषतां शत्रवो नेयाः'इति सहजस्य तेजस एवेयं चिन्ता। इत्येवं वदन्नेवापुनरुन्मीलनाय निमिमील राजसिंहो लोचने प्रत्यपद्यत च पूषात्मजः।

व्याख्या – *राजा प्रभाकरवर्धनः तु तम् हर्षम् उपरुध्यमानदृष्टिः अश्रुप्रवाहेण बध्यमाना दृष्टिर्यस्यासौ राजा, अविरतरुदितशब्दाश्रितश्रवणः अविरतेन निरन्तरेण रुदितस्य हर्षस्य रोदनस्य यः शब्दः, तं शब्दमाश्रित्य तिष्ठतः यस्य कर्णौ सः राजा , प्रत्यभिज्ञाय हर्षं ज्ञात्वा हर्षस्य स्थितिं ज्ञात्वेति भावः, शनैः शनैरवादीत्– मन्दं मन्दमवदत्। पुत्र! नार्हस्येवं भवितुम्– यथा त्वमिदानीं कातरेन भवसि तथा भवितुं त्वं नार्हसि अर्थात् त्वया तथा न भाव्यम्। भवद्विधा भवच्छदृशाः न हि अमहासत्त्वाः महान् चासौ सत्त्वः जीवः महासत्वः न महासत्त्वः अमहासत्त्वः। अर्थात् त्वं सामान्यमानवो नासि। अतः सामान्यमानववद्रोदनं तव नोचितमस्ति। महासत्त्वता महासत्त्वस्य भावः महासत्त्वता तदेव हि प्रथमम् अन्यद्भ्यो गुणेभ्यः पूर्वं अवलम्बनं आधारो भवति, लोकस्य प्रजायाः पश्चात् तदनन्तरं राजबीजता राज्ञः बीजं वीर्यं बलं राज्यत्वं तस्य भावः राजबीजता ''बीजवीर्येन्द्रियाणि चेत्यमरः' अर्थात् प्रजानां अवलम्बनं प्रथमं महानता भवति तदनन्तरं राज्यत्वम्। सत्त्ववतां सत्त्वगुणयुक्तानां अर्थादादर्शभूतानां च आग्रणीः अग्रे गण्यमानः सर्वातिशयाश्रितः सर्वेषां जनानां अतिशयेन आश्रितः क्व भवान् हर्षः, क्व वैक्लव्यम् विकलता, शोकवशादागता कातरता? अर्थात् महासत्त्ववतां शोककालेऽपि कातरता न रोचते। 'कुलप्रदीपोऽसि' कुलस्य मम वंशस्य प्रदीपः दीपक इव भासमानः त्वमसि, इति इति कथनं दिवसकरसदृशतेजसः दिवसं दिनं करोतीति दिवसकरः सूर्यः तद्वत् तेजः वीर्यं दीप्तिर्वा यस्य तादृशस्य, ते तव हर्षस्य लघूकरणमिव अल्पीकरणमिवास्ति। अर्थात् त्वं कुलदीपकादपि श्रेष्ठोऽसि। अतः त्वत्कृते कुलप्रदीप इति कथनं समुचितं नास्ति। 'पुरुषसिंहोऽसि' पुरुषेसु जनेषु सिंह इवासि त्वम् इति कथनं शौर्यपटुप्रज्ञोपबृंहितपराक्रमस्य शौर्यस्य वीरतायाः या पटुता कुशलता तदनुकूला या प्रज्ञा मतिः 'प्रज्ञा शमुषी मतिरित्यमरः' तया प्रज्ञया उपबृंहितस्य परिवर्धितस्य पराक्रमस्य*

बलस्य निन्देव निन्दा इवास्ति। 'क्षितिरियं तव' क्षितिः पृथ्वी इयं मम राज्याधिकारे स्थिता तवास्ति, इति लक्षणाख्यातचक्रवर्तिपदस्य लक्षणेन चिह्नेन आख्यातस्य प्रसिद्धिं गतस्य चक्रवर्तिः पदं स्थानं चक्रवतिपदं तस्य हस्ते चक्रकमलयोर्लक्षणं चक्रवर्तित्वं सूचयति तल्लक्षणेन युक्तो हर्षः। यश्चक्रवर्ति भवति तस्य सम्पूर्णराज्याधिकारः निश्चितमेवास्ति। अतः पृथ्वीयं तवेति कथनं, पुनरुक्तमिव कथितस्यैव कथनं पुनरुक्तं पुनः कथितमिति तद्वेवास्ति। गृह्यतां श्रीः श्रीः लक्ष्मीः सौभाग्यं वा स्वीक्रियताम् इति कथनं, स्वयमेव परानपेक्षया स्वतः एव श्रिया लक्ष्म्या 'लक्ष्मी पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रियेत्यमरः' परिगृहीतस्य स्वीकृतस्य विपरीतमिव प्रतिकूलकथिनमिवास्ति। 'अध्यास्यताम् अधिष्ठीयताम् अयं लोकः संसारः अर्थादस्मिन्संसारे शासनं कुर्विति' इति उभयलोकविजिगीषोरपुष्कलमिव उभयलोकयोः स्वर्गमर्त्ययोः विजिगीषा जेतुं इच्छा वर्तते यस्य तस्य कृते अपुष्कलं अपर्याप्तमिव 'पुष्कलः स्यात्सत्तमश्चातिशोभने इत्यमरः'। 'स्वीक्रियतां कोश' आत्मीक्रियतां गृह्यतां कोशः अर्थसम्भारं राज्यसम्पत्तिरिति भावः 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोरित्यमरः' इति शशिकरनिकरनिर्मलयशःसंचयैकाभिनिवेशिनो यशः अस्ति अस्येति शशी चन्द्रः 'द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकर इत्यमरः' तस्य चन्द्रस्य करः मयूखः तद्वत् निर्मलं मलरहितं दोषरहितं यत् यशः तस्य यशसः संचये एकमात्रं सर्वतोभावेन केवलं अभिनिवेशिनः स्व मनो निधीयते येनासौ अभिनिवेशी तस्य तव हर्षस्य निरुपयोगमिव उपयोगरहितं निरुपयोगं अर्थात् यस्योपयोगिता नास्ति। 'आत्मीक्रियतां स्वीक्रियताम् स्वायत्तीक्रियताम् राजकम्' राज्यभारम् इति गुणगणात्मीकृतजगतो गुणानां गणः समूहः तेन आत्मीकृतः स्ववत् स्वीकृतं जगत् येन तादृशस्य तव गतार्थमिव ज्ञातपूर्वमेव। 'उह्यतां अवलम्बतां धार्यतां राज्यभारः राज्यस्य भारः संचालनादिव्यवस्था' इति भुवनत्रयभारवहनोचितस्य भवुनत्रयस्य स्वर्गमर्त्यपातालेति भुवनत्रयं तस्य भारवहने व्यवस्थासंचालने य उचितः समर्थः तादृशस्य तव कृते कथनमिदं अनुचितनियोग अनुचित आदेश इव। 'प्रजाः परिरक्ष्यन्ताम्' प्रजानां रक्षा विधीयताम् इति कथनं, दीर्घदोर्दण्डार्गलितदिङ्मुखस्य दीर्घः बृहत् दोः भुजौ 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोरित्यमरः' तयोः भुजयोः यो दण्डः तेन अर्गलितं पूर्णरूपेण पिधत्तं दिशः मुखं येन तादृशस्य तव कृते अनुवाद कथनमात्रम् इव। 'परिजनः परिवारस्य जनः परिपाल्यताम् पालनं क्रियताम्, इति लोकपालोपमस्य लोकानां पालकः लोकपालः तेन तुलना वर्तते यस्य तादृशस्य तव कृते आनुषङ्गिकमिव अनुसङ्गादातमिव। 'सातत्येन नैरन्तर्येण शस्त्राभ्यासः शस्त्रचालनस्य अभ्यासः कार्यः

करणीयः इति धनुर्गुणकिणकलङ्ककालीकृतप्रकोष्ठस्य धनुषो गुणः मौर्वी धनुषो रज्जु इति तस्य गुणस्य कर्षणेन यः किणः अंगुष्ठे व्रणः तस्य व्रणस्य कलङ्कः चिह्नं तेन कालीकृतः श्यामीकृतः प्रकोष्ठः अंगुलिभागः यस्य तादृशस्य तव किमादिश्यते कथमादेष्टुं शक्यते। यतोहि त्वं कार्येऽस्मिन् स्वयमेव निपुणः। 'निग्राह्यतां चापलजातम्' निगृह्यताम् स्ववशे क्रियताम् चपलस्य भावः चापलं तस्मादुत्पन्नं चाञ्चल्यम् इति नूतनतरवयसि नूतनं नवीनं तस्मादपि नवीने वयसि आयौ 'खगबाल्यादिनोर्वयः इत्यमरः' निगृहीतेन्द्रियस्य निश्शेषेन गृहीतानि स्ववशीकृतानि इन्द्रियाणि येन तादृशस्य तव कृते निरवकाशेव स्थानविहीनेव अनुचितस्थाने प्रयुक्ता इव मे मदीया प्रभाकरवर्धनस्य वाणी। 'निरवशेषतां निश्शेषेन अवशेषतां नाशतां शत्रवो रिपवः नेयाः प्रापनीयाः इति सहजस्य स्वभाविकस्य तेजस तेजःसम्पन्नस्य एव इयं चिन्ता चिन्तनीयो विषयः। अर्थात् त्वादृशस्य वीरवरस्य कृते कथनमिदं चिन्ताया विषय एव स्यात्। इत्येवं एवम्प्रकारेण वदन्नेव कथयन् एव अपुनरुन्मीलनाय पुनः उन्मीलनाय न निमिमील पिहितं चकार राजसिंहो राजसु सिंह इव पराक्रमसम्पन्नो वीरवरः प्रभाकरवर्धनः लोचने नयने, प्रत्यपद्यत तत्रागतवान् च पूषात्मजः पूषणस्य सूर्यस्य 'मिहिरारुणपूषण इत्यमरः' आत्मजः पुत्रः यमराजः।

हिन्दी – जिसके आँखें बन्द हो रही थी, जो शब्द श्रवण मात्र से ही लोगों को जानने का प्रयास कर रहे थे, ऐसे महाराज प्रभाकरवर्धन ने अपने पुत्र को पहचान कर धीरे धीरे कहा – अयि पुत्र! तुम ऐसा नहीं कर सकते हो। आप जैसे लोग महासत्त्वता विहीन नहीं होते हैं। अर्थात् तुम महानुभाव हो। महासत्त्वता ही लोक का पहला अवलम्बन है राजपुत्रता तो बाद में आती है। तुम महासत्त्वों में अग्रगण्य हो, सभी गुणवानों को अतिशयित करनेवाले हो, कहाँ तुम और कहाँ ये विकलता? तुम कुलदीपक हो' ऐसा कहना तो सूर्य के समान तेजवाले तुमको छोटा करने जैसा है। 'तुम पुरुषसिंह हो' ऐसा कहना शौर्य और पटुप्रज्ञा से बृद्धि को प्राप्त प्रज्ञावाले तुम्हारी निन्दा होगी। 'यह पृथिवी तुम्हारी है' ऐसा कहना लक्षणों से ही चक्रवर्तीपद को प्राप्त तुम्हारे लिये पुनरुक्त ही होगा। 'लक्ष्मी को ग्रहण करो' ऐसा कहना लक्ष्मी के द्वारा परिगृहीत तुम्हारे लिये विपरीत कथन ही होगा। 'इस लोक पर अधिकार करो' ऐसा कहना दोनो लोकों को जीतने की इच्छा रखनेवाले तुम्हारे लिये अपर्याप्त होगा। 'खजाने को स्वीकार करो' यह कहना चन्द्रमा के समान धवल यशोराशि के संचय पर एकमात्र चित्त को लगाने वाले तुम्हारे लिये उपयोग विहीन होगा। 'राज्यभार का वहन करो' ऐसा कहना तीनो लोकों के भार को वहन करने में समर्थ तुम्हारे लिये

अनुचित आदेश होगा। 'प्रजाओं की रक्षा करो' ऐसा कहना अपनी दीर्घ भुजाओं से समस्त दिशाओं के मुख पर अर्गला लगा देनेवाले तुम्हारे लिये केवल कथन मात्र होगा। 'परिजनों का पालन करो' ऐसा कहना लोकपाल के सदृश तुम्हारे लिये आनुषङ्गिक ही होगा। ' निरन्तर शस्त्राभ्यास करो ' ऐसा आदेश भला तुम्हें कैसे दे सकते हैं? धनुष की डोरी को खींचते रहने के कारण बने घाव के चिह्न से तुम्हारी अंगुलियाँ ऐसे ही काली पड़ गयी हैं। अपनी चञ्चलता को रोको' ऐसा यदि तुमको कहे तो नयी अवस्था में ही जितेन्द्रिय तुम्हारे लिये मेरी वाणी बेकार होगी। 'शत्रुओं का पूर्णरूप से संहार करो' ऐसा कहना सहज तेज वाले तुम्हारे लिये चिन्ता का विषय होगा। इस तरह बोलते हुए उस राजसिंह ने पुनः कभी नहीं खोलने के लिये अपनी आँखें मूँद ली और उसी समय यमराज भी वहाँ आ गया।

अस्मिन्नेवान्तरे पूषाप्यायुषेव तेजसा व्ययुज्यत। ततश्च नरपतिजीवितापहरणजनितादात्मजापराधादधोमुखः समभवत्। भूपालाभावशोकशिखिनेवान्तस्ताप्यमानस्ताम्रतां प्रपेदे। मन्दं मन्दमप्रियप्रश्नार्थमिव लौकिकीं स्थितिमनुवर्तमानोऽवातरद्दिवः। दित्सुरिव जनेशाय जलाञ्जलिमपरजलनिधिसमीपमुपससर्प। सद्योदत्तजलाञ्जलिर्दुःखदहनदग्धमिव करसहस्रमालोहितमाधत्त।

अस्मिन्नेवान्तरे एतत्कथनस्य मध्ये एव पूषापि सूर्य अपि 'मिहिरारुणपूषणः इत्यमरः' आयुषेव आयुः जीवनावधिः तेन इव, तेजसा स्वकीयधाम्ना स्वप्रकाशेन व्ययुज्यत वियुक्तोऽभवत्। अर्थात् सूर्यस्यापि प्रकाशस्याल्पता जाता। ततश्च तदनन्तरं लज्जमान लज्जां स्वीकुर्वन्निव इव नरपतिजीवितापहरणजनितादात्मजापराधात् नराणां पतिः नरपतिः राजा तस्य राज्ञः जीवितं जीवनं तस्या जीवनस्य अपहरणं मोषणं मृत्युरिति भावः तस्मात् जनितः उत्पन्नः आत्मजापराधः स्वापराध तस्मात् अपराधबोधात् अधोमुखः नम्रमुखः समभवत्। भूपालाभावशोकशिखिनेवान्तस्ताप्यमानः भुवं संसारं पालयतीति भूपालः राजा तस्याभावः भूपापलस्य मरणेन राज्ञः अभावः तस्मात् उत्पन्न यः शोकरूपः शिखी वह्निस्तेन अन्तः चित्ते तापं तापं अनुभवन् ताम्रतां ताम्रवर्णतां प्रपेदे प्राप्तवान्। मन्दं मन्दं शनैः शनैः अप्रियप्रश्नार्थम् न प्रियः अप्रियः राज्ञो मरणरूपः तदेव प्रश्नः तत् ज्ञानाय इव लौकिकीं लोकानुसारिणीं स्थितिम् अनुवर्तमानो अनुकुर्वन् अवातरत् अवतरितो बभूव दिवः आकाशात्। दित्सुरिव दातुमिच्छा दित्सा,

दित्सा अस्ति अस्येति दित्सुः तद्वत् जनेशाय जनानां ईशः स्वामी जनेशः राजा तस्मै राज्ञे प्रभाकरवर्धनाय जलाञ्जलिम् जलस्य अञ्जलिम्, मरणानन्तरं मृताय दीयते जलस्याञ्जलि' परजलनिधिसमीपम् जलस्य निधिः जलनिधिः समुद्रः, परजलनिधिः पचिश्मसमुद्रः तत्समीपम् उपससर्प अगच्छदिति। सद्यो त्वरितमेव दत्तजलाञ्जलिः दत्तः अर्पितः जलस्य अञ्जलिर्येनासौ दुःखदहनदग्धमिव दुःखमेव दहनं वह्निः तेन वह्निना दग्धं ज्वलितम् इव करसहस्रम् करः मयूखः सहस्रसंख्याकानां मयूखानां समूहः लोहितम् लौहित्यम् रक्तवर्णीयतां अधत्त धृतवान्।

हिन्दी – इसी बीच में सूर्य भी आयु के समान अपने तेज से वियुक्त हो गये। उसके बाद राजा प्रभाकरवर्धन के मरण से उत्पन्न आत्मग्लानि के कारण अपना मुख झुका कर लज्जित सा हो गया। भूपाल के अभाव रूप शोक की अग्नि के ताप से अन्तःकरण के तप्त हो जाने के कारण मानो उसने ताम्रवर्णता को धारण कर लिया।अर्थात् उनका शरीर धूसररक्तवर्ण का हो गया। धीरे धीरे अप्रिय प्रश्न (राजा के मरण रूप) को पूछने के लिये मानो लौकिक स्थिति को धारण करते हुए भगवान सूर्य भी आकाश से उतर गये। राजा (प्रभाकरवर्धन) को जलाञ्जलि देने के लिये मानो सूर्य अपर जलनिधि(पश्चिमसमुद्र) के समीप पहुँच गये। सद्यः जलाञ्जलि देकर दुःख रूप आग से दग्ध की तरह मानो उनकी हजारों किरणें लाल हो गयी।

एवं च महानराधिपनिधनविधीयमानविपुलवैराग्य इव शान्तवपुषि, विशति गिरिगह्वरं गभस्तिमालिनि, समुपोह्यमानमहाजनाश्रुदुर्दिनार्द्रीकृत इव निर्वात्यातपे, रोदनताम्रं सकललोचनरुचेव लोहितायति जगति, उष्णायमानानेकनरनिःश्वाससन्तापप्लुष्ट इव नीलायमाने दिवसे, नृपानुगमनप्रचलितयेव लक्ष्म्या मुच्यमानासु कमलिनीषु, पतिशुचेव परिवृतच्छायायां श्यामायमानायां भुवि, कुलपुत्रेष्विव परित्यक्तकलत्रेषु कृतकरुणप्रलापेषु वनान्ताश्रयत्सु दुःखितेषु चक्रवाकेषु, छत्रभङ्गभीतेष्विव निगूढकोशेषु कुशेशयेषु स्फुटितदिग्वधूहृदयरुधिरपटलप्लव इव गलिते रक्तातपे, क्रमेण च लोकान्तरमुपगतवत्यनुरागशेषे जाते तेजसामधीशे, गगनतलवितन्यमानबहलरागपाटलायां

प्रेतपताकायामिव प्रवृत्तायां सन्ध्यायां, शवशिविकालङ्कारकृष्ण-चामरमालास्विव स्फुरन्तीषु दर्शनप्रतिकूलासु तिमिरलेखासु, असितागुरुकालकाष्ठायां केनापि चितायामिव रचितायां रजन्यां, दन्तामलपत्रप्रासाधितकर्णिकासु केसरमालाकल्पितमुण्डमालिकासु, अनुमर्तुमिवोद्यतासु प्रहसितमुखीषु कुमुदलक्ष्मीषु, अवतरत्त्रिदशविमान किङ्किणीक्वणित इव श्रूयमाणे शाखिशिखरकुलायलीयमानशकुनि कुलकूजिते, नाकपथप्रस्थितपार्थिवप्रत्युद्गतपुरुहूतातपत्र इव पूर्वस्यां दिशि दृश्यमाने चन्द्रमसि, नरेन्द्रः स्वयं समर्पितस्कन्धैर्गृहीत्वा शवशिविकां शिविसमः सामन्तैः पौरैश्च पुरोहितपुरस्सरैः सरितं सरस्वतीं नीत्वा नरपतिसमुचितायां चितायां हुताशसत्क्रियया यशःशेषतामनीयत।

व्याख्या - *एवं च अथ चैवम्प्रकारेण महानराधिपनिधननिधीयमानविपुलवैराग्य नराणां लोकानां अधिपः स्वामी नराधिपो राजा, महान् महान् चासौ नराधिपः महाराजः, तस्य महाराज्ञः निधनेन मृत्युना निधीयमानं गृह्यमानं यत् विपुलं विस्तृतं प्रबलं वैराग्यं संसारे नास्ति रागः प्रेम इति विरागः, विरागस्य भावः वैराग्यं, इव शान्तवपुषि शान्ततां निश्चलतां गते वुपषि शरीरे, अर्थात् वैराग्यावस्थायां यथा निश्चलो भवति कश्चित् योगी तथैव यदा राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य शरीरं शान्तमभवत् तदा, विशति प्रविष्टे गिरिगह्वरं गिरेः पर्वतस्य गह्वरं कुहरं गभस्तिमालिनि गभस्तिः मयूखः, गभस्तीनां माला वर्तते अस्येति गभस्तिमाली भगवान् सूर्यः- 'किरणोऽस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः इत्यमरः' अर्थात् यदा भगवान् सूर्यः पर्वतगुहायां प्रविष्टोऽभवत् ततः, समुपोह्यमानमहाजनाश्रुदुर्दिनार्द्रीकृत संगृह्यमानैः महाजनानां महान् चासौ जनः महाजनस्तेषां अश्रुपातनैरेव दुर्दिनं तेन आर्द्रीकृतः शीतलीकृतः इव निर्वात्यातपे शान्ते सूर्यतापे, अर्थात् महाजनानां रोदनमेव दुर्दिनं तेन दुर्दिनेन वृष्टिमयेन दिवसेन सूर्यस्य तापः शान्तोऽभवत् रोदनताम्रं रोदनेन ताम्रवर्णीयं रक्तवर्णीयमिति भावः, सकललोचनरुचेव सकलानां जनानां यल्लोचनं तस्य रुचा कान्त्या 'स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विडित्यमरः' लोहितायति लोहितवर्णतां प्राप्तवति जगति संसारे, अर्थात् मन्ये रोदनेन लोकानां यल्लोचन रक्तवर्णीयमभवत्। तस्यैव लोचनस्य प्रभया संसारं लोहितवर्णोऽभवत्। उष्णायमानानेकनरनिःश्वास*

सन्तापप्लुष्ट उष्णतां प्राप्यमानाः अनेकेषां नराणां ये निःश्वासाः दीर्घश्वासपंक्तयः तेषां निःश्वासानां सन्तापेन पलुष्टः दग्ध इव मन्ये नीलायमाने नीलवर्णतां प्राप्यमाने दिवसे दिने, नृपानुगमनप्रचलितयेव नृपस्य मृतस्य राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य अनुगमने पृष्ठदेशानुसरणं कुर्वन्ती चलिता या तया लक्ष्म्या श्रिया, मुच्यमानासु त्यज्यमानासु कमलिनीषु पद्मिनीषु, अर्थात् सूर्यास्ते सति कमलिनी स्वसौन्दर्य त्यक्तवती, तथा प्रतीयते मन्ये राज्ञः अनुगमनं कुवन्ती लक्ष्मी कमलिनीं त्यक्तवतीति, पतिशुचेव पत्युः मरणात् उत्पन्नः यः शोकः तया शुचा परिवृतच्छायायां आवृतच्छायायां श्यामायमानायां श्यामवर्णतां प्राप्यमानायां भुवि पृथिव्यां, अर्थात् भूपतेः पत्नी भूः। स्वपत्युर्मरणेन शोकाकुलायाः भार्यायाः मुखं यथा शोकेन श्यामतां याति तथैव सायंकालत्वात् कृत्स्ना भूः श्यामायमानाऽभवत्। कुलपुत्रेष्विव सत्कुलोत्पन्नः पुत्रः कुलपुत्रः तेषु,इव परित्यक्तकलत्रेषु परित्यक्तं कलत्रं येनासौ परित्यक्तकलत्रः, तेषु, कृतकरुणप्रलापेषु कृतः करुणावशात् शोकवशात् प्रलापः प्रकृष्टरोदनं येनासौ कृतकरुणप्रलापः, तेषु , वनान्ताश्रयत्सु वनस्य मध्यभागः वनान्तः तत्र आश्रयं गृहीतवान् यः तादृशेषु दुःखितेषु दुःखं शोकं भजमानेषु चक्रवाकेषु एतदाख्यपक्षिषु, छत्रभङ्गभीतेष्विव राज्ञो विनाशः छत्रभङ्गः 'छत्रभंगोऽपि वैदग्ध्ये स्वातन्त्र्यनृपनाशयोरिति मेदिनी' तस्मात् भीतिं भयं गतेषु इव निगूढकोशेषु निगूढः अतिगुप्रस्थाने निक्षिप्तः कोशः रत्नादीनि येनासौ निगूढकोशः तेषु तादृशेषु वा कुशेशयेषु कमलेषु 'सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयमित्यमरः' स्फुटितदिग्वधूहृदयरुधिरपटलप्लव- स्फुटितं भग्नं दिग्वधूनां दिगेव वधूः तासां यत् हृदयं चित्तं 'राज्ञः मरणजनितशोकवशादिति ध्येयं' तस्मात् हृदयात् निस्सृतं यद् रुधिरं रक्तं तस्य यत्पटलं समूहः 'समूहः पटलं ननेत्यमरः' तस्य पटलस्य यः प्लल्वः प्रवाहः(बाढ़) इव सदृशं गलिते द्रवीभूते रक्तातपे रक्तवर्णस्य प्रकाशे 'प्रकाशो द्योत आतप इत्यमरः' क्रमेण च क्रमशः लोकान्तरमुपगतवति अपरं लोकं भूलोकमपहायन्यलोकं उपगतिवति गते सति, अनुरागशेषे अनुरागः पश्चात्कालिको रागः तदेवावशिष्टो वर्तते यस्य तादृशे जाते स्थितिं प्राप्ते तेजसामधीशे तेजसां धाम्नां प्रकाशपुञ्जानां अधीशे ईश्वरे स्वामिनि सूर्ये इति भावः, गगनतलवितन्यमानबहलरागपाटलायां गगनस्य आकाशस्य तले वितन्यमानः प्रसार्यमानः यः बहलरागः प्रचुरमात्रायां रक्तवर्णः तेन पाटलायां रक्तवर्णतां गतायां प्रेतपताकायाम् प्रेतस्य या पताका ध्वजं तस्मिन् इव प्रवृत्तायां आरब्धायां सन्ध्यायां

दिवसनिशयोर्मिलनवेलायां, अर्थात् यदा सन्ध्याराग: प्रवृत्तोऽभवत् प्रेतस्य पताका इव तदा, शवशिविकालङ्कारकृष्णचामरमालास्विव शवस्य मृतशरीरस्य कृते या शिविका यानविशेष: (अर्थी इति हिन्द्याम्) तस्यां शिविकायां अलंकारभूता: भूषणत्वेन स्थापिता या कृष्णवर्णाश्चामरानां बालव्यजनानां माला: तासु मालास्विव, स्फुरन्तीषु दीप्यमानासु दर्शनप्रतिकूलासु दर्शनस्य दृष्टे: या प्रतिकूला विपरीता तासु तिमिरलेखासु तिमिरस्या-न्धकारस्य लेखा तासु , अर्थात् यदा अन्धकारस्य प्रसारोऽभवत् तदा। य: अन्धकार: नयनप्रतिरोधिनी तथैवासीत् यथा शवशिविकाया आभूषणभूता: कृष्णचामरा: भवन्ति। असितागुरुकालकाष्ठायां असित: कृष्णवर्णीय: य अगरु: गन्धविशेष: अथ तेन सह कालकाष्ठ: कृष्णदारुविशेष: तन्निर्मितायां, केनापि चितायामिव शवासने रचितायां निर्मितायां रजन्यां निशायां, दन्तामलपत्रप्रासाधितकर्णिकासु दन्त: दशन: गजदन्तविशेष: तद्वत् अमलं स्वच्छं पत्रं तेन प्रसाधिता विभूषित कर्णिका कर्णभूषणं 'कर्णिका -अंजववराटे कर्णभूषणे इति मेदिनी' यस्यास्तादृशीषु कुमुदिनीषु, केसरमालाकल्पितमुण्डमालिकासु केसरस्य पुष्परजसो 'केसर: सिंहसटायां पुन्नागे बकुले नागकेशरे इति मेदिनी' या माला: पंक्तय: तया मालया कल्पिता अनुमानिता मुण्डमाला मुण्डस्य माला, अर्थात् केसर एव मुण्डमाला आसीत् तया विभूषिता आसन् या: कुमुदिन्य: अनुमर्तुमिवोद्यतासु राज्ञ: मरणानन्तरं तद्वियोगे मरणाय उद्यतासु सज्जासु प्रहसितमुखीषु प्रहसितं पूर्णविकसितं मुखं यस्या: तादृशीषु कुमुदलक्ष्मीषु कुमुदस्य एतन्नामविशेषपुष्पस्य या लक्ष्मी या शोभा तासु, अर्थात् कुमुदिनीनां कुमुदानां वा शोभा मरणायोद्यताऽभवत् (म्लानिं गता)यदा, तदा, अवतरत्त्रिदशविमानकिङ्किणीक्वणित आकाशदेशात् भूमावागम्यमाना: ये त्रिदशा: देवा: 'त्रिदशा विबुधा सुरा इत्यमर:' तेषां देवानां यद्विमानं वाहनं तस्मिन् विमाने या: किंकिण्य: लघुघण्टिका:'किंकिणी क्षुद्रघण्टिकेत्यमर:' तासां क्वणनं मधुरं रव: इव श्रूयमाणे श्रुतिं गम्यमाने, शाखिशिखरकुलायलीयमानशकुनिकुलकूजिते, शाखी शाखा अस्यास्तीति शाखी वृक्ष: तस्य शिखरे उर्ध्वदेशे कुलाये नीडे कुलायो नीडमस्त्रियामित्यमर:' पक्षिणो निवासे लीयमानानां स्थितानां शकुनीनां पक्षिणां 'शकुन्तिपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजा इत्यमर:' कुलं समूह: तस्य कुलस्य कूजिते कूजनं यदा तदा, नाकपथप्रस्थितपार्थिवप्रत्युद्गतपुरुहूतातपत्र नाकं स्वर्ग प्रति प्रस्थितो यो पार्थिवो राजा प्रभाकरवर्धन: तम्प्रति तत्स्वागतार्थ प्रत्युद्गत: आगत: पूरूहूतस्य इन्द्रस्य 'पुरुहूत:

पुरन्दर इत्यमरः' आतपत्र आतपात् ग्रीष्मात् त्रायते रक्षतीति आतपत्रं छत्रं 'हैमं छत्रं त्वातपत्रं राज्ञस्तु नृपलक्ष्म तदित्यमरः' तत् इव पूर्वस्यां दिशि दृश्यमाने लोकानां नयनप्रत्यक्षीभूते चन्द्रमसि चन्द्रे, अर्थात् यदा चन्द्रस्योदयोऽभवत् तदा, नरेन्द्रः मृतःप्रभाकरवर्धनः स्वयं समर्पितस्कन्धैः शवशिवकोद्वहनाय समर्पितः स्कन्धदेशः यैः तादृशैः गृहीत्वा धृत्वा शवशिविकां शववाहनं शिविसमः महाराजशिविसदृशः (राजा) सामन्तैः लघुनरपतिभिः, पौरैश्च पुरे नगरे वसन्ति ये ते पौराः तैः पुरोहितपुरस्सरैः पुरोहितः हितकारको ब्राह्मणः , ते ब्राह्मणाः सन्ति पुरतः अग्रतः येषां तादृशैः, सरितं नदीं 'नदी सरिदित्यमरः' सरस्वतीं नीत्वा नरपतिसमुचितायां नरपतिपदानुकूलायां चितायां शवदाहाय निर्मितायां वेदिकायां हुताशसत्क्रियया हुताशः अग्निः तस्य सत्क्रिया पूजनं तया क्रियया पूजनं विधायेति भावः यशःशेषतामनीयत यशः एव शेषः अवशिष्टो यस्य तस्य भावं अनीयत्। अर्थात् मृतशरीरस्य दाहानन्तरं केवलं राज्ञो यशः एवावशिष्टमभवत्।

हिन्दी – इस प्रकार जब महाराज के निधन से उनका शरीर शान्त हो गया मानो विपुल वैराग्य ग्रहण कर लिया हो, जब भगवान् सूर्य पर्वता गुफा में प्रवेश कर गये, महाराज के मर जाने पर रोते हुए लोगों की अश्रुवृष्टि से मानो दुर्दिन की तरह जब आतप (गर्मी) शान्त हो गया, रोने के कारण लाल हो चुकी आँखों की कान्ति के समान मानो जब सम्पूर्ण संसार लाल हो गया, शोक के कारण अनेक लोगों के गर्म निश्वासों के ताप से मानो जल जाने के कारण जब दिन काला पड़ गया, राजा प्रभाकरवर्धन का अनुगमन करने के लिये जाती हुई लक्ष्मी ने जब कमलिनियों को छोड़ दिया अर्थात् जब कमलिनी मुकुलित हो गयी, कुल पुत्र की तरह चक्रवाकों ने जब बन का आश्रय लेकर पत्नियों को छोड़ दिया और करुण विलाप करने लगा, राजविनाश(छत्रभङ्ग) के भय से जब कमल ने अपना कोश को छिपा लिया। (अर्थात् जैसे राजविनाश होने पर धनिक व्यापारी लोग अपना खजाना लुटने के भय से छिपा लेते है। वैसे कमल ने अपना कोष छिपा लिया, कमल बन्द हो गया।) जब रक्त आतप लाल रंग चारों ओर से गलने लगा मानो राजा के मरणरूप शोक के कारण दिशारूप बधुओं का हृदय फट गया हो और उससे रक्त की धारा बहने से बाढ़ आ गयी हो, क्रमशः जब तेजों के अधिपति भगवान सूर्य दूसरे लोक में चले गये, उनकी लालिमा ही केवल बच गयी, सन्ध्या में लाल रंग के विस्तार से आकाश का भाग जब प्रेत की पताका के समान पूर्ण लाल हो गया, जब अन्धकार की रेखा चारो ओर फैलने लगी, जो दृष्टि के प्रतिकूल थी, जो शववाहन के अलंकारस्वरूप

काले चामर की माला जैसी थी, काले अगरु और काली लकड़ियों से बनायी गयी चिता के समान जब रात्रि का आरम्भ हो गया, गजदन्तपत्र के समान पत्र से जिसने अपना कर्णाभूषण बना लिया , केसरमाला से ही जिसने मुण्डमाला का निर्माण कर लिया ऐसी हँसती हुई कुमुदनी की लक्ष्मी(शोभा) जब मरने को उद्यत हो गयी, अर्थात् कुमुद खिल गये, आकाश देश से उतरते हुए देवताओं के वाहन में लगी छोटी घंटियों की आवाज के समान वृक्षों की शाखाओं पर छिपकर बेठे हुए पक्षियों का समूह जब चहचहाने लगा, स्वर्ग लोक के लिये प्रस्थित राजा प्रभाकरवर्धन के लिये स्वागत में आगे आये हुए इन्द्र के छत्र के समान चन्द्रमा जब पूर्व दिशा में दिखाई देने लगा, तब अपने कन्धों शववाहन (अर्थी) को उतारकर उसे पुराहितों के साथ सामन्तों और नगरवासियों ने सरस्वती नदी के किनारे ले जाकर राजा के अनुकूल चिता पर अग्नि का अर्चन का उस मृतशरीर को केवल यश मात्रावशेष कर दिया अर्थात् जला दिया।

देवोऽपि हर्षः पुञ्जीभूतेन सकलेनेव जीवलोकेन लोकेन राजकुलसंबद्धेनाशेषेण शोकमूकेन परिवृतोऽन्तर्वर्तिनापि शोकानलतप्तेन स्नेहद्रवेण बहिरिव सिच्यमानो निर्व्यवधानायां धरण्यामुपविष्ट एव तां निशिथींनीं भीमरथीभीमामखिलां सराजको जजागार। अजनि चास्य चेतसि ताते दूरीभूते सम्प्रत्येतावान्खलु जीवलोकः, लोकस्य भग्नाः पन्थानः, मनोरथानां खिलीभूतानि भूतिस्थितानि, स्थगितान्यानन्दस्य द्वाराणि सुप्ता सत्यवादिता, लुप्ता लोकयात्रा, विलीना बाहुशालिता, प्रलीना प्रियालापिता , प्रोषिताः पुरुषकारविहारविकाराः, समाप्ता समरशौण्डता, ध्वस्ता परगुणप्रीतिः, विश्रान्ता विश्वासभूमयः, अपदान्यपदानानि निरुपयोगानि शास्त्राणि, निरवलम्बना विक्रमैकरसता, कथावशेषा विशेषज्ञता, ददातु जनो जलाञ्जलिमौर्जित्याय, प्रतिपद्यतां प्रव्रज्यां प्रजापालता, बध्नातु वैधव्यवेर्णीं वरमनुष्यता,समाश्रयतु राजश्रीराश्रमपदम्, परिधत्तां धवले वाससी वसुमती, वहतु वल्कले विलासिता, तपस्यतु तपोवनेषु तेजस्विता, प्रावृणोतु चीवरे वीरता, क्व गम्यतां पुनस्तस्य कृते

कृतज्ञतया, क्व पुनः प्राप्स्यति तादृशान्महापुरुषनिर्माणपरमाणून्परमेष्ठी, शून्याः संवृत्ताः दशदिशो गुणानाम्, जगज्जातमन्धकारं धर्मस्य, निष्फलमधुना जन्मशस्त्रोपजीविनाम्। तातेन विना कुतस्त्यास्तादृश्यो दिवससमसमररसमारब्धकलहकथाकण्टकितसुभटकपोलभित्तयो वीरगोष्ठयः। अपि नाम स्वप्नेऽपि दृश्येत दीर्घरक्तनयनं पुनस्तन्मुखसरोजम्, जन्मान्तरेऽपि पुनः परिष्वजेत तल्लौहस्तम्भाभ्यधिकगरिमगर्भं भुजयुगलम्, लोकान्तरेऽपि पुत्रेत्यालपतः पुनः पुनः श्रूयेत सा सुधारसमुद्गिरन्ती मथ्यमानक्षीरसागरोद्गारगम्भीरा भारतीति। एतानि चान्यानि च चिन्तयत एवास्य कथमपि सा क्षयमियाय यामिनी।

व्याख्या - *देवोऽपि हर्षः एतदाख्यः प्रभाकरवर्धनस्य पुत्रः अपि, पुञ्जीभूतेन एकत्रीभूतेन समूहः एव पुञ्जः जनानां एकत्रीकरणेव पुञ्जीभवनमित्यवधेयम्, सकलेनेव सम्पूर्णेन जीवलोकेन जीवानां लोकः निवासभूमिः मर्त्यलोकं तत्रस्थितेन लोकेन जनेन 'लोकस्तु भुवने जने इत्यमरः' राजकुलसंबद्धेन राज्ञः कुलं राजकुलं तेन कुलेन बद्धः राजकुलबद्धः, तादृशेन जनेन, अर्थात् राजकुलसम्बद्धा ये जनाः आसन् तैस्सह, अशेषेण न शेषः अशेषः तेन शोकमूकेन प्रभाकरवर्धनस्य मरणजनितशोकवशात् मूकतां वाग्विहीनतां गतो यो तादृशः जनसमूहः तेन , अर्थात् तस्मिन्समूहे सर्वे जनाः शोकवशात् वाखिहीना आसन्। परिवृतः पूर्णरूपेणावृतः आच्छन्नः अन्तर्वर्तिना अन्तः हृदये वसतीति अन्तर्वर्ति तादृशेन अपि शोकानलतप्तेन शोकः एवानलः अग्निः तस्मादुत्पन्नस्तापः तद्वशात् तप्तेन उष्णतां गतेन स्नेहद्रवेण स्नेहः प्रेम एव द्रवो वा प्रेम्णः द्रवेण, बहिरिव बाह्ये शरीरे इव सिच्यमानो अभिषिच्यमाने आर्द्रीक्रियमाणे निर्व्यवधानायां नास्ति व्यवधानं यस्यां तस्यां, धरण्याम् भूमौ अर्थात् यस्यां भूमौ कञ्चिदास्तरणादिकं नासीत् तस्यां उपविष्ट एव तां निशीथिनीं रात्रिं 'निशानिशीथिनी रात्रिस्त्रियामाक्षणदा क्षपेत्यमरः' भीमरथीभीमाम् भीमरथी नाम नरकविशेषः तद्वत् भीमां भीषणां 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकमित्यमरः' अखिलां समस्तां (रजनीं) सराजको रासम्बन्धिनः सराजकः तेन राजपरिवारेण सह जजागार जागरणं कृतवानिति। अजनि उत्पन्ना अभवत् च अस्य हर्षस्य चेतसि चित्ते हृदये 'चित्तं तु चेतो हृदयमित्यमरः' ताते पितरि दूरीभूते दूरं गते मृत्युं प्राप्ते सति, सम्प्रति इदानीं अस्यामवस्थायामिति एतावान् एतादृशः अर्थात् मादृशः अनाथ इति भावः , खलु जीवलोकः जीवानां प्राणिनां लोकः संसारः 'त्रिष्वथो*

जगती लोको विष्टपं भुवनं जगदित्यमर:' लोकस्य संसारस्य भग्ना: विच्छिन्नतां गता: पन्थान: मार्गा:, अर्थात् संसारगमनमार्ग एव नष्ट:, तात्पर्यमिदं यत् य: ससारं स्वजीवनगतिविषयपाठं पाठयति स्म तदभावे संसारस्य लोकयात्रैव नष्टा, मनोरथानां मनसा कल्पितानामिच्छानां ''वाञ्छा लिप्सा मनोरथ इत्यमर:' खिलीभूतानि व्यर्थीभूतानि भूतिस्थितानि भूते: ऐश्वर्यस्य स्थानानि , अर्थात् यत्र मनोरथानां विकासो भवति स्म तत् स्थानमेव नष्टमिति भाव:, स्थगितानि अवरुद्धानि पिधत्तनि वा आनन्दस्य सुखस्य 'स्यादानन्दथुरानन्दशर्मशातसुखानि चेत्यमर:' द्वाराणि प्रवेशमार्गा: सुप्ता निद्रां गता सत्यवादिता सत्यं वदति य: स सत्यवादी , तस्य सत्यवादिनो भाव: सत्यवादितेति, लुप्ता क्वचिन्निलीनो लोपं गता वा लोकयात्रा लोकव्यवहार:'यात्रा स्याद्यापने गतावित्यमर:' , विलीना विशेषेण लीनतां नाशतां गता बाहुशालिता बाहुवीर्यप्रभाव: इति, प्रलीना प्रकर्षेण पूर्णरूपेणेति लीनतां गता विनाशं गतेति भाव:, प्रियालापिता प्रियं मधुरं आलपनं भाषणं प्रियालाप: तस्य भाव: प्रियालापिता, प्रोषिता: दूरं गता पुरुषकारविहारविकारा: पुरुषकार: पौरुषं तस्य विहारो विलास: तस्य विलासस्य विकारा: विविधरूपता, समाप्ता समाप्तिं गता, समरशौण्डता समरे युद्धे शौण्ड: मत्त: समरशौण्ड: तस्य भाव: समरशौण्डता, 'मत्ते शौण्ड:' इत्यमर:' ध्वस्ता नष्टा, परगुणप्रीति: परेषां गुणानां प्रीति: स्नेह:, परगुणोत्कर्षाभिनन्दनमिति विश्रान्ता विश्रान्तिं गता समाप्तेति भाव:, विश्वासभूमय: विश्वासस्य भूमि: स्थानं, अर्थात् विश्वासस्य प्रत्ययस्य स्थानमेव नष्टम्, अपदान्यपदानानि न पदं स्थानमिति अपदं तथाभूतानि निराश्रयानीति अपदानानि वृत्तकर्माणि वीरताया: कार्याणीति, निरुपयोगानि प्रयोगरहितानि शास्त्राणि, निरवलम्बना अवलम्बनं आधार: न अलवलम्बनं यस्या: सा निरवलम्बना आधारविहीनेति भाव:, विक्रमैकरसता अतिशक्तितायां एकमात्रं रसस्य आनन्दस्य भाव: 'विक्रमस्त्वतिशक्तितेत्यमर:' अर्थात् पराक्रमे या शक्तिप्रदर्शनजनितानन्दो भवति, तस्यानन्दस्याधार एव नष्ट:, कथावशेषा कथायां कथनमात्रं एव अवशिष्टा कथावशेषा, विशेषज्ञता विशेषज्ञानस्य भाव:, ददातु जनो जलाञ्जलिम् जलस्याञ्जलिं, और्जित्याय बलान्विताय तेजस: स्वरूपाय, मृत्योरनन्तरं तस्मै जलाञ्जलिर्दीयते बन्धुभिरिति लोकव्यवहार:, प्रतिपद्यतां आश्रयतु गृह्णातु, प्रव्रज्यां प्रकृष्टा व्रज्या यात्रा प्रव्रज्या, संन्यासधर्मं 'यात्रा व्रज्याभिनिर्वाणमित्यमर:' प्रजापालता प्रजां पालयति य: स प्रजापाल: तस्य भाव: प्रजापालता, बध्नातु प्रथ्नातु वैधव्यवेर्णी गतो धव: पतिर्यस्या सा विधवा तस्या विधवाया: भावं वैधव्यं तदनुकूलं वेर्णी केशपाशं वरमनुष्यता, मनुष्यस्य भाव:

वरः श्रेष्ठः , अर्थात् श्रेष्ठा मनुष्यता विधवा जाता, समाश्रयतु आश्रयं निवासस्थानं गृह्णातु राजश्रीः राज्ञः नरपालस्य श्रीः शोभा विभूतिः राजश्रीः आश्रमपदम् आश्रमस्थानं तपोवनमित्यर्थः, अर्थात् राजनि मृते राजश्रीः तपोवनमेव गच्छतु अन्यथा राजाभावे तस्य रक्षकः को भवेत्? परिधत्तां धारयतु , धवले वाससी श्वेतवस्त्रयुगले वसुमती धरणी 'सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुंधरेत्यमरः' अर्थादियं धरणी इदानीं विधवाऽभवदिति निश्चितं तत्पालकाभावात्। वहतु धारयतु वल्कले त्वग्वस्त्रे 'त्वक् स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियामित्यमरः' विलासिता राजभोगविलासस्य भावः विलासिता, अर्थात् भोगविलासितेदानीं धरणी त्पहाय गता। तपस्यतु तप आचरतु, तपोवनेषु तपस्यार्थमुचितं यत्काननं वन तत्तपोवनं तेषु वनेषु ,तेजस्विता तेजसा युक्तस्तेजस्वी, तस्य भावः तेजस्विता, प्रावृणोतु चीवरेणावृणोतु चीवरे वसनखण्डे जीर्णवस्त्रे इति भावः, वीरता वीरस्य भावः वीरता, क्व गम्यतां कुत्र गच्छेत् पुनस्तस्य राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य कृते कृतज्ञतया कृतोपकारवेदितया, अर्थात् मम तातस्य कृते या कृतज्ञता वर्तते लोकानां सा क्व गच्छेदिति चिन्तनीयविषयः, क्व पुनः प्राप्स्यति लप्स्यते तादृशान् यथा मम तातपादस्य निर्माणे आसन् तथा, महापुरुषनिर्माणपरमाणून् महान् चासौ पुरुषः महापुरुषः तस्य महापुरुषस्य निर्माणे उत्पादने जनने येषं परमाणूनामावश्यकता भवति तादृशान् परमाणून् परमेष्ठी विधाता 'ब्रह्मात्मभूः सुरश्रेष्ठः परमेष्ठी पितामहः इत्यमरः' तात्पर्यमिदं यत् महापुरुषानां निर्माणे विशेषपरमाणूनामावश्यकता भवति। यादृशानां परमाणूनां बलेन मम तातपादसदृशानां महोदयानां निर्माणमभवत् तादृशानां परमाणूनां ग्रहणं पुनः कुतः करिष्यति विधाता। शून्याः संवृत्ताः शून्यतां गताः दशदिशो पूर्वपश्चिमादिदिशः गुणानाम्, जगज्जातमन्धकारं अन्धकारमयमभवत् ससारं धर्मस्य, निष्फलम् फलविहीनं परिणामहीनं इदानीं अधुना जन्म जननं जीवंन वा शस्त्रोपजीविनाम् शस्त्रबलेन जीवन्ति ये तेषां वीराणामिति भावः, तातेन पित्रा विना कुतत्याः कुत आगताः तादृश्यो यथ पूर्व भवति स्म तथा, दिवससमसमररसमारब्धकलहकथाकण्टकितसुभटकपोलभित्तयो आदिवसं समः तुल्यः समरस्य युद्धस्य रसः आनन्दः अनुरागः तेनारब्धः यः कलहः वाक्कलहः तादृशीभिः कथाभिः कण्टकिताः रोमाञ्चिताः सुन्दरश्चासौ भटः सैनिकः सुभटः 'भटा योधाश्च योद्धारः इत्यमरः' तेषां सुभटानां कपोलस्य गण्डस्थलस्य भित्तयः गण्डस्थलानीति, वीरगोष्ठयः वीराणां गोष्ठयः सभाः 'समज्या परिषद्गोष्ठी सभासमिति संसदः इत्यमरः' अर्थात् यस्यां वीरगोष्ठ्यां आदिनं परस्परं स्वयुद्धकथालापे वीराणां रोमाञ्चो भवति स्म ताः गोष्ठयः इदानीं मृते मम पितरि क्वः पुनर्भविष्यन्ति?

अपि नाम अव्ययद्वयेन स्यात्कथञ्चिदित्यर्थो लभ्यः, स्वप्नेऽपि सुप्तावस्थायामपि यतोहि जागरितावस्थायां त्वसम्भवमेतत्सर्वमग्रे वर्णितं, दृश्येत दृष्टिपथमागच्छेत् दीर्घरक्तनयनं दीर्घ विशालं रक्तवर्णीयं च पुनः तन्मुखसरोजम् तस्य तातस्य प्रभाकरवर्धनस्य मुखमेव सरोजं कमलमिति, जन्मान्तरे अन्यजन्मन्यपि पुनः परिष्वजेत तल्लौहस्तम्भाभ्यधिकगरिमगर्भ तस्य प्रभाकरवर्धनस्य मम तातपादस्य लौहनिर्मितो यः स्तम्भः तस्मादपि अधिकं गरिमापूर्ण शक्तियुक्तं भुजयुगलम् बाहुयुगलम्, तात्पर्यमिदं यत् मम पितुः बाहूयुगलं लौहस्तम्भादपि बलवत्तरमास्तामिति, लोकान्तरेऽपि मर्त्यलोकादन्यस्मिन् लोके स्वर्गेऽपीति भावः, पुत्रेत्यालपतःहा पुत्र हा पुत्र! आलपनं भाषणं कुर्वतः, पुनः पुनः बारम्बारं श्रूयेत श्रुतिपथमागच्छेत् सा पूर्व श्रुता सुधारसमुद्गिरन्ती सुधाया अमृतस्य रसं मधुरधारां उद्‌गिरन्ती प्रवाहयन्ती मथ्यमानक्षीरसागरोद्‌गारगम्भीरा मथनकालिको यः क्षीरसागरः दुग्धसमुद्रः तस्योद्‌गारस्वरूपा तस्मादुत्पन्ना या गम्भीरा गहनभावनसम्पन्ना भारतीति वाणीति 'ब्राह्मो तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वतीत्यमरः'। एतानि पूर्वोक्तानि चान्यानि एतदतिरिक्तानि अपि च चिन्तयत विचारं कुर्वतः एव अस्य हर्षवर्धनस्य कथमपि येन केनापि प्रकारेण सा क्षयं समाप्तिं इयाय गतवती समाप्ताऽभवदित्यर्थः यामिनी रात्रिः रजनी 'रजनी यामिनी तमीत्यमरः।

हिन्दी – देव हर्षवर्धन ने भी विना आवरण के धरती पर बैठकर ही सभी लोगों के साथ भीमरथी नामक नरक के समान उस रात्रि को बिता दिया। उस समय सभी लोक ऐसे एकत्रित हो गये थे मानो सम्पूर्ण संसार के जीवलोक एकत्रित हो गये हों, जिसमें राजकुल से सम्बन्ध रखने सभी लोग शामिल थे, जो उस समय शोक के कारण मूक हो गये थे। मानो हर्ष उस समय अन्तर्दाह से तप्त स्नेह रूप द्रव से मानो बाहर से सिञ्चित हो रहे थे। उस समय इसके (हर्ष) के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि – मेरे पिता के दूर चले जाने पर मानो यह संसार अब ऐसा ही रह गया है, सम्पूर्ण लोगों का सभी मार्ग भग्न हो चुका है, सभी मनोरथों का ऐश्वर्यस्थान व्यर्थ हो चुका है, अर्थात् अब किसी का कोई मनोरथ पूरा होनेवाला नहीं है। आनन्द के सभी द्वार बन्द हो गये, सत्यवादिता सो गयी, लोकयात्रायें लुप्त हो गयी, बाहुशालिता अब विलीन हो गयी, प्रियालपिता (प्रिय बोलने का स्वभाव) समाप्त हो गया, पुरुषों के अनुरुष विहार (भोग) की कलायें दूर चली गयीं, समरशौण्डता (युद्ध क्षेत्र में मदमत्त होकर घूमना) समाप्त हो गयी, दूसरे के गुणों का सम्मान करना अभिनन्दन करना ध्वस्त हो गया, विश्वास का स्थान नष्ट हो गया, वीरता पूर्ण कार्यों के लिये

अब कोई स्थान नहीं रह गया मानो उसका प्रयोजन ही समाप्त हो गया, विक्रम में एक मात्र आनन्द लेने वाले आज आधारविहीन हो गये, विशेज्ञता अब कथाओं में ही अवशिष्ट रह गयी, अब लोग बलशालिता को जलाञ्जलि (मरने के बाद दिया जानेवाला जलदान) अर्पित करें, श्रेष्ठ मानवता अब विधवा की तरह केशपाश संयमित कर ले, राज्यशोभा अब आश्रम (तपोवन) में चली जाय, यी धरती अब उजला कपड़ा धारण कर ले (क्योंकि वह विधवा हो चुकी है।) विलासिता अब वल्कल धारण कर ले, तेजस्विता तपोवन में जाकर तपस्या आरम्भ कर दे, वीरता जीर्ण वस्त्रों में लिपट जाये, अब उनके लिये (पितृपाद प्रभाकरवर्धन के लियें) कृतज्ञता कहाँ जाये? स्वयं विधाता अब वैसे महापुरुषों के निर्माण के लिये परमाणू कहाँ से प्राप्त करेंगे? गुणों के लिये दशो दिशायें बन्द हो गयी, धर्म का संसार अन्धकार में डूब गया, शस्त्र के बल पर जीनेवालों का जन्म अब निष्फल हो गया। मेरे पिता के विना अब वीरों की वह गोष्ठियाँ कहाँ जायेगी? जिसमें अतुलनीय वीरता पूर्ण युद्ध की चर्चा में होनेवाले कलह से वीरों के कपोल रोमाञ्चित हो जाया करते थे। काश! कभी स्वप्न में भी वो रक्तवर्णीय विशा मुखकमल देखने को मिल जाय। काश! जन्मन्तर में भी पुनः लोहे के स्तम्भ से भी अधिक गौरव पूर्ण वो बाहूयुगल मुझे आलिंगित करे। अन्य लोक में भी हा पुत्र! हा पुत्र! कहते हुए सुधा रस का वमन करती हुई मथे जाते हुए क्षीरसागर के उद्गार के समान गम्भीर वाणी (पिता की) पुनः बार बार सुनाई दे जाय। इस प्रकार पूर्वोक्त बातें और अन्य बातें को भी सोचते हुए किसी तरह उस रात्रि को बिता दिया।

ततः शुचेव मुक्तकण्ठमारटत्सु कृकवाककुलेषु, गृहगिरितरुशिखरेभ्यः पातयत्स्वात्मानं मन्दिरमयूरेषु, परित्यक्तनिजनिवासेषु च वनाय प्रस्थितेषु पत्ररथेषु, सद्यस्तनूभूते ताम्यति तमसि, मन्दीभूतात्मस्नेहेष्वभावमभिलषत्सु प्रदीपेषु, स्फुरदरुणकिरणवल्कलप्रावृतवपुषि प्रव्रज्यामिव प्रतिपन्ने नभसि, प्रभातसमयेन समुत्तीर्यमाणासु पार्थिनास्थिशकलास्विव कलविङ्क-कन्धरधूसरासु तारकासु भूभृद्धातुगर्भकुम्भधारिषु विविधसरःसरित्तीर्थाभिमुखेषु वनकरिकुलेषु , शावशुचिसिक्थपटलपाण्डुरे पिण्ड इवापरपयोनिधिपुलिनपरिसरे पात्यमाने शशिनि, क्रमेण च

नृपचितानलधूमविसरधूसरीकृततेजसीव, नरपतिशोकपावक दाहकिरणकलङ्ककालीकृतचेतसीव, प्रोषितसमस्तान्तःपुरपुरन्ध्रिमुखचन्द्रवृन्दोद्वेगविद्राणवपुषीव प्रथमास्तमित रोहिणीरणरणक विमनसीव चास्तमुपगते रजनिकरे, राजतीव देवे दिवमारूढे सवितरि, परिवृते राज्य इव रजनीप्रबन्धे, बुद्धराजहंसमण्डलप्रबोध्यमानः पङ्कजाकर इव चचाल स्नानाय देवो हर्षः।

व्याख्या - ततः तदनन्तरं हर्षस्य पूर्वोक्तांशस्य कथनस्य पश्चात् शुचेव शोकेन इव 'मन्युशोकौ च शुक् स्त्रियामित्यमरः' मुक्तकण्ठम् मुक्तेन कण्ठेनति भावः, आरटत्सु शब्दं कुर्वत्सु, कृकवाककुलेषु कृकवाकस्य ताम्रचूडस्य 'मुर्गा' इत्यस्य यत्कुलं वंशः समूहः तेषु 'कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चारणायुध इत्यमरः' गृहगिरितरुशिखरेभ्यः गृहे सद्मनि राजभवने 'गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनमित्यमरः' ये गिरयः पर्वताः अचलाः, 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चया इत्यमरः'शोभायै निर्मिताः पर्वताः, तत्र पर्वते ये तरवो वृक्षाः 'वृक्षो महीरुहो शाखी विटपी पादपस्तरुरित्यमरः' तेषां वृक्षाणां शिखरेभ्यः मूर्धभागेभ्यः, पातयत्सु अधः कारयत्सु अवतारयत्सु क्षिपत्सु वा आत्मानं स्वं स्वशरीरं, मन्दिरमयूरेषु, मन्दिरे राजभवने पालिताः पोषिताः ये मयूराः शिखिनस्ते मन्दिरमयूरास्तेषु 'निशान्तपरस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरमित्यमरः' परित्यक्तनिजनिवासेषु परित्यक्तो निजः स्वकीयः निवासः येन स परित्यक्तनिजनिवासः तादृशेषु तेषु वा , च वनाय काननाय प्रस्थितेषु प्रस्थानं कृतवत्सु गतेष्वितिभावः,पत्ररथेषु पतत्रिषु पक्षिषु 'पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजा इत्यमरः', सद्यः शीघ्रं तनूभूते स्वल्पीभूते कृशतां गते ताम्यति अवसादं गच्छति,तमसि अन्धकारे 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः इत्यमरः' , मन्दीभूतात्मस्नेहेष्वभावमभिलषत्सु मन्दीभूते स्वल्पतां गते आत्मनः स्वकीयः य स्नेहः द्रवः तैलम् तेषु अर्थात् तैलस्याभावो यदाऽभवत् तदा वा स्नेहाभावो यदाऽभवत् तदा, न भावः अभावः तादृशमभावमभिलषत्सु वाञ्छत्सु प्रदीपेषु, दीपकेषु, स्फुरदरुणकिरणवल्कलप्रावृतवपुषि स्फुरत् प्रकाशमागच्छत् य अरुणः सूर्यस्य सारथिः तस्य किरणं मयूखः 'किरणोऽस्त्रिमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः इत्यमरः' तदेव वल्कलं वृक्षत्वक् तेन वल्कलेन प्रावृतं आच्छादितं यद्वपुः शरीरं 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः इत्यमरः' तस्मिन्, अर्थात् प्रकाशमागच्छत् सूर्यकिरणस्य

वल्कलेनाच्छादितमभवत् शरीरं यदा तदा, प्रव्रज्यामिव संन्यासमिव प्रतिपन्ने स्वीकृते नभसि आकाशे गगने 'नभोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खमित्यमरः' प्रभातसमयेन प्रभातकालिको यः समयः कालः तेन अर्थात् प्रातःकाले जायमाने, समुत्तीर्यमाणासु (गगनाब्धेः)पारं गतासु पार्थिवास्थिशकलास्विव पार्थिवो नाम राजा (प्रभाकरवर्धनः) 'राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः इत्यमरः' तस्य अस्थीनां शकलाः खण्डाः तादृशीषु(तारकासु इत्यस्य विशेषणम्) कलविङ्ककन्धरधूसरासु कलविङ्को नाम पक्षिविशेषः चटका इति 'चटकः कलविंकः स्यात्तस्य स्त्री चटका तयोरित्यमरः' तेषां पक्षीणां यः कन्धरः स्कन्धदेशः 'शिरोधिः कन्धरेत्यपीत्यमरः' तद्वत् धूसरवर्णतां गतासु, तारकासु नक्षत्रमालासु भूभृद्धातुगर्भकुम्भधारिषु भूभृत् नाम पर्वतः 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः इत्यमरः' तत्र पर्वते यो धातुः गेरुकादिः तद् धातुरस्ति गर्भे अन्ते यस्य तादृशं कुम्भं घटं कुम्भस्थलं 'कुम्भौ घटेभमूर्धांशावित्यमरः' वा धरति यः तादृशेषु, विविधसरःसरित्तीर्थाभिमुखेषु विविधाः सरांसि तडागाः सरितः नद्यः तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि तानि प्रति अभिमुखेषु गम्यमानेषु, वनकरिकुलेषु वनस्य काननस्य ये करिणः गजाः तेषां यत्कुलं समूहः तेषु, शावशुचिसिक्थपटलपाण्डुरे शवसम्बन्धितः शाव इति, तदर्थ शुचि पवित्रं यत् सिक्थपटलं भक्तग्राससमूहः 'संक्षेपे भक्तसिक्थके इत्यमरः' तद्वत् पाण्डुरे ईषत्पीतवर्णे धवलपीतमिश्रितवर्णे, पिण्डः प्रेतभोजनाय निर्मिता गोलाकारौदनपुञ्ज इव अपारपयोनिधिपुलिनपरिसरे अपरः पयोनिधिः पश्चिमसागरः तस्य पुलिनस्य सैकततटस्य 'तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयमित्यमरः' परिसरे प्राङ्गने ,पात्यमाने पतनं गम्यमाने शशिनि चन्द्रमसि, क्रमेण च क्रमशः एकैकं कृत्वा, नृपचितानलधूमविसरधूसरीकृततेजसीव -नृपस्य राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य चितायाः शवासनस्य य अनलः अग्निः तस्मादुत्थितो यो धूमः तस्य विसरेण प्रसरितसमूहेन धूसरीकृतं धूसरवर्णतां गतं तेजः दीप्तिः इव, नरपतिशोकपावक दाहकिरणकलङ्ककालीकृतचेतसीव, नराणां पतिः नरपतिः राजा प्रभाकरवर्धनः तस्य मरणजनितशोक एव पावकः 'कृशानुः पावकोऽनल इत्यमरः' तस्य दाहकिरणैः उष्णकिरणैः जनितकलङ्केन लक्षणेन चिह्नेन कालीकृतं कृष्णवर्णतां गतं यच्चेतः तस्मिन् चेतसीव, प्रोषितसमस्तान्तःपुरपुरन्ध्रिमुखचन्द्रवृन्दोद्वेगविद्राणवपुषीव प्रोषितानां पतिशोकात् वियोगदग्धानां समस्तानां अन्तःपुरस्थानां पुरन्ध्रीणां सच्चरित्राणां 'पुरन्ध्री सुचरित्रा तु सती साध्वी पतिव्रतेत्यमरः' मुखमेव चन्द्रः तस्य यो वृन्दः समूहः तस्योद्वेगात् अधैर्यात् विद्राणं पलायमानं वपुः, तस्मिन्निव,

प्रथमास्तमितरोहिणीरणरणकविमनसीव प्रथमं पूर्व अस्तमितां अस्ताचलं गन्तुमुद्यता या रोहिणी एतदाख्या तारका नक्षत्रं तस्या: तारकाया: रणरणकेन रणरण: करोतीति रणरणक: तेन नूपुरशब्देन 'रण: क्वणे इत्यमर:' वा उत्कण्ठया कल्पितवियोगजनितोत्कण्ठया विकृतं मन: विमन: यस्य तादृशावस्थां गते इव, चास्तमुपगते अस्ताचलं प्राप्ते रजनिकरे, रजनीं रात्रिं करोतीति रजनिकर: चन्द्र: तस्मिन्, राजतीव शोभायमानतां गते, देवे स्वामिनि प्रभाकरवर्धने, दिवमारूढे गगनं गतवति सवितरि सूर्ये, परिवृते परिवर्तनं गते राज्य इव रजनीप्रबन्धे रात्रे: प्रबन्धे बुद्धराजहंसमण्डलप्रबोध्यमान: बुद्धो जागरितो यो राजहंसानां राजसु हंसतुल्यानां नरपतीनां वा हंसेषु यो राजा स राजहंस: तेषां राजहंसानां यन्मण्डलं समूह: तेन प्रबोध्यमान: जागरणाय प्रेर्यमाण:, पङ्कजाकर: पंकजानां कमलानां आकर: खनि: कोष: 'खनि: स्त्रियामकर इत्यमर:' इव चचाल प्रस्थितवान् स्नानाय अभिषेकाय देवो स्वामी हर्ष:।

हिन्दी – इसके बाद जब मुर्गे मुक्तकण्ठ से आवाज करने लगे, जब घर में बने पर्वतों के उपर लगे वृक्षों के उपर से राजभवन में रहनेवाले मयूर उतरने लगे, जब पक्षिगण अपने घोंसलों को छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करने लगे, जब अवसाद के कारण अन्धेरा शीघ्र ही दुबला हो गया, जब दीपक खत्म हो चुके लोगों के आत्मस्नेह के समान तेल की अभिलाषा करने लगे, अर्थात् जब लोगों का आत्मस्नेह सामप्त हो गया और दीपक का तेल समाप्त हो गया, उदित होते हुए अरुण (सूर्यसारथि) के किरण रूप वल्कल को धारण कर जब आकाश संन्यास धारण कर चुका, जब प्रभात काल के साथ राजा के अस्थिखण्ड की तरह कलविंक(चटका) के कन्धे की तरह धूसरवर्णवाले तारे आकाश से नीचे उतरने लगे, जब पर्वतों पर पाये जाने वाले रस(गेरुआ) से परिपूर्ण कुम्भ(घट, कुम्भस्थल) को धारण करनेवाले जंगली हाथी विविध सरोवर नदी एवं तीर्थस्थल की ओर चल पड़े, जब चिता पर दिये जानेवाले भात (ओदन) के ग्रास जैसे पाण्डुर वर्ण के पिण्ड के समान पश्चिमसमुद्र के सिकतामय तट पर चन्द्रमा उतर गया, क्रमश: राजा (प्रभाकरवर्धन) की चिता की आग के धूँये के विस्तार से मानो जब तेज धूसर वर्ण का हो गया, जब नरपति के शोक रूप आग की जलती किरणों के कलंक से मानो चित्त कृष्णवर्णता को प्राप्त हो गया(काला हो गया) मानो ज्ब प्रियवियोग के कारण अन्त:पुर में रहनेवाली सभी पतिव्रताओं के मुखचन्द्र समूह के उद्वेग से शरीर गलने लगा, मानो रोहिपी नक्षत्र के समय से पहले ही अस्त हो जाने के कारण उसके

रणरणक (वियोग जनित उत्कण्ठा, नुपुर की आवाज) से अन्यमनस्क सा होकर चन्द्रमा अस्ताचल पर चला गया, जब राजा प्रभाकरवर्धन मानो सूर्यलोक में विरोजमान हो गये, जब मानो राज्यपरिवर्तन की तरह रात्रि का सारा प्रबन्ध परिवर्तित हो गया, तब जगे हुए राजहंस(राजाओं हंस की तरह शोभायमान राजा, या हंसों का राजा)के मण्डल के द्वारा जगाये गये कमलों के खजाने की तरह देव हर्ष स्नान के लिये चल पड़े। अर्थात् जैसे राजहंस कमलों को जगाता है उसी तरह राजाओं में हंस जैसे राजाओं ने देव हर्ष को जगाया।

ततश्च नूपुररवविराममूकमन्दमन्दिरहंसेषु, शोकाकुलकतिपय-कञ्चुकिमात्रावशेषेषु शुद्धान्तेषु, पतितयूथप इव वनगजयूथे, कक्ष्यान्तरवर्तिनि पितृपरिजने, विषादिन्युपरिरुदन्निषादिनि च स्तम्भनिषण्णे, निष्पन्दमन्दे राजकुञ्जरे, मन्दुरापालकाक्रन्दव्यथिते चाजिरभाजि राजवाजिनि, विश्रान्तजयशब्दकलकले च शून्ये च महास्थानमण्डपे दह्यमानदृष्टिर्निर्जगाम राजकुलात्। अगाच्च सरस्वतीतीरम्। तस्यां स्नात्वा पित्रे ददावुदकम्। अण्स्नातश्चानिष्पीडिमौलिरेव परिधायोद्गमनीयदुकूलवाससी निःश्वासपरो निरातपत्रो निरुत्सारणः समुपनीतेऽपि सप्तौ चरणाभ्यामेव नासाग्रसक्तेन रक्ततामरसताम्रेण चक्षुषा हृदयावशेषस्यापि पितुर्दाहशङ्कया शोकाग्निमिव उद्गिरन्नताम्बूलस्यापि सुचिरप्रक्षालितस्य कल्पतरुकिसलयकोमलस्येव स्वभावपाटलस्याधरपल्लवस्य प्रभया मांसरुधिरकवलानिव हृदयाभिघातादुद्वमन्नुष्णनिःश्वासमोक्षैर्भव नमाजगाम।

व्याख्या - ततश्च तदनन्तरं च नूपुररवविराममूकमन्दमन्दिरहंसेषु- नूपुराणां पादकटकानां रवाणां स्वनानां शब्दानां विरामेन अवरोधेन शब्दाभावेनेति भावः मूकाः शब्दविहीनाः मन्दाः अपटवः तेजोविहीनाः मन्दिरस्य राजभवनस्य हंसाः यदा अभवन् तदा अर्थात् मूकतां मन्दतां च गतेषु हंसेषु, शोकाकुलकतिपयकञ्चुकिमात्रावशेषेषु शोकेन राज्ञः प्रभाकरवर्धनस्य मरणजनितशोकेन आकुलतां गताः कतिचन कञ्चुकिनः वृद्धसेवकाः एव अवशिष्टाः येषु तादृशेषु,

शुद्धान्तेषु शुद्धान्तःपुरेषु, अर्थात् यदान्तःपुरे केवलं कतिचन कञ्चुकिन एवावशिष्टा अभवन् तदा, पतितयूथप पतितो विनष्टो यूथपः समूहरक्षको यस्य स पतितयूथपः इव वनगजयूथे वनस्य काननस्य ये गजाः हस्तिनः तेषां यूथे समूहे, अर्थात् समूहरक्षकेन यदा वनकरिणो वियुक्ता अभवन् तदा, कक्ष्यान्तरवर्तिनि कक्ष्या प्रकोष्ठः अपरा कक्ष्या कक्ष्यान्तरं तस्मिन् स्थिते पितृपरिजने पितुः प्रभाकरवर्धनस्य यः परिजनः पारिवारिकजनः तस्मिन्, अर्थात् यदा पितु परिजनः अन्यकक्ष्यायामुपविष्ट आसीत् तदा, विषादिन्य विषादेन दुःखेन युक्ते, उपरि पृष्ठभागे, रुदन्निषादिनि रोदने प्रवृत्तो निषादो हस्तिपो 'आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः इत्यमरः' यदा तदा च स्तम्भनिषण्णे स्तम्भेषु लौहकीलेषु (हस्तिबन्धनाय स्थापितो स्थाणुः स्तम्भः), निष्पन्दमन्दे स्पन्दनविहीनो निष्पन्दः, तस्य भावो निष्पन्दता तां , मन्दतां च गते राजकुञ्जरे राजकीयो राजसम्बन्धी यः कुञ्जरः करी गजः–कुञ्जरो वारणः करीत्यमरः' मन्दुरापालकाक्रन्दव्यथिते अश्वावासो मन्दुरा तस्या मन्दुरायाः पालकः रक्षकः अश्वपालः तस्य तेषां वा आक्रन्देन रोदनेन व्यथिते दुःखिते च अजिरभाजि जिरं प्राङ्गणं 'आङ्गनं चत्वाराजिरे इत्यमरः' भजति प्राप्नोति यः स अजिरभाक् तस्मिन् राजवाजिनि राज्ञः सम्बन्धिनि वाजिनि अश्वे, अर्थात् अश्वपालकानामाक्रन्दनेन यदा राजकीयाश्वाः अपि दुःखिता अभवन् तदा, विश्रान्तजयशब्दकलकले विश्रान्तः शान्तिं गतः जयघोषस्य कलकलः घनध्वनिः यदा तदा, च शून्ये जनाभावं गते च महास्थानमण्डपे महान् चासौ आस्थानमण्डपः राज्ञां मित्रैस्सह उपवेशनस्य स्थानम् तस्मिन्मण्डपे विशालसभाभवने इत्यर्थः, दह्यमानदृष्टिः भस्मीभूयमाना दृष्टिर्यस्य सः हर्षः निर्जगाम बहिरागतवान् राजकुलात् राजभवनात् राजपरिवाराद्वा 'कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि चेत्यमरः' । अगाच्च गतवान् च सरस्वतीतीरम् सरस्वतीनद्याः तीरम् तटम्। तस्यां सरस्वतीनद्यां स्नात्वा अभिषेकं कृत्वा पित्रे मृताय प्रभाकरवर्धनाय ददावुदकम् दत्तवान् उदकम् जलम्। अपस्नातः मृतपित्रे स्नानं विहितं येन स अपस्नातो हर्षः,'अपस्नातो मृतस्नात इत्यमरः' च आनिष्पीडिमौलिः न निष्पीडितः मौलिः संयतकेशः 'येनासौ, 'चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः इत्यमरः' अर्थात् शिरसः केशानां जलमपि येन न शोषितं स हर्षः, एव क्लिन्न केशपाशः सन् परिधाय धृत्वा उद्गमनीयदुकूलवाससी उद्गमनीये उज्ज्वले 'तत् स्यादुद्गमनीयं यद् धौतयोर्वस्त्रयोर्युगमित्यमरः' दुकूलवस्त्रे सूक्ष्मवस्त्रे 'दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रे स्यादुत्तीरये सितांशुके इत्यमरः' निःश्वासपरः पुनः पुनः दीर्घ निश्वसन्, निरातपत्रो आतपात् ग्रीष्मप्रभावात् त्रायते रक्षति इति आतपत्रं छत्रं

परन्त्वत्र आतपत्रं राजसिंहासनस्याभूषणभूतं राजच्छत्रं छत्रविहीन एव, निरुत्सारण: राज्ञ: अग्र स्थितो भूत्वा सामान्य जनाननुत्सारयति दूरं करोति य: स उत्सारण: तस्याभावो निरुत्सारण:, समुपनीतोऽपि तत्र प्रापिते अपि सप्तौ अश्वे 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहय-सैन्धवसप्तय: इत्यमर:' चरणाभ्यामेव पादाभ्यामेव नासाग्रसक्तेन नासिकाया: अग्रभागे सक्तेन लग्नेन रक्ततामरसताम्रेण रक्तं रक्तवर्णीयो यो तामरस: कमल: कमल वा 'पंकेरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहमित्यमर:' तत्सदृशेन ताम्रवर्णीयेन चक्षुषा हृदयावशेषस्यापि हृदयं चित्तं तदेवावशिष्टं हृदयावशेष: तस्यापि पितुर्दाहशङ्कया पितु: प्रभाकरवर्धनस्य दाहस्य भस्मीकरणस्य शंकया भयेन शोकाग्निमिव शोकजनितवह्निमिव उद्गिरन् उद्गमन् अताम्बूलस्यापि न ताम्बूलमस्ति यत्र स अताम्बूल: तस्य अपि सुचिरप्रक्षालितस्य चिरकालं प्रागेव प्रक्षालनमभवत् यस्य तस्य, कल्पतरुकिसलयकोमलस्येव कल्पतरु: देववृक्ष: तस्य किसलय: नवीनपल्लवं तद्वत् कोमलं यस्तस्य स्वभावपाटलस्य स्वभावेन निसर्गेण प्राकृतिकरूपेण पाटल: रक्तवर्णीयो यस्तस्य अधरपल्लवस्य अधर: दन्तावरण: तदेव पल्लवस्तस्य प्रभया कान्त्या मांसरुधिरकवलान् मांसस्य रुधिरस्य रक्तस्य च कवलं ग्रासं इव हृदयाभिघातादुद्वम न् हृदयस्य चित्तस्य अभिघातात् वमनं कुर्वन् उष्णनि:श्वासमोक्षै: उष्ण: तप्तो यो नि:श्वास: दीर्घश्वास: तस्य मोक्षणं त्याग: दीर्घश्वासग्रहणत्यागै: दीर्घश्वासं गृह्णन् परित्यजन् चेति भाव: भवनम् स्वनिवासगृहम् आजगाम आगतवान्।

हिन्दी – इसके बाद जब नूपुर की आवाज के बन्द हो जाने के कारण भवनों के हंस मूक हो गये और इधर उधर घूमने में भी मन्द हो गया अर्थात् जब भवन के हंसों का घूमना और चिल्लाना बन्द हो गया, जब शोक से व्याकुल केवल कुछ कञ्चुकी लोग ही अन्त: पुर में शेष रह गये, अपने समूह के रक्षक से जब जंगली हाथियों का झुण्ड अलग हो गया, जब अन्य प्रकोष्ठ में राजा के परिजन आराम करने चले गये, भवन के दूसरी ओर जब हाथी पालने वाले सेवक लोग हाथियों को बाँधने वाले खूँटे पर पड़ गया, जब राजकुञ्जर स्पन्द विहीन और मन्द हो गया, अश्वशाला को चलानेवाले सेवकों के रोने की आवाज से आंगन में रहनेवाले घोड़े जब व्यथित हो गये, जब जयघोष का कलकल शान्त हो गया, जब विशालसभामण्डप शून्य सा हो गया, उस तब जलती हुई दृष्टि लिये हर्ष उस राजभवन से बाहर निकल गये। हर्ष सरस्वती नदी के तट पर चले गये। नदी में स्नान कर मृत पिता के लिये जलाञ्जलि अर्पित किया। मृतकों के लिये स्नान करने के बाद अपने केशपाश को

विना निचोड़े ही उजले दुकूल वस्त्र को धारण कर लम्बी श्वास लेते हुए बिना छत्र के ही, आगे आगे चलने वाले लोगों को हटानेवाले सेवक के विना ही, उपस्थापित घोड़े को छोड़कर पैदल ही नाक के अग्र भाग पर लगी हुई लाल कमल के समान लाल दृष्टि से हृदय में एकमात्र अवस्थित अपने पिता के दाह की आशंका से शोक रूपी आग का वमन करते हुए ताम्बूल राग से विहीन चिरकाल पूर्व में ही प्रक्षालित कल्पतरु के किसलय के समान कोमल स्वाभाविक रूप से लाल अधरपल्ल्व की कान्ति से मांस और रुधिर के ग्रास की तरह हृदयाभिघात का, लम्बी एवं तप्त निश्वासों के द्वारा उद्वमन करते हुए अपने भवन में आ गये।

राजवल्लभास्तु भृत्याः सुहृदः सचिवाश्च तस्मिन्नेवाहनि निर्गत्य प्रियं पुत्रदारमुत्सृज्योद्वाष्पैर्बन्धुभिर्वार्यमाणा अपि बहुनृपगुण-गणहतहृदयाः केचिदात्मानं भृगुषु बबन्धुः केचित्तत्रैव तीर्थेषु तस्थुः, केचिदनशनैरास्तीर्णतृणकुशाः व्यथमानमानसाः शुचमसमामशमयन्, केचिच्छलभा इव वैश्वानरं शोकावेगविवशा विविशुः, केचिद्दारुणदुःखदहनदह्यमानहृदया गृहीतवाचस्तुषारशिखरिणं शरणमुपाययुः, केचिद्विन्ध्योपत्यकासु वनकरिकुलकरशीकरा-सारसिच्यमानतनवः पल्लवशयनशायिनः सन्तापमशमयन्, केचित् संनिहितानपि विषयानुत्सृज्य सेवाविमुखाः परिच्छिन्नैः पिण्डकैरटवीभुवः शून्या जगृहुः, केचित्पवनाशना धर्मधना धमद्धमनयो मुनयो बभूवुः, केचिद्गृहीतकाषायाः कापिलं मतमधिजगिरे गिरिषु, केचिदाचोटितचूडामणिषु शिरःसु शरणीकृतधूर्जटयो जटा जघटिरे। अपरे परिपाटलप्रलम्बचीवराम्बरसंवीताः स्वाम्यनुरागमुज्ज्वलं चक्रुः। अन्ये तपोवनहरिणजिह्वाञ्चलोल्लिह्यमाणमूर्तयो जरां ययुः। अपरे पुनः पाणिपल्ल्वप्रमृष्टैराताम्ररागैर्नयनपुटैः कमण्डलुभिश्च वारि वहन्तौ गृहीतव्रता मुण्डा विचेरुः।

व्याख्या – *राजवल्लभास्तु राज्ञः नरपतेः वल्लभाः प्रियाः 'दयितं वल्लभं प्रियमित्यमरः' भृत्याः सेवकाः, सुहृदः मित्राणि, सचिवाश्च मन्त्रिणश्च तस्मिन्नेव अहनि दिने यस्मिन्दिने राज्ञो औध्र्वदैहिकक्रियाऽभवत् तस्मिन्नेव दिने इत्यभिप्रायः,*

निर्गत्य बहिर्गत्वा स्वस्थानात्, प्रियं आत्मीयं पुत्रदारम् पुत्रं सुतं दारां पत्नीं च उत्सृज्य त्यक्त्वा वाष्पैः नयनजलैः अश्रुभिः बन्धुभिः स्वबान्धवैः वार्यमाणा निवार्यमाणाः बहिर्गमनात् निवारिता अपि बहुनृपगुणगणहृतहृदया: बहवो ये नृपस्य राज्ञः गुणानां गणः समुदायः तेन गणेन हृतं चौरितं हृदयं येषां ते तादृशाः वा जनाः, केचिदात्मानं तत्र केचन जनाः स्वात्मानं, भृगुषु प्रपातेषु निझरिषु 'प्रपातस्त्वतटो भृगुरित्यमरः' बबन्धुः संयोजयामासुः, अर्थात् केचन जनाः प्रपातस्य तटे स्वनिवासं चक्रुरिति, केचित्तत्रैव स्वनिवासस्थले एव बहिर्गत्वा तीर्थेषु पुण्यक्षेत्रेषु तस्थुः निवासं चक्रुः, केचिदनशनैरास्तीर्णतृणकुशाः केचन जनाः अनशनैः अशनं भोजनं विनैव उपवासेनैवेति भावः आस्तीर्णा विस्तारिताः तृणानि कुशाश्च यैः तादृशाः जनाः, व्यथमानमानसाः शोकयुक्तमानसाः, शुचमसमामशमयन्, असमां अतुलनीयां शुचं शोकं अशमयन् शान्तं चक्रुः, अर्थात् शोकान्मुक्त्युपायं चक्रुरिति, केचिच्छलभा केचन जनाः शलभाः पतङ्गा 'समौ पतङ्गशलभावित्यमरः' इव वैश्वानरं वह्निं 'अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः इत्यमरः' शोकावेगविवशा शोकस्य दुःखस्य आवेगेन प्रवाहेन विवशाः अवशाः पूर्णरूपेण विकला इत्यर्थः विविशुः प्रवेशं चक्रुः, केचिद् केचन जनाः दारुणदुःखदहनदह्यमानहृदया दारुणं अतिकठिनं यद्दुःखं तदेव दहनं वह्निः तेन वह्निना दह्यमानं प्रज्वल्यमानं हृदयं येषां तादृशाः गृहीतवाचः गृहीताः संयमिताः वाचः वचांसि यैः तादृशाः, तुषारशिखरिणं तुषारस्य हिमस्य 'तुषास्तुहिनं हिममित्यमरः' शिखरं अस्तीति शिखरिन् पर्वतः 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः इत्यमरः' तुषारस्य पर्वतः हिमालयः तं शरणमुपाययुः आश्रयं जग्मुः, अर्थात् हिमालये शरणं चक्रुरिति, केचित् केचन जनाः विन्ध्योपत्यकासु विन्ध्यनामधेयपर्वतस्य उपत्यकासु पर्वतस्य समीपस्थभूमिषु 'उपत्यकाऽद्रेरासन्नभूमिरूर्ध्वमधित्यकेत्यमरः' वनकरिकुलकरशीकरासारसिच्यमानतनवः वनस्य काननस्य ये करिणः गजाः तेषां यत्कुलं समूहः वंशो वा तेषां करेभ्यः शुण्डादण्डेभ्यः निर्गतैः शीकरैः जलकणैः सिच्यमानाः क्लेद्यमानाः तनवः शरीराणि येषां तादृशाः जनाः पल्लवशयनशायिनः पल्लवनिर्मिते शयने विस्तरे शयनं कुर्वाणाः, सन्तापमशमयन् सन्तापं स्वदुःखं अशमयन् शान्तमकुर्वन्, केचित् संनिहितानपि उपस्थितानपि विषयान् भोगोचितवस्तूनि उत्सृज्य त्यक्त्वा सेवाविमुखाः सेवाभावात् पराङ्मुखाः, परिच्छिन्नैः परिमितैः पिण्डकैः शरीरैः अटवीभुवः अटव्याः काननस्य भुवः भूमयः शून्या जनरहिताः जगृहुः ग्रहणं चक्रुः, अर्थात् विपिने निवासं चक्रुरिति, केचित् केचन जनाः पवनाशना पवनस्य वायोरेव अशनं भोजनं येषां ते पवनाशनाः,

धर्मधना धर्म एव धनं येषां ते धर्मधनाः मुनयः धमद्धमनयो धमन्त्यः तापं गच्छन्त्यः धमनयो नाड्यो येषां ते तादृशा वा, मुनयो बभूवुः, केचिद् केचन जनाः गृहीतकाषायाः कषायवस्त्रं गेरुकवस्त्रं धृतं यैः तादृशाः, कापिलं कपिलसम्बन्धिनं सांख्यशास्त्रसम्मतं मतम् सिद्धान्तम् अधिजगिरे अधीतवन्तः, गिरिषु शैलेषु 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः इत्यमरः' केचित् केचन जनाः आचेटितचूडामणिषु आचेटिताः अपसारितासु चूडामणिषु मूर्धामणिषु किरीटेषु अर्थात् किरीटविहीनशिरस्सु शिरःसु शरणीकृतधूर्जटयो आश्रयीकृतः धूर्जटिः भगवान् शंकरो यैः तादृशैः जनंः जटा केशपाशान् जघटिरे बबन्धुरिति। अपरे एतेभ्यः अतिरिक्ता ये आसन् ते परिपाटलप्रलम्बचीवराम्बरसंवीताः परिपाटलैः पूर्णतः रक्तवर्णीयैः प्रलम्बैः पूर्णलम्बायमानैः विस्तृतैरिति भावःचीवरः वसनखण्डमेव वसनं वस्त्रं तादृशैः वस्त्रैः संवीताः आच्छादितगात्राः, स्वाम्यनुरागमुज्ज्वलं स्वामिनः प्रभाकरवर्धनस्य अनुरागं स्नेहं स्वामिभक्तिं उज्ज्वलं धवलं भास्वरं चक्रुः कृतवन्तः। अन्ये तेभ्योऽप्यतिरिक्ताः जनाः, तपोवनहरिणजिह्वाञ्चलोल्लिह्यमाणमूर्तयो तपसो वनं तपोवनं तत्रत्याः ये हरिणाः मृगाः तेषां हरिणानां जिह्वाञ्चलैः रसनाप्रान्तैः लिह्यमानाः स्पृश्यमानाः स्वाद्यमानाः मूर्तयो शरीराणि येषां तादृशाः एव जरां वृद्धावस्थां ययुः गतवन्तः प्राप्तवन्तः इति। अपरे पूर्वोक्तातिरिक्ताः जनाः पुनः पाणिपल्लवप्रमृष्टैः पाणिः करः एव पल्लवः तेन प्रमृष्टः प्रौञ्छितैः, आताम्ररागैः पूर्णरूपेण रक्तवर्णीयैः नयनपुटैः नयनाञ्चलैः नेत्रगोलकैर्वा कमण्डलुभिश्च वारि जलं 'आपोऽस्त्रिभूम्निर्वावारि सलिलं कमलं जलमित्यमरः' वहन्तः धारयन्तः गृहीतव्रता गृहीतं व्रतं यैः व्रतधारिण इति मुण्डा उप्तशिरसः मुण्डिता'मुण्डस्तु मुण्डिते इत्यमरः' विचेरुः विहरणं कृतवन्तः।

हिन्दी - राजा के प्रिय भृत्य, मित्र, एवं सचिवों में से राजा के गुणों से मुग्ध हृदय वाले होकर कुछ लोगों ने उसी दिन अपने प्रिय पुत्र पत्नी आदि को छोड़कर अश्रुपूरित नयनों से बन्धुओं द्वारा रोके जाते हुए भी झरणों का आश्रय ले लिया, अर्थात् झरणों वाले स्थानों पर अपना निवास ग्रहण कर लिया, कुछ लोग वहीं पर तीर्थस्थानों में चले गये, कुछ लोग उपवास निरत होकर कुश का बिछावन बिछाकर दुःखित मन से अपने शोक को मिटाने का प्रयास करने लगे, कुछ लोग शलभ के समान अग्नि में प्रविष्ट हो गये, कुछ लोगों ने जिनका हृदय दारुण दुःख से जल रहा था, मौन होकर हिमालय पर जाकर आश्रय ग्रहण कर लिया, कुछ लोगों ने विन्ध्याचल की उपत्यका में जाकर जंगली हाथियों के सूँढ से निकलनेवाले जलकणों से गीले शरीर

वाले होकर पल्लव के शयन पर सोकर अपने सन्ताप को शान्त किया, कुछ लोग उपस्थित विषयों का परित्याग कर सेवाभाव से विमुख होकर पिण्डमात्र भोजन ग्रहण करते हुए निर्जन वन भूमि में जाकर निवास करने लगे, कुछ लोग हवा पीकर जीते हुए धर्म मात्र को धन मानकर अपनी धमनियों को तपाते हुए मुनि की तरह रहने लगे, कुछ लोगों ने पहाड़ों में जाकर कषाय वस्त्र ग्रहण कर लिया(संन्यासी हो गये) कुछ लोग महर्षिकपिल के मत (सांख्य) का अध्ययन करने लगे, कुछ लोगों ने अपने शिर से चूडामणि उतारकर भगवान् शंकर को अपना आश्रय बनाकर जटा धारण कर लिया, इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने पूर्ण रूप से लालवर्णवाले लम्बे वसनखण्डों से अपने शरीर को आच्छादित कर अपनी स्वामिभक्ति को उज्ज्वल किया। इसके अतिरिक्त कुछ लोग तपोवन में जाकर हरिणों की जिह्वा से अपने शरीर को चटवाते हुए बार्धक्य को प्राप्त करने लगे, अर्थात् बूढ़े हो गये। इसके अतिरिक्त कुछ लोग अपने पाणिपल्लवों से पोंछे गये ताम्रवर्णीय लाल आँखों से (रोने के कारण) और कमण्डलुओं से (मुनिवृति के कारण) जल को ढोते हुए व्रत करते हुए मुण्डित होकर विचरण करने लगे।

देवमपि हर्षं तदेवस्थं पितृशोकविह्वलीकृतम्, श्रियं शाप इति, महीं महापातकमिति, राज्यं रोग इति, भोगान्भुजङ्गा इति, निलयं निरय इति, बन्धुं बन्धनमिति, जीवितमयश इति, देहं द्रोह इति, कल्यतां कलङ्क इति, आयुरपुण्यफलमिति, आहारं विषमिति, विषममृतमिति, चन्दनं दहन ति,कामं क्रकच इति, हृदयस्फोटनमभ्युदय इति च मन्यमानम्, सर्वासु क्रियासु विमुखम्, पितृपितामहपरिग्रहागता-श्चिरन्तनाः कुलपुत्राः, वंशक्रमाहितगौरवाश्च ग्राह्यगिरो गुरवः, श्रुतिस्मृतीतिहासविशारदा जरद्द्विजातयः श्रुताभिजनशीलशालिनो मूर्धाभिषिक्ताश्चामात्या राजानो, यथावदधिगतात्मतत्त्वाश्च संस्तुता मस्करिणः, समदुःखसुखाश्च मुनयः, संसारासारत्वकथनकुशला ब्रह्मवादिनः, शोकापनयननिपुणाश्च पौराणिकाः पर्यवारयन्।

व्याख्या – देवमपि स्वामिनं हर्ष हर्षवर्धनाख्यं तदेवस्थं तस्यामेव शोकावस्थायां स्थितं, पितृशोकविह्वलीकृतम्– पितुःमरणजनितशोकः पितृशोकः तेन शोकेन दुःखेन

अविह्वलमपि विह्वलं विकलं कृतं विह्वलीकृतम्, श्रियं राज्यलक्ष्मीं ऐश्वर्यं शाप दुरैषणेति 'शापाक्रोशौ दुरैषणेत्यमरः' इति, महीं पृथ्वीं धरणीं (पृथिव्या भोग इति भावः) महापातकमिति महान् चेदं पातकं महापतकं महापापमिति, राज्यं राज्यभारः राज्यपालनं रोग आधिः 'रोगव्याधिगदामया इत्यमरः' इति, भोगान् सांसारिकसुखभोगान् भोगविलासान्, भुजङ्गा सर्पाः'सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गम इत्यमरः' इति, निलयं गृहाः 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः इत्यमरः, निरय नरक इति 'स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियामित्यमरः'इति, बन्धुं स्वजनं बन्धनम् सांसारिकबन्धनम् इति, जीवितम् जीवनं अयश अपकीर्तिः इति, देहं शरीरं कायः 'कायो देहः क्लीवपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः इत्यमरः' द्रोह कलहः विरोधः इति, कल्यतां निरामयतां निरोगतां 'कल्यौ सज्जनिरामयावित्यमरः' कलङ्क अपवाद लाञ्छनं निन्दनार्थककथनं 'कलङ्कोऽङ्कापवादयोरित्यमरः' इति, आयुः जीविताववधिः अपुण्यफलमिति दुष्कृतस्य परिणामः इति, आहारं भोजनं विषम् गरलम् इति, विषम् गरलम् अमृतम् पीयूषम् 'पीयूषममृतं सुधेत्यमरः' इति, चन्दनं मलयपर्वतसमुत्पन्नः 'गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियामित्यमरः' दहनम् वह्निं अग्निं 'हिरण्यरेताः हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः इत्यमरः' इति, कामं इच्छां 'इच्छामनोभवौ कामावित्यमरः' क्रकच करपत्रम् -काष्ठभेदनाय लौहयन्त्रविशेष 'क्रकचोऽस्त्री करपत्रमित्यमरः' इति, हृदयस्फोटनम् हृदयस्य चित्तस्य स्फोटनम् भञ्जनम् अभ्युदय उत्कर्षः इति च मन्यमानम् स्वीकुर्वानग, सर्वासु क्रियासु स्वकीयसर्वविधकार्येषु विमुखम् पराङ्मुखम्, पितृपितामहपरिग्रहागताः पितुः गितामहस्य पितुरपि पितुः परिग्रहेण स्वीकारेण आगताः आश्रयदानेन सम्प्राप्ता वर्तमानाः इति भावः चिरन्तनाः चिरकालात् सहैव स्थिताः, कुलपुत्राः कुलस्य वंशस्य पुत्राः तनयाः , वंशक्रमाहितगौरवाश्च वंशस्य कुलस्य क्रमेण आहितः अर्पितः गौरवः गुरुतरभारः सम्माननम् वा यस्मिन् तादृशाः , ग्राह्यगिरो ग्राह्याः स्वीकरणीयाः गिरः वाचः येषां, येषामाज्ञा सततं शिरोधार्यास्ते, गुरवः , श्रुतिस्मृतीतिहासविशारदा श्रुतयो वेदाः स्मृतयो याज्ञवल्क्यस्मृत्यादयः इतिहासः पौराणिककथादयः एतत्सर्वविधविषयेषु विशारदाः पूर्णज्ञातारः विद्वांसः 'विद्वत्सु प्रगल्भौ विशारदावित्यमरः' जरद्द्विजातयः वृद्धब्राह्मणाः श्रुताभिजनशीलशालिनो श्रुतं शास्त्रज्ञानम् अभिजनं सत्कुलं शीलं चारित्र्यं त्रिष्वपि ये शालिनः सुशोभितास्ते, मूर्धाभिषिक्ताश्चामात्या मूर्धसु शिरःसु कृतः अभिषेकः अभिसिञ्चनं येषां तादृशाः अमात्याः सचिवाः, 'मन्त्रीधीसचिवोऽमात्यो इत्यमरः' राजानो नरपतयः, यथावत् यथाविधिः समुचितरूपेण

अधिगतात्मतत्त्वाश्च अधिगतं पठितं आत्मस्थीकृतं आत्मतत्त्वं यैः ते, संस्तुता परिचिताः मस्करिणः भिक्षवः संन्यासिनः'भिक्षुः परिव्राट् कर्म्मन्दी पाराशर्य्यपि मस्करीत्यमरः' समदुःखसुखाश्च समः तुल्यः दुःखेषु सुखेषु चापि ये ते मुनयः तापसाः संसारासारत्वकथनकुशला संसारस्य असारत्वस्य सारविहीनतायाः कथने आलपने ये चतुराः पण्डितास्तादृशाः ब्रह्मवादिनः ब्रह्म वदन्ति व्याख्यान्ति ये ते ब्रह्मवादिनः वेदान्तिन इति शोकापनयननिपुणाश्च शोकस्य दुःखस्य अपनयने दूरीकरणे अपसारणे ये निपुणाः प्रवीणाः दक्षाः 'प्रवीणे निपुणाभिज्ञवज्ञनिष्णातशिक्षिताः इत्यमरः' ते पौराणिकाः पुराणानां ज्ञातारः पर्यवारयन् परितः अतिष्ठन् पर्यवेष्टयन्निति भावः।

हिन्दी - उसी अवस्था में पड़े हुए देव हर्ष भी जब पिता के मरण जनित शोक से विह्वल हो रहे थे और यह सोच रहे थे अर्थात् यह मानने लगे थे कि यह राज्यलक्ष्मी शाप है, यह धरती महापाप है, राज्य रोग है, सांसारिकभोग वस्तुतः साँप है, घर नरक है, बन्धु सांसारिक बन्धन है, जीवन अयश है, देह द्रोह है, निरोग रहना कलङ्क है, आयु दुष्कर्म का फल है, भोजन विष है, विष अमृत है, चन्दन आग है, इच्छा लकड़ी काटनेवाला आरा (मशीन) है हृदय का स्फोटन ही अभ्युदय है, एवं जब अपने सभी क्रियाओं से विमुख हो चुके थे तो पिता पितामह आदि के द्वारा बसाये गये पुराने लोगों ने , कुलपुत्रों ने, वंशक्रम से जिसका सम्मान हो रहा है, एवं जिसका वचन सभी के लिये ग्राह्य है, ऐसे गुरुओं ने, श्रुति स्मृति ईतिहास आदि के विशारद बृद्ध ब्राह्मणों ने, शास्त्र कुल एवं चरित्र से परिपूर्ण मूर्धाभिषिक्त मन्त्री एवं राजाओं ने, आत्मतत्त्व को यथावत् (शास्त्रानुकूल) अधिगत करनेवाले भिक्षुओं (संन्यासियों) ने, सुख और दुःख में सर्वदा बराबर रहनेवाले मुनियों ने, संसार की असारता को सिद्ध करने में कुशल वेदान्तियों ने, और शोक को दूर करने में कुशल पौराणिकों ने हर्ष को परिवृत कर लिया(घेर लिया)।

अस्वतन्त्रीकृतश्च तैर्मनसामपि नालभत शोकानुप्रवणमाचरितुम्। प्रचुरमित्रानुनीयमानश्च सनारिभिः कथं कथमन्यहारादिकासु क्रियास्वाभिमुख्यमभजत। भ्रातृगतहृदयश्चाचिन्तयत् - अपि नाम तातस्य मरणं महाप्रलयसदृशमिदमुपश्रुत्य आर्यो वाष्पजलस्नातो न गृह्णीयाद्वल्कले। नाश्रयेद्वा राजर्षिराश्रमपदम्। न विशेद्वा पुरुषसिंहो गिरिगुहाम्। अश्रुसलिलनिर्भरभरितनयननलिनयुगलो वा पश्येदनाथां

पृथिवीम्। प्रथमव्यसनविषमविह्वलः स्मरेदात्मानं वा पुरुषोत्तमः। अनित्यतया जनितवैराग्यो वा न निराकुर्यादुपसर्पन्तीं राज्यलक्ष्मीम्। दारुणदुःखदहनप्रज्वलितदेहो वा प्रतिपद्येताभिषेकम्। इहागतो वा राजभिरभ्धीयमानो न पराचीनतामाचरेदिति। अतिपितृपक्षपाती खल्वार्यः। सर्वदा तातश्लाघया मामभिधत्ते - तात हर्ष! कस्यचिदभूद्भविष्यति वा पुनः काञ्चनतालतरुप्रांशु कायप्रमाणमिदम्? ईदृक्च दिवसकरप्रीत्या दिवसमुन्मुखविकसितं मुखमहाकमलम्। एतौ च वज्रस्तम्भभास्वरौ भुजकाण्डौ। एते च हसितमदालसहलधरविभ्रमा विलासाः। कोऽन्यो मानी विक्रान्तो वदान्यो वा? इति। एतानि चान्यानि च चिन्तयन्दर्शनोत्सुकहृदयो भ्रातुरागमनमुदीक्षमाणः कथंकथमप्यतिष्ठदिति।

इति महाकविबाणभट्टविरचिते हर्षचरिते
महाराजमरणवर्णनं नाम पञ्चम उच्छ्वासः

व्याख्या - *अस्वतन्त्रीकृतश्च न स्वतन्त्रः अस्वतन्त्रः अस्वतन्त्रतया युक्तं कृतं अस्वतन्त्रीकृतमिति तैः सचिवैः नरपतिभिश्च मनसामपि मनसां चित्तानामपि नालभत न प्राप्तवान् शोकानुप्रवणमाचरितुम् शोकस्य दुःखस्य अनुप्रवणं प्रवाहं आचरितुम् आस्वादयितुम्, अर्थात् नरपतिभिः सचिवादिभिः तथा परिवृतो हर्षः येन तस्य मनसि दुःखानुभूतिर्न भवेत्, परन्तु तैः हर्षस्य शोकस्य प्रवाहं मनसापि विचारयितुं ज्ञातुं न शेकुः। अर्थात् दुःखान्निवारणाय सर्वे यत्नं चक्रुरिति। प्रचुरमित्रानुनीयमानश्च प्रचुरैः पर्याप्तैः मित्रैः सहचरैः सनारिभिः सभाभिः 'नारी राजसभाऽपि चेत्यमरः' राजसभास्थितैर्जनैरिति भावः अनुनीयमानाः प्रार्थ्यमानाः निवेद्यमानाः, कथं कथमपि येन केन प्रकारेणापि आहारादिकासु भोजनादिषु क्रियासु कर्मणि आभिमुख्यम् अभिमुखतां स्वारस्यं अभजत प्राप्तवान्, अर्थात् हर्षैः पूर्वोक्तानां समेषां कथनेन भोजनादिकमकरोत्। भ्रातृगतहृदयः भ्रातुः राजवर्धनस्य कृते गतं हृदयं यस्य तादृशो हर्षः च अचिन्तयत् विचारितवान्, अर्थात् राज्यवर्धनस्य विषये चिन्तनं चकार हर्षो यत् - अपि नाम इति सम्भावनायामव्ययद्वयम्, तातस्य पितुः मरणं इहलोकपरित्यागं महाप्रलयसदृशम् महान् चासौ प्रलयः विनाशः महाप्रलयः तत्सदृशं पितुमरणजनितवार्ता इदम् उपश्रुत्य निशम्य*

आर्यो मम ज्येष्ठभ्राता (ज्येष्ठस्य सम्बोधनं भवत्यार्यपदेनेति सिद्धान्तः कवीनाम्) वाष्पजलस्नातो वाष्पजलेन नयनाश्रुवारिणा स्नातः अभिषिक्तः स्नानं कृत्वा, बहूनि अश्रूनि विमुच्येति भावः, न गृह्णीयात् ग्रहणं कुर्यात् वल्कले वल्कलयुगलं वृक्षत्वक् निर्मितवसनयुगलम्। अर्थात् पितृदियोगात् जातवैराग्यः सः संन्यासधारणं मा कुर्यात्। नाश्रयेद् न ग्रहणं कुर्यात् वा राजर्षिः राजसु ऋषितुल्यः राजर्षिः राज्यवर्धनः आश्रमपदम् आश्रमस्य स्थानम्। अर्थात् कदाचित् शोकात् जातवैराग्यः सः मुनीनामाश्रमे स्वनिवासं मा कुर्यात्। न विशेद्वा अथवा प्रवेशं मा कुर्यात् पुरुषसिंहो पुरुषेषु सिंह इव श्रेष्ठपुरुष इति गिरिगुहाम् गिरेः पर्वतस्य 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः इत्यमरः' गुहां कन्दरामिति 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री देवखातविले गुहेत्यमरः', अश्रुसलिलनिर्भरभरितनयननलिनयुगलो अश्रुणः प्रवाहरूपेण मुक्तं यच्छलिलं जलं 'आपोऽस्त्रिभूम्निवार्वारि सलिलं कमलं जलमित्यमरः' तेन जलेन निर्भरं पूर्णरूपेण भरितं परपूरितं नयनमेव नलिनं कमलं 'वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलमित्यमरः' तस्य कमलस्य युगलं द्वन्द्वं यस्य तादृशो मम भ्राता राजवर्धनः, वा पश्येत् दृष्टिपथमानयेत् वा अनाथां न नाथो स्वामी रक्षको यस्याः तां तादृशीं वा पृथिवीम् धरणीम्। प्रथमव्यसनविषमविह्वलः प्रथमं यद्व्यसनं दुःखं तेन विषमःअसामान्यः विह्वलः विकलः विस्मरेदात्मानं विस्मरणं कुर्यात् आत्मनः स्वस्य, अर्थात् मम भ्राता प्रथमदुःखस्यैव दारुणत्वात् क्वचित् स्वात्मनादपि विस्मृतो मा भवेत्, वा पुरुषोत्तमः -पुरुषेषु उत्तमः श्रेष्ठः। अनित्यतया न नित्यं सुस्थिरं इति अनित्यं जगदिदं तस्यानित्यस्य भावः अनित्यता तया तद्विचारेण वा जनितवैराग्यो जनितं उत्पन्नं वैराग्यं विरागस्य भावो यस्य तादृशो वा न निराकुर्यात् अपसारयेत् उपसर्पन्तीं स्वहस्ते आगच्छन्तीं राज्यलक्ष्मीम्। राज्यस्य लक्ष्मीम् ऐश्वर्यम् राज्यभारमिति भावः। संसारस्यानित्यताज्ञानस्य पश्चात् परित्याग एव भवति। अतः हर्षस्य शंका वर्तते यत् पितुर्मरणं निशम्य संसारस्यासारतां ज्ञात्वा ज्येष्ठपुत्रत्वेन हस्ते पतन्तीं राज्यलक्ष्मीं मा अपसारयेत् सः, अर्थात् राज्यभाराद्विमुखो मा भवेत्। दारुणदुःखदहनप्रज्वलितदेहो दारुणम् अतिकष्टकरं कठोरं यत् दुःखं तदेव दहने वह्निः तेन दुःखेन प्रज्वलितः दग्धः देहो यस्य तादृशो मम भ्राता वा न प्रतिपद्येत स्वीकुर्यात् अभिषेकं राज्याभिषेकम्। अर्थात् दुःखदग्धदेहः सः राज्याभिषेकात् पराङ्मुखो मा भवेत्। इहागतो इह राजधान्यां आगतः वा राजभिः समुपस्थितैः नरपतिभिः सचिवादिभिरिति भावः, अभिधीयमानो निवेद्यमानः न पराचीनताम् पराङ्मुखतां 'पराङ्मुखः पराचीन इत्यमरः' आचरेदिति स्वीकुर्यादिति। अतिपितृपक्षपाती

आधिक्येन पितुः पक्षग्राहको , पितृवत्सलः इति, खलु आर्यः मम ज्येष्ठो भ्राता। सर्वदा सततं तातश्लाघया तातस्य पितुः श्लाघया आदरेण 'अस्त्री चाटु चटु श्लाघेत्यमरः' माम् हर्षवधनं अभिधत्ते कथयति - तात हर्ष! कस्यचिदभूद् भविष्यति वा पुनः काञ्चनतालतरुप्रांशुकायप्रमाणमिदम्? स्वर्णस्य तालवृक्षः (लम्बायमानो वृक्षः) तद्वत् प्रांशु दीर्घः क.यस्य शरीरस्य 'कायो देहः इत्यमरः' प्रमाणम् परिमाणमिदम्। अर्थात् त्वादृशं कायप्रमाणं कस्यचिदेव भवति न सर्वेषाम्। ईदृक्च यथा तव वर्तते तथा च, दिवसकरप्रीत्या दिवसं दिनं करोतीति दिवसकरः सूर्यः तस्य प्रीत्या- भक्त्या, कृपया, प्रेम्णा वा दिवससुन्मुखविकसितं दिवसं दिनं इव उन्मुखम् उर्ध्वमुखं विकसितं प्रफुल्लं मुखमहाकामलम् मुखं आननम् एव महाकमलम् विशालकमलम्। अर्थात् सूर्यप्रीत्या यथा तव मुखकमलमस्ति तथा समेषां न भवति। एतौ च वज्रस्तम्भभास्वरौ वज्रस्य कुलिशस्य कठोरतरस्य यः स्तम्भः तद्वत् भास्वरौ दीप्तिमन्तौ प्रभान्तिौ, भुजकाण्डौ भुजयोः बाहोः काण्डौ दण्डौ 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवारिषु इत्यमरः' एते च हसितमदालसहलधरविभ्रमा हसितेन हासेन मदालसस्य मदेन विह्वलस्य मददर्पितस्य हलधरस्य बलरामस्य हलं धरतीति हलधरो बलरामः तस्य विभ्रमाः विचेष्टिताः विलासाः । कोऽन्यो कः द्वितीयस्त्वामपहाय, मानी स्वाभिमानपूर्णः, विक्रान्तो शूरः विशिष्टपराक्रमयुक्तः, वदान्यो दानशौण्डो 'स्युर्वदान्यस्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे इत्यमरः' वा? इति। एतानि पूर्वोक्तानि च अन्यानि चिन्तितातिरिक्तानि च चिन्तयन् विचारयन् दर्शनोत्सुकहृदयः दर्शनार्थं अवलोकनार्थं भ्रातरम् उत्सुकं उत्कण्ठितं हृदयं यस्य तादृशो हर्षः भ्रातुरागमनम् उदीक्षमाणः प्रतीक्षमाणः कथंकथमपि येन केनापि प्रकारेण अतिष्ठदिति अवर्तत इति।

हिन्दी - उनलोगों के द्वारा मनाये जाने पर भी उनके शोक को मन से भी अनुभव करने का अवसर प्राप्त नहीं किया। प्रचुर मात्रा में मित्रों द्वारा अनुनय विनय करने के बाद हर्ष किसी प्रकार भोजन आदि दैनिक क्रिया में प्रवृत्त हुए। अपने भाई के विषय में विचार करते हुए हर्ष ने हृदय से सोचा कि - कहीं ऐसा न हो कि महाप्रलय के समान पिता जी के मरण का समाचार सुनकर अश्रुजल से स्नात शरीर वाले मेरे भाई वल्कल धारण कर लें। कहीं वो राजर्षि आश्रम का आश्रय ग्रहण न कर लें। कहीं वो पुरुषसिंह पर्वत की गुफा में प्रवेश न कर जाये। आँसू से भरे कमल के समान आँखों वाले कहीं वो इस पृथ्वी को अनाथ (आश्रय विहीन) ही न समझ ले। कहीं ऐसा न हो कि पहली बार इस विषम दुःख से विह्वल होकर वो

अपने को भी न भूल जायें। संसार की अनित्यता को जानकर उत्पन्न वैराग्य से कहीं अपेन हाथ में आती हुई पृथ्वी का अपसारण न कर दे। इस कठोर दु:ख रूप आग से दग्ध वदन वाले मेरे भाई कहीं राज्यभिषेक से विमुख न हो जायें। यहाँ आने के बाद राजाओं सचिवों आदि के द्वारा मनाये जाने पर भी कहीं विपरीत आचरण न करें। मेरे भाई पिता के अति प्यारे हैं। सर्वदा पिता का आदर करते हुए वो मुझे कहा करते थे कि – वत्स! हर्ष! किसी किसी को ही स्वर्णतालवृक्ष के समान विशाल प्रमाण वाला शरीर हुआ होगा या होगा? ऐसा सूर्य की भक्ति से खिला मुखकमल किसी कसी का ही होगा। वज्र स्तम्भ के समान दीप्त ये विशाल भुजायें किसी किसी की ही होगी। ये हँसते हुए मदपूर्ण हलधर(बलराम) के विभ्रमपूर्ण विलास के समान विलास किसी किसी का ही हुआ होगा। तुमको छोड़कर भला कौन दूसरा इतना बलशाली और इतना स्वाभिमानी होगा। इस प्रकार ये सारी बातें और अन्य बातों की चिन्ता करते हुए अपने भाई का दर्शन करने को उत्सुक हृदयवाले भाई के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए किसी प्रकार स्थिर रहे।

महाकविबाणभट्ट विरचित हर्षचरितम् के

पञ्चम उच्छ्वास की 'निर्मला'

संस्कृत एवं हिन्दी व्याख्या समाप्त।

❑❑❑

अन्य छात्रोपयोगी पुस्तकें

कर्णभारम्	डॉ. राकेश कुमार जैन
मध्यमव्यायोगरूपकम्	डॉ. पुष्करदत्त शर्मा
संस्कृत नाट्य वल्लरी	कलानाथ शास्त्री
प्रतिमानाटकम्	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी
स्वप्नवासवदत्तम्	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी
स्वप्नवासवदत्तम्	डॉ. सपना राठौड़
नाट्यशास्त्र (प्रथम द्वितीय अध्याय)	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी
जीवनस्य पाथेयम्	देवर्षि कलानाथ शास्त्री
मनोहर कथावली	डॉ. निरञ्जन मिश्र
कथानक वल्ली	कलानाथ शास्त्री
कथानक वल्ली (अनुवाद …	अनु. शम्भुसिंह बारेठ
संस्कृतकथाकल्लोलिनी	डॉ. रमाकान्त पाण्डेय
पुरुषसूक्त: एक विवेचन	डॉ. समी शर्मा
अथर्ववेदीय मातृभूमि सूक्तम् (अथर्ववेद संहिता-द्वादश काण्ड)	डॉ. लम्बोदर मिश्र
अथर्वर्णरूद्र	डॉ. नीरज शर्मा
अथर्ववेदीय माण्डूक्योपनिषद्	आचार्य भेषराज शर्मा
ईशावास्योपनिषद्	हरस्वरूप वासिष्ठ
कठोपनिषद्	डॉ. देवेन्द्रनाथ पाण्डेय
कठोपनिषद् (प्रथम अध्याय 1-2 वल्लरी)	डॉ. देवेन्द्रनाथ पाण्डेय
वैदिक सूक्त मुक्तावली	डॉ. सुधीर कुमार गुप्त
वैदिक सुक्त संग्रह	डॉ. भेषराज शर्मा
पारस्कर गृह सूत्रम	रामकृष्ण शर्मा
उपनिषद् परिशीलन	डॉ. शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी
साहित्यशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थकार, चिन्तन एवं सिद्धान्त	रमेश चन्द्र घुसिंगा
काव्यशास्त्र के सिद्धान्त-संस्कृत हिन्दी और राजस्थानी के संदर्भ में	हरदान हर्ष
काव्यदीपिका (अष्टम शिखा)	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी
काव्य मीमांसा (आदित: पञ्चमाध्यायपर्यन्ता)	डॉ. रविकान्त मणि
साहित्य दर्पण (1-2-3 एवं षष्ठ परिच्छेद की कारिकायें)	आ. भवानी शंकर शर्मा
काव्यप्रकाश	डॉ. सीताराम दोतोलिया
ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत)	कृष्णचन्द्र चतुर्वेदी

हंसा प्रकाशन®
57, नाटाणी भवन
मिश्र राजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार
जयपुर – 302 001 (राज.)